॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड – एक : मानव अधिगम एवं बुद्धि 03–70

इकाई 1 : मानव अधिगम का अर्थ, परिभाषा एवं संकल्पना

इकाई 2 : अधिगम के सिद्धान्त–व्यवहारवादी : थार्नडाइक, स्किनर, संज्ञानात्मक एवं सामाजवादी विचारधारा

इकाई 3 : बुद्धि एवं सृजनात्मकता–स्वरुप एवं सिद्धान्त

खण्ड – दो : अधिगम प्रक्रिया एवं अभिप्रेरणा 71–122

इकाई 4 : संवेदना, ध्यान एवं प्रत्यक्षीकरण

इकाई 5 : स्मृति, चिंतन एवं समस्या समाधान

इकाई 6 : अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकृति एवं सिद्धान्त

खण्ड – तीन : शिक्षण अधिगम प्रक्रिया 123–164

इकाई 7 : शिक्षण–सूत्र एवं शिक्षण प्रविधियाँ

इकाई 8 : शिक्षण की अवस्थायें एवं प्रतिमान

इकाई 9 : नेतृत्व एवं शिक्षक की कक्षा विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका

खण्ड – चार : आकलन एवं विद्यालय प्रणाली का सिंहावलोकन 165–188

इकाई 10 : विद्यालय मूल्यांकन में संकल्पनाएं

इकाई 11 : शैक्षिक उद्‌देश्यों का वर्गीकरण

इकाई 12 : निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन

खण्ड – पाँच : आकलनः आपव्यूह एवं अभ्यास 191–224

इकाई 13 : आव्यूह एवं विधियाँ

इकाई 14 : भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं का आकलन

इकाई 15 : विद्यालय परीक्षाएं

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड — 1

मानव अधिगम एवं बुद्धि

इकाई — 1 **7**

मानव अधिगम का अर्थ, परिभाषा एवं संकल्पना

इकाई — 2 **23**

अधिगम के सिद्धान्त—व्यवहारवादीः थार्नडाइक, स्किनर, संज्ञानात्मक एवं समाजवादी विचारधारा

इकाई — 3 **53**

बुद्धि एवं सृजनात्मकता—स्वरुप एवं सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. के. एन. सिंह. — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 पी0 के0 पाण्डेय — प्रभारी निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 सुषमा पाण्डेय — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग डी0डी0यू0 विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो0 रजनी रंजन सिंह — आचार्य, विशेष शिक्षा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 जी0 के0 द्विवेदी — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 दिनेश सिंह — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ नीलम बंसल — प्रवक्ता, विशेष शिक्षा कम्पोजिटिंग रिजनल सेन्टर (CRC), लखनउफ (इकाई 1,2,3,4,5,6)

डॉ नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता विशेष शिक्षा, शिक्षा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 7,8,9,10,11,12,13,14,15)

सम्पादक

प्रो0. योगेन्द्र पाण्डेय — एसोसियएट प्रोफेसर, (विशेष शिक्षा), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

परिमापक

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

समन्वयक

डॉ. नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता, (विशेष शिक्षा), शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज.

सितम्बर, 2019 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2021

ISBN- 978-93-94487-15-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित २०२४.

मुद्रक : सिग्नस ईन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा०लि०, लोढ़ा सुप्रिमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

ETH-013

खण्ड परिचय

विशेष शिक्षकों के लिए मानव अधिगम की प्रक्रिया के बारे में समझना बहुत आवश्यक होता है। इसके द्वारा उन्हें विशेष बालकों के सीखने की प्रक्रिया व उससे सम्बन्धित व्यवहार की जानकारी होती है। यह ज्ञान विशेष बालकों की अधिगम संबंधी समस्या की पहचान में मदद करता है तथा जिसके आधार पर शैक्षिक मूल्यांकन तथा प्रबन्धन कर सकते हैं। यह खण्ड अधिगम का अर्थ एवं परिभाषाएँ, अधिगम के विभिन्न सिद्धान्त, विशेष बालकों में अधिगम की प्रक्रिया व महत्व, बुद्धि एवं सृजनात्मकता के स्वरूप एवं सिद्धान्त की जानकारी भी प्रदान करता है। इस खण्ड को तीन इकाईयों में विभाजित कर इसका अध्ययन करेगें जिनका विवरण इस प्रकार है–

इकाई–1 में अधिगम का अर्थ, परिभाषा एव प्रक्रिया, विशेष बालकों में अधिगम का महत्व इत्यादि की चर्चा की गयी है।

इकाई–2 में अधिगम के विभिन्न सिद्धान्त–व्यवहारवादीः थार्नडाइक, स्किनर, संज्ञानात्मक एवं समाजवादी विचारधारा का वर्णन किया गया है।

इकाई–3 में बुद्धि एवं सृजनात्मकता के स्वरूप एवं सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

इकाई–1

अधिगम का अर्थ, परिभाषा एवं संकल्पना

संरचना–

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषाएँ

1.4 अधिगम के प्रकार

1.5 अधिगम की प्रक्रिया

1.6 अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएँ

1.7 अधिगम का महत्व

1.8 निष्कर्ष

1.9 इकाई सारांश

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 अपनी प्रगति जाँचे

1.12 अधिन्यास/क्रियाकलाप

1.13 विचार विमर्श के बिन्दु/स्पष्टीकरण

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 परिचय

अधिगम का सामान्य तथा विशेष, सभी बालकों के जीवन में अत्यधिक महत्व होता है। प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही कुछ न कुछ अधिगम करता हैं तथा जीवन भर सीखता रहता है। अधिगम विशेष बालक में दिन प्रतिदिन सीखने के विभिन्न अनुभवों का निर्माण करता है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी विशेष बालक को जीवनोपयोगी कौशल सिखाना होता है। शिक्षा के अंतर्गत विशेष बालक भावी जीवन जीने के लिए कार्यात्मक शैक्षणिक कौशल, व्यवहारिक, तथा सामाजिक कौशलों को भी सीखता है, जैसे–अंकों का ज्ञान प्राप्त करना जो घड़ी देखने या रुपये पहचानने के लिए आवश्यक होता है। विशेष बालक मे अधिगम के द्वारा इन अनुभवों में वृद्धि में एवं परिमार्जन होता रहता हैं। निरंतर सीखने की प्रक्रिया के फलस्वरूप विशेष बालक समाज के अनुकूल बनता है। विशेष बालक के इन संचित अनुभवों तथा व्यवहारों को ही अधिगम कहते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- अधिगम का अर्थ एवं परिभाषाएँ समझ सकेंगे।
- मानव अधिगम की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- अधिगम की प्रकृति के बारे में बता सकेंगे।
- विशेष बालकों में अधिगम का महत्व समझ सकेंगे।

1.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषाएँ

अधिगम जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगम प्रत्येक विशेष बालक के लिए महत्वपूर्ण होता है। सामान्य अर्थ में 'सीखना' से तात्पर्य व्यवहार में आए परिवर्तन को कहा जाता है। दूसरे शब्दों में सीखने से तात्पर्य केवल उन्हीं परिवर्तनों से होता है जो अभ्यास (Practice) या अनुभव (Experience) के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं। प्रायः किसी भी अधिगम प्रक्रिया का उद्देश्य, बालक को किसी विशेष कार्य को सिखाने से है, अर्थात् विशेष बालक किसी विशेष कार्य को क्रमबद्ध तरीके से सीखे तथा अपने जीवन में आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग भी कर सके। यही प्रक्रिया अधिगम कहलाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अधिगम से तात्पर्य व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन से है जो अभ्यास या अनुभव के परिणाम स्वरूप विशेष बालक में दिखाई देता है तथा जिसका उद्देश्य विशेष बालक को उपलब्ध वातावरण से समायोजन करना (Adjustment) सिखाना भी होता है। अर्थात् नवीन वातावरण में समायोजन करने में अधिगम मदद करता है। विशेष बालक पूर्व के सीखे गए कौशलों को नयी समस्या के समाधान में भी प्रयोग करने लगता है।

सामान्य बालकों की भांति, विशेष बालकों में अधिगम की क्रिया सामान्य रूप से चलती रहती है। परन्तु विशेष बालकों के संदर्भ में सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न व्यवधान आते है। जैसे– दृष्टि अक्षम बालकों के द्वारा ब्लैकबोर्ड या शिक्षण अधिगम सामग्री न देख पाना, श्रवण अक्षम बालकों में व्याख्यान न सुन पाना आदि समस्याएँ पायी जाती हैं। अतः इन बालकों को ब्रेल एवं स्पर्शीय सामग्री के द्वारा एवं श्रवण बाधित बालकों को सांकेतिक भाषा एवं दिखने वाले शिक्षण अधिगम सामग्री के द्वारा सिखाया जाता है।

अधिगम प्रक्रिया के द्वारा विशेष बालकों को उनकी क्षमता के अनुसार शिक्षण प्रशिक्षण कराया जाता है जिससे वह अपने भावी जीवन के लिए तैयार हो सकें, कुछ विशेष बालक अपने दैनिक जीवन की क्रियाएँ, समाजीकरण, सम्प्रेषण एवं गामक क्रियाएँ (स्थूल एवं सूक्ष्म गामक क्रियाएँ) आदि धीमी गति से सीखते है। एवं कुछ विशेष बालक सीखे हुये कौशलों को शीघ्रता से भूल भी जाते है। अतः उन्हें अधिक अभ्यास के द्वारा सिखाया जाता है, जिससे वे विषय/कौशल को ठीक से सीख लेते हैं। विशेष बालकों को विभिन्न कौशलों जैसे गोले में रंग भरना, फलों की पहचान, करना, शरीर के अंगो की पहचान आदि का निरन्तर अभ्यास कराया जाता है। अधिगम की प्रक्रिया के द्वारा बालक धीरे–धीरे अपने अनुभवों में वृद्धि करता जाता है। और संबंधित कौशल (गोले में रंग भरना, फलों की पहचान आदि) ठीक प्रकार से सीख लेता है। तथा आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न कौशलों को अपने दैनिक जीवन में उपयोग भी कर सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी अधिगम की परिभाषाओं को नीचे दिया जा रहा है–

गेट्स एवं अन्य के अनुसार– **''अनुभव के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को सीखना या अधिगम कहते हैं।''**

कॉलविन के अनुसार– **''अनुभव द्वारा मौलिक व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को ही सीखना कहते हैं।''**

स्किनर के अनुसार– **''व्यवहार के अर्जन में प्रगति की प्रक्रिया को सीखना कहते हैं।''**

गिलफोर्ड के अनुसार– **''व्यवहार के द्वारा किसी व्यवहार में परिवर्तन सीखना है।''**

क्रो एवं क्रो के अनुसार– **''ज्ञान एवं अभिवृति को ग्रहण करना ही सीखना है।''**

क्रॉनबेक के अनुसार– **''सीखना अनुभव के फलस्वरूप होने वाले व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त किया जाता है।''**

हिलगार्ड के अनुसार– **''सीखना वह क्रिया है जिससे कोई क्रिया प्रारम्भ होती है अथवा सामना की गई परिस्थिति में प्रतिक्रिया के द्वारा परिवर्तित की जाती है, बशर्ते क्रिया में परिवर्तन के लक्षण स्वाभाविक प्रतिक्रिया को प्रवृत्तियों, परिपक्वता अथवा जीवन की अस्थायी दशाओं के आधार पर न समझा जाए।''**

सारटेन, नॉर्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमेंन के अनुसार– **''सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है।''**

"Lerning may be defined as the procesas by which a relatively enduring change in behaviour occurs as a resault of experience or practice."

-Sartain, North, Strange & Chapman.

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर के अनुसार, **''अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन को सीखना कहा जाता है।''**

"Lerning can be defined as any relatively permanent change in behaviour that occurs as a resault of practice or experience."

-Morgan, King, Weisz & Schopler.

सीखने की प्रक्रिया के बारे में विचार करते समय एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय हमारे सामने आता है, जिसे हम परिपक्वता कहते हैं। विशेष बालकों के विकासक्रम में परिपक्वता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी भी विशेष बालक के विकास में परिपक्वता एक प्राकृतिक, स्वाभाविक स्थिति होती है। जो एक निश्चित समयान्तराल में पूरी भी हो जाती है। परिपक्वता पर विशेष बालक के घर व बाहर के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। इसके साथ–साथ उसकी वंशानुगत स्थितियां भी परिपक्वता को प्रभावित करती हैं।

सीखना तथा परिपक्वता यह दोनों क्रियाएं एक दूसरे से परस्पर जुड़ी हुई हैं, क्योंकि व्यवहार सीखने से जैसे–जैसे विशेष बालक में परिवर्तन आता जाता है, वह धीरे–धीरे परिपक्वता की ओर बढ़ता चला जाता है। यदि हम सीखने की स्थितियों के बारे में बात करें तो विशेष बालक प्रारंभिक स्थितियों में छोटे–छोटे कौशलों को सीखता है जैसे– सिर उठाना, पलटना, सिर को घुमाना, बैठना, सहारे के साथ चलना और फिर बिना सहारे के साथ चलना आदि इस प्रकार से विशेष बालकों में विकास का अनुक्रम अनुसरण होता है। इस प्रक्रिया में जैसे–जैसे विशेष बालक सिर संभालना सीख जाता है। उसके बाद वह दूसरी क्रिया की ओर बढ़ता है। वह अपने हाथों पैरों का संचालन व नियन्त्रण करना भी शुरू कर देता है, उसके बाद वह अपने हाथों से छोटी–छोटी वस्तुओं को पकड़ने लगता है व चीजों को खींचना शुरू कर देता है। इसके बाद वह धीरे–धीरे करके बैठना,

सहारे के साथ बैठना, फिर वह स्वतंत्र रूप से बैठना सीख जाता है। इसी प्रकार अन्य क्रियाएं जैसे अपने पैरों पर खड़े होना, धीरे–धीरे चलना और फिर दौड़ना भी शुरू कर देता है तो यह सीखने की प्रक्रिया क्रमिक रूप से चलती रहती है।

इस प्रकार अधिगम प्रक्रिया में विशेष बालक सीखने के साथ–साथ, परिपक्वता को भी प्राप्त करता चला जाता है। जैसे–जैसे बालक सीखता जाता है उसके मस्तिष्क में अनुभवों का संचय भी होता जाता है, जिससे उसमें परिपक्वता के गुण आ जाते हैं। यदि हम अन्य विशेष बालकों के बारे में बात करें तो ज्यादातर विशेष बालकों में सीखने के साथ–साथ परिपक्वता भी आती जाती है किंतु बौद्धिक अक्षम बालकों में परिपक्वता की स्थिति बहुत धीरे या बहुत न्यून अवस्था में होती है। यह बालक अन्य बालकों की तरह सामान्य विकासात्मक क्रम को समयानुसार अनुसरण नहीं कर पाते, यह बालक ज्यादातर क्रियाओं को बहुत धीरे सीखते हैं। कभी–कभी यह सामान्य बालकों के मानसिक विकास की तुलना में, 5–6 साल या उससे भी ज्यादा पिछड़े होते हैं। जिसके कारण उनमें परिपक्वता का उचित स्तर प्राप्त नहीं हो पाता है। बौद्धिक अक्षम बालक परिपक्वता के मामले में अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा बहुत पिछड़े होते हैं।

1.4 अधिगम के प्रकार

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिगम के निम्नलिखित प्रकार हैं–

1. संवेदनात्मक अधिगम **(Sensory Lerning)-** जब विशेष बालक स्वयं के संवेदी अंगो के द्वारा सीखता है, तब उसे संवेदनात्मक अधिगम कहते है। विशेष बालकों के प्रशिक्षण में बहुइंद्रिय उपागम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अलग–अलग प्रकार की दिव्यांगता से ग्रस्त बालकों में अलग प्रकार की समस्याएं पाई जाती हैं। जिससे उनके अधिगम की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार की बाधाएं उत्पन्न हो जाती है। वह अपनी क्षतिग्रस्त इंद्रियों के द्वारा सूचनाओं को ग्रहण नहीं कर पाते, जैसे–दृष्टिबाधित बालकों को देखने में एवं श्रवण बाधित बालकों को सुनने में समस्या होती है। इसके साथ–साथ बौद्धिक अक्षम बालकों को समझने में तथा स्वलीनता या व्यवहारगत समस्या वाले बालकों को ध्यानभंगता आदि की विशेष समस्या होती है, जिसके कारण अधिगम प्रक्रिया में बाधा पहुंचती है। संवेदनात्मक उपागम के द्वारा इस प्रकार की समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है।

   यदि हम किसी भी दिव्यांग बालक को बहुइंद्रिय उपागम के द्वारा शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम करवाते हैं तो एक इंद्रियजनित बाधा या सीमितता के होने पर भी अन्य इंद्रियों के द्वारा विशेष बालक, वस्तु, व्यक्ति, स्थान से संबंधित सूचना को प्राप्त कर सकता है, जैसे–दृष्टिबाधित बालकों द्वारा वस्तु को छूकर पहचानना आदि। इस प्रकार से विशेष बालकों में अधिगम क्षमता का विकास होता है और वह उत्तरोत्तर विषयों को सीखता चला जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में विशेष बालकों को स्थायी अधिगम के लिए बहुइंद्रिय उपागम के द्वारा अर्थात् संवेदी अंगों से स्पर्श, स्वाद, श्रवण व दृष्टि से भी अधिगम कराया जाता है।

2. **गामक अधिगम (Motor Lerning)**– विशेष बालकों में गामक अधिगम कौशलों में भी कमियां पाई जाती हैं। कुछ विशेष बालकों में विकासात्मक देरी भी पाई जाती है। जैसे–ज्यादातर बौद्धिक अक्षम बालकों में सूक्ष्म तथा स्थूल गामक कौशलों के विकास में देरी होती है। बौद्धिक अक्षम बालकों में उम्र के अनुसार मानसिक विकास का क्रम नहीं चलता अर्थात् इन बालकों की मानसिक एवं शारीरिक उम्र में अधिक अंतर होता है। जिस प्रकार से इनकी उम्र बढ़ती है उस प्रकार से इनकी मानसिक उम्र नहीं बढ़ती जैसे वह शारीरिक रूप से तो 10 या 12 साल के हो

जाते हैं, किंतु उनकी मानसिक उम्र 5, 6 साल या और कम भी हो सकती है, क्योंकि उनका गामक कौशलों का विकास बहुत धीमी गति से होता है।

बौद्धिक अक्षम बालकों में गामक कौशल जैसे–सिर संभालना, हाथों से वस्तुओं को पकड़ना, सहारे के साथ बैठना या बिना सहारे के बैठना, खड़े होना, चलना इस प्रकार के सभी कौशलों में सामान्य बालकों की अपेक्षा देरी पाई जाती है। इस देरी के कारण उनकी शारीरिक उम्र से व मानसिक उम्र में बहुत अंतर होता है अतः इस अंतर को कम करने के लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। विशेष शिक्षा के द्वारा हम बालकों को जीवनोपयोगी तथा उम्र के अनुसार, कौशलों को, अभ्यास एवं विशेष प्रशिक्षण के द्वारा सिखा सकते हैं। जैसे–वस्तुओं या बॉल को पकड़ना, बॉल को फेंकना इस प्रकार के छोटे–छोटे कार्य, बालकों को खेल–खेल में सिखाए जाते हैं। जिससे उनमें अधिगम का विकास हो वह ज्यादा से ज्यादा चीजों को सीख सकें।

किसी विशेष बालक द्वारा मॉसपेशियों से सम्बन्धित नवीन कौशल सीखना ही गामक अधिगम प्रक्रिया हैं, ज्यादातर विशेष बालकों में विकासात्मक अनुक्रमों में देरी पायी जाती है, जिसके कारण उनका क्रियात्मक विकास भी पिछड़ा होता है। वे सामान्य बालकों की अपेक्षाकृत सूक्ष्म व स्थूल गामक विकास में पिछड़े होते हैं। जैसे–बैठना, बिना सहारे के चलना आदि क्रियाएं, सामान्य बालकों की अपेक्षाकृत देर से सीखते हैं, अतः इन सभी क्रियाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण करवाया जाना आवश्यक होता है।

3. **संज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive Lerning)**– बुद्धि से संबन्धित समस्त क्रियाओं में संज्ञानात्मक अधिगम का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक बालक को किसी भी कार्य को करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है बिना सोचे समझे किसी भी कार्य को किया नहीं जा सकता, उदाहरणार्थ–सभी दैनिक कार्यों के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है ब्रशिंग, नहाने, भोजन करने आदि इन सभी क्रियाओं में बुद्धि की आवश्यकता होती है। भोजन करने के लिए खाद्य सामग्री को हाथों में पकड़ना, उठाना व मुंह तक लेकर जाना इस संपूर्ण प्रक्रिया में बुद्धि का प्रयोग होता है। इसके अलावा नहाने या अन्य दैनिक कार्यों में भी वस्तुओं के उपयोग, समायोजन तथा क्रमबद्ध तरीके से कार्य को करने के लिए मानसिक शक्ति की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में किसी भी क्रिया के लिए चिंतन या विचार करने में अथवा समझने में बुद्धि की नितान्त आवश्यकता होती है। इसी संदर्भ में विशेष बालकों के बौद्धिक विकास में कमी होने के कारण तथा इंद्रियजनित सीमितता (Limitation) होने के कारण इनकी अधिगम प्रक्रिया में बाधा आती है। ऐसे बालक सामान्य कार्यों को भी देर से या धीरे सीखते हैं। इन्हें अपने दैनिक कार्यों को करने में भी अधिक समय लगता है।

सामान्य बालक वस्तुओं को देखकर, आवाजों को सुनकर तथा छूकर सूचनाओं को तुरंत प्राप्त कर लेते हैं, परंतु विशेष बालकों में दृष्टि अक्षमता, श्रवण अक्षमता अथवा बौद्धिक अक्षमता होने के कारण वे सूचनाओं को तुरंत प्राप्त नहीं कर पाते या समझ नहीं पाते, इस प्रकार की स्थिति में इन बालकों को सीखने के लिए विशेष प्रकार के शिक्षण–अधिगम सामग्री, वातावरण तथा अनुदेशन की आवश्यकता होती है। विशेष बालकों में भी प्रत्येक बालक की क्षमता अलग–अलग हो सकती है।

अतः प्रत्येक बालक की मानसिक शक्ति एवं क्षमता के अनुसार उन्हें अधिगम कराया जा सकता है। सामान्य बालकों की भांति यह बालक भी चिंतन, वार्ता तथा तर्क आदि सभी प्रकार के संज्ञानात्मक कार्य कर सकते हैं, परन्तु इन्हें इन सभी क्रियाओं

के लिए कुछ विशेष अनुकूलन की आवश्यकता होती है। विशेष बालकों के लिए संज्ञानात्मक अधिगम के निम्न प्रकार हैं–

(i) **प्रत्यक्षयात्मक अधिगम (Perceptual Lerning)-** जब किसी वस्तु के बारे में संवेदी अंगों द्वारा (छूकर, देखकर या स्वाद लेकर) प्रत्यक्ष रूप में ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे प्रत्यक्षयात्मक अधिगम कहते है। अर्थात् विशेष बालक के द्वारा सेब को स्पर्श करके, फ्लैश कार्ड में एवं वास्तविक रूप से देख कर एवं उसका स्वाद लेकर बालक, सेब के नाम, गुण विशेषता आदि को सरलता से सीख सकता है। इस प्रकार का अधिगम प्रत्येक विषय में नहीं कराया जा सकता परंतु कुछ प्रारंभिक विषयों के लिए यह अधिगम उत्तम होता है।

(ii) **प्रत्ययात्मक अधिगम (Conceptual Lerning)-** चिन्तन एवं कल्पना आदि के द्वारा अधिगम प्रक्रिया प्रत्ययात्मक अधिगम होती है जैसे विशेष बालक के द्वारा वस्तु से प्राप्त अनुभव के बारे में उनका सामान्य चिंतन करना। यह अधिगम विशेष बालकों के लिए अनुकूल होता है। इसके द्वारा बालक को स्वयं से चिंतन व विचार करने का अवसर प्राप्त होता है। जिससे उसके व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है।

(iii) **साहचर्यात्मक अधिगम (Associative Lerning)-** जब विशेष बालक पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा नया कौशल सीखता है, तब इसे साहचर्यात्मक अधिगम कहते है। अधिगम की प्रक्रिया में जैसे–जैसे बालक सीखता जाता है, उसके अंदर नए–नए अनुभवों का संचयन भी होता चला जाता है। वह नई–नई क्रियाओं की तरफ बढ़ता चला जाता है, और नई क्रियाओं को सीखने के लिए उसके पुराने संचित अनुभव काम आते हैं, वह पुराने सीखे गए अनुभवों के आधार पर नए कार्यों को सीखता है।

(iv) **रसानुभूतिपूरक अधिगम**– इस प्रकार के अधिगम में बालक किसी घटना या वृतांत से प्रभावित होकर उसका अपने शब्दों में वर्णन करता है या किसी घटना में अपने विचार भी प्रस्तुत करता है। विशेष बालक द्वारा किसी घटना को ध्यान पूर्वक देखना, उसके बारे में विचार करना, तत्पश्चात् उसको अपने शब्दों में व्यक्त करना यह संपूर्ण प्रक्रिया ही रसानुभूतिपूरक अधिगम है। इस प्रकार की प्रक्रिया में विशेष बालकों का मानसिक विकास तीव्र गति से होता है।

1.5 अधिगम की प्रक्रिया

सीखने की प्रक्रिया में कोई अभिप्रेरक या चालक कोई आकर्षक लक्ष्य और इस लक्ष्य की प्राप्ति से संबंधित कोई बाधा या कठिनाई उपस्थित रहती है। अभिप्रेरक वह स्रोत होते हैं जो विशेष बालक को व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। प्रत्येक विशेष बालक को अपनी आवश्यकताओं और दैनिक जीवन के कार्यों के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना पड़ता है। जिसके लिए वह लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुछ कार्यों को करता रहता है कुछ कार्यों में विशेष बालक के पूर्व अनुभव उपयोगी होते हैं, किंतु साथ–साथ कुछ नवीन अनुभव भी होते जाते हैं। इसी प्रकार बालक दिन–प्रतिदिन अपने दैनिक कार्यों में तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर प्रयास एवं कार्य करता रहता है। और वह नई–नई चीजों को भी सीखता जाता है अपने मस्तिष्क में संचित विभिन्न प्रकार के पूर्व अनुभवों को नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करने के लिए प्रयास करता जाता है, और जो भी नया ज्ञान

उसे प्राप्त होता है वह उसके मस्तिष्क में संचित हो जाता है। यह प्रक्रिया सीखना या अधिगम कहलाती है।

बौद्धिक अक्षम बालकों में दैनिक जीवन के संप्रत्यय सिखाने के लिए उन्हें छोटे अनुभवों से सिखाया जाता हैं। जैसे– टूथब्रश पर पेस्ट लगाने की क्रिया में बालक के द्वारा यदि मजन के ट्यूब को तेजी से दबा दिया जाता है और बहुत सारा पेस्ट बाहर निकल आता है। इसी प्रकार अगली बार पेस्ट निकालते समय बौद्धिक अक्षम बालक को यह याद दिलाया जाता है कि मजन के ट्यूब को धीरे से आवश्यकतानुसार ही दबाना है, जिससे ज्यादा मजन ना निकले। इस प्रकार से बौद्धिक अक्षम बालक को वर्तमान की क्रिया को छोटे अनुभव से सिखाया जाता है। यदि बौद्धिक अक्षम बालक मजन के ट्यूब के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की क्रीम को भी ट्यूब से दबाकर निकालता है, तो वह अपने पूर्व के ज्ञान से जोड़कर ट्यूब को धीरे से आवश्यकतानुसार ही दबाकर क्रीम निकलता है। इस प्रकार यह बालक इस क्रिया को किसी भी परिस्थिति में अन्य स्थान पर, बड़े या छोटे ट्यूब के साथ कर सकता है। यहां पर बौद्धिक अक्षम बालक को उसके आँख और हाथ के समन्वय से संबंधित क्रियाओं का प्रशिक्षण देना भी अनिवार्य होता है जो उसे अन्य क्रियाएं सीखने में भी मदद करेगा।

विशेष बालकों को अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय शिक्षा के साथ–साथ अन्य प्रकार की कौशलों में भी प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है। जैसे–दृष्टिबाधित बालकों को दैनिक जीवन के कौशल अनुस्थितिज्ञान एवं चलिष्णुता प्रशिक्षण (Orientation and Mobility Training), विभिन्न प्रकार की तकनीकी शिक्षा, सामाजिक कौशल एवं अवकाश समय के कार्यों के लिए भी विशेष प्रशिक्षण देना होता है।

वुडवर्थ के अनुसार, **''सीखना एक प्रक्रिया है जो बाद वाली क्रिया पर तुलनात्मक दृष्टि से अधिक स्थायी प्रभाव डालती है।''**

प्रो0 बोआज के अनुसार, **''अधिगम एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण, सामान्य जीवन की मागों की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।''**

सारांश रूप में अधिगम ही शिक्षा है। अधिगम व शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। अधिगम व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है जैसे–विशेष बालक को गोले में रंग भरना सिखाना या फलों के नाम सिखाना आदि विशेष बालक के व्यवहार में उपयोगी व अनुकूल परिवर्तनों का उदाहरण है। प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में बालक के व्यवहार में परिवर्तन होता है।

सीखने से तात्पर्य विशेष बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन से होता है। विशेष बालक के व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभव के फलस्वरूप होता है। यहां अभ्यास से तात्पर्य विशेष प्रकार के प्रशिक्षण एवं निरंतर पुनरावृत्ति से है जिसमें बालक किसी प्रक्रिया को बार–बार दोहराते हुए सीखता है। अनुभव से तात्पर्य विशेष बालक की संचित अनुभूतियों से होता है, जो विशेष बालक के व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाता है। एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है–मान लीजिए कि कोई विशेष बालक लिखना सीख रहा है, लिखने की प्रक्रिया को वह बार–बार दोहराता है, कुछ विशेष बालकों को शारीरिक तथा अन्य प्रकार की सहायता की भी आवश्यकता होती है। विशेष बालक प्रत्येक बार में अपने द्वारा की हुई गलतियों को सुधारता भी है। निरंतर अभ्यास के पश्चात अंत में, वह बिना किसी प्रकार की गलती के लिखना सीख लेता है। यहां व्यवहार में परिवर्तन (लिखना) एक प्रशिक्षण के फलस्वरूप सम्पन्न हुआ। प्रत्येक प्रक्रिया को सीखने के लिए विशेष बालक को अभ्यास व अनुकूलन की ही आवश्यकता होती है जिससे विशेष

बालक के व्यवहार में स्थाई परिवर्तन होता है। अंततः वह क्रिया सीख लेता है।

अधिगम सदैव चलने वाली प्रक्रिया है। सभी परिस्थितियों में विशेष बालक कुछ ना कुछ सीखता रहता है। अधिगम प्रत्येक बालक का मानसिक गुण है, फिर चाहे वह सामान्य बालक हो या फिर विशेष बालक। अधिगम की प्रक्रिया में इन बालकों को दैनिक जीवन के कौशलों के लिए भी प्रशिक्षण की नितांत आवश्यकता होती है। कुछ प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात से ग्रस्त बालकों में सूक्ष्म तथा स्थूल गामक कौशलों में कमियां पाई जाती हैं, जिसके कारण वह अपने मांसपेशीय संबंधी कार्यों को करने में सक्षम नहीं होते, इसी प्रकार श्रवण बाधित बालकों में संप्रेषण का नितांत अभाव होने के कारण, उनके भाषागत कौशलों में कमियां पाई जाती हैं, एवं दृष्टिबाधित बालकों में दैनिक जीवन के कौशल, गतिशीलता में कमियां पाई जाती हैं, बौद्धिक अक्षम बालकों में सामान्य संप्रत्ययों को समझने के लिए विशेष अनुकूलन एवं शिक्षण अधिगम सामग्री की आवश्यकता होती है। इन बालकों को दैनिक कौशल, सामाजिक कौशल, शैक्षणिक तथा व्यवसायिक कौशल व प्रत्येक स्तर पर विशेष शिक्षण एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. व्यवहार के अर्जन में प्रगति की प्रक्रिया को .... कहते हैं।

प्रश्न 2. जब विशेष बालक स्वयं के संवेदी अंगों के द्वारा सीखता है, तब उसे कहते .... है।

प्रश्न 3. बुद्धि से संबन्धित समस्त क्रियाओं में ....का प्रयोग किया जाता है।

1.6 अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएँ

योकस तथा सिम्पसन एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया की कुछ सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है–

1. अधिगम विकास की प्रक्रिया है। विशेष बालक जिन कार्यों को सीखता है, उनसे कुछ न कुछ अनुभवों को प्राप्त करता हैं। परिणामस्वरूप उसका बौद्धिक व मानसिक विकास होता है। अधिगम ही विकास का प्रारम्भिक आधार है।

2. सीखने की प्रक्रिया से विशेष बालक के व्यवहार में स्थायी परिवर्तन होता है। गेट्स एवं अन्य के अनुसार अधिगम अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है। अतः विशेष बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन आना भी अधिगम है, जिसके कारण विशेष बालक सीखे गए व्यवहार के अनुकूल व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है।

3. अधिगम प्रक्रिया में व्यवहार को सिखाने के लिए अनुकूलन आवश्यक होता है। विशेष बालक के कौशल प्रशिक्षण हेतु कार्य में अनुकूलन किया जाता है। तथा इसके साथ–साथ वातावरण में भी अनुकूलन अनिवार्य है। विशेष बालक को ब्रश या साबुन की पहचान करवाने के लिए, कक्षा में ही नैसर्गिक वातावरण का निर्माण किया जाता है। कौशल प्रशिक्षण हेतु क्रिया को छोटे छोटे स्तरों में विभाजित या अनुकूलित भी किया जाता है। जिससे बालक क्रिया को पूरी तरह से सीख सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि विशेष बालक के वातावरण में अनुकूलन के द्वारा अधिगम संभव हो सकता है।

4. अधिगम एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। विशेष बालक बचपन से ही सीखने लगता है। यह क्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। अतः कहा जा सकता है कि बालकों में अधिगम की प्रक्रिया आजीवन चलती है।

5. अधिगम सार्वभौमिक है, संसार में सभी प्राणी अपनी–अपनी गति से कुछ न कुछ सीखते हैं।

6. अधिगम अनुभवों का संगठन है। विशेष बालक आजीवन अनेक वस्तुओं एवं वातावरण के सम्पर्क में आता है और नये–नये अनुभवों को प्राप्त करता है। इन नवीन और पुराने अनुभवों के संगठन द्वारा ही विशेष बालक, नये कौशलों को सीखता है।

7. अधिगम उद्देश्यपूर्ण है, विशेष बालक किसी उद्देश्य के प्रति प्रेरित होकर ही कार्य को सीखता है। बिना उद्देश्य के सीखने की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं होती है। **मरसेल के अनुसार, ''सीखने के लिए उत्तेजित और निर्देशित उद्देश्य की अति आवश्यकता है, और ऐसे उद्देश्य के बिना सीखने में असफलता निश्चित है।''**

8. अधिगम विशेष बालक की सक्रियता को प्रदर्शित करती है, किसी कार्य को सीखने के लिए विशेष बालक को सक्रिय होना पड़ता है। एक योजना बनाकर, उसके अनुसार अनेक क्रियाओं का विश्लेषण भी किया जाता है। जिससे बालक पूर्ण क्रियाविधि को क्रमानुसार सीख सकता है। अधिगम विशेष बालक में सक्रियता का भी निर्माण करता है।

9. अधिगम विशेष बालक में विवेक जागृत करता है। जिसके द्वारा, विशेष बालक कौशलों में निपुण हो जाते हैं। बालक में कार्य को विवेकपूर्ण ढंग से करने के गुणों का विकास होता है। किसी कार्य को यथोचित ढंग से करना ही अधिगम है। विशेष बालक कार्य के बारे में विचार करना भी प्रारम्भ कर देता है, और हर कार्य को सोच समझकर करता है।

10. अधिगम व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों है। यद्यपि विशेष बालक सहायता व स्वंय प्रयत्न करके कार्यों को करना सीखता है, परन्तु समाज के अनुसार रहन–सहन के तरीके, समाजिकता की कला आदि सीखना भी अनिवार्य होता है। अतः अधिगम व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों होता हैं।

11. विशेष बालक कार्यों को निरंतर अभ्यास एवं सतत प्रयास के द्वारा सीखते हैं। इन बालकों को कौशलों को सीखने के लिए अधिक समय एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है।

1.7 अधिगम का महत्व

अधिगम की प्रक्रिया विशेष बालकों के लिए जीवनोपयोगी एवं महत्वपूर्ण होती है। जिस प्रकार से अन्य सामान्य बालक अपने जीवन से संबंधित शैक्षणिक तथा व्यवसायिक कौशलों को सीखते हैं, एवं आत्मनिर्भरता के साथ जीवन यापन करते हैं, उसी प्रकार विशेष बालकों के लिए भी अधिगम प्रक्रिया आवश्यक है। यदि हम विभिन्न प्रकार के विशेष बालकों के बारे में चर्चा करें तो विशेष बालकों में भिन्न–भिन्न प्रकार की दिव्यांगताएं पाई जाती हैं। जिसके कारण उनकी समस्याएं भी अलग–अलग होती हैं तथा उनके अधिगम के तरीके और अधिगम का स्तर भी अलग–अलग होता है। यदि हम श्रवण बाधित बालकों के बारे में बात करें तो इस प्रकार के बालकों में अधिगम प्रक्रिया के लिए आवश्यक होती हैं जिससे इन बालकों को कोई भी शैक्षणिक, व्यवसायिक कौशल सिखाने के लिए हमें विभिन्न प्रकार के अनुकूलन, विशेष शिक्षण सामग्री तथा अनुदेशनों की आवश्यकता लेनी पडती है।

श्रवण बाधित बालकों का मानसिक स्तर सामान्य बालकों के ही भांति होता है, किंतु सुन न पाने के कारण वे बहुत सारी सूचनाएं समझ नहीं पाते और वह केवल देखकर ही चीजों को समझते या सीखते हैं। इस प्रकार से उनमें सीखने के लिए सीमितता हो जाती है। यहां पर उन्हें अन्य विशेष प्रकार के उचित प्रयासों एवं अनुदेशनों की आवश्यकता होती है, बची हुई क्षमता का प्रयोग करने के लिए, कुछ श्रवण बाधित बालकों के सीखने की प्रक्रिया में, कान की मशीन का भी उपयोग किया जाता हैं। जिसके द्वारा श्रवण बाधित बालक सुनकर सीख सकते हैं। इन बालकों की शिक्षा में प्रत्येक स्तर पर अधिगम की आवश्यकता होती है, जिससे वह विषयों को सीख सकें तथा कक्षा की सभी पाठ्य सहगामी क्रियाओं में भी सहभागी हो सके। इसके अलावा विशेष बालकों में बोलने से संबंधित समस्याएं भी होती हैं। जो उनके संप्रेषण या वार्तालाप को गम्भीर रुप से प्रभावित करती हैं, जिससे वह बालक अन्य बालकों से वार्तालाप नहीं कर पाते या बहुत कम कर पाते हैं। इस तरह की स्थितियों से भी उनके अधिगम में बाधा उत्पन्न होती है तो यह सुनिश्चित करना जरूरी होता है कि हम किसी अन्य साधन जैसे सांकेतिक भाषा के द्वारा विशेष बालक को संप्रेषण के उचित अवसर प्रदान करें। जिससे वह दूसरों को अपनी बात कह सके तथा अन्य लोगों की बातों को भी समझ सके।

अधिगम के प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के अनुकूलनों जैसे– विशेष बालक को पहली पंक्ति में बिठाना, शिक्षक के चेहरे पर उचित प्रकाश होना जिससे विशेष बालक लिप–रीडिंग कर सके व शिक्षक के चेहरे के हाव–भाव को भी समझ सके कक्षा में विशेष बालक को अधिक अवसर प्रदान करना चाहिए तथा विशेष बालक को उसकी क्षमता व रुचि के अनुसार ही कार्य प्रदान करना चाहिए। अनेक प्रयासों के द्वारा हम उनमें अधिगम का विकास कर सकते हैं।

यदि हम दृष्टिबाधित बालकों के बारे में बात करें तो उन्हें भी दैनिक जीवन के कौशलों व शैक्षणिक कौशलों को सीखने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। क्योंकि कोई भी वस्तु या रोशनी दिखाई ना देने के कारण वह बहुत सारी सूचनाओं, वस्तुओं या व्यक्तियों को देख नहीं पाते। जिसके कारण वह वस्तुओं के संप्रत्यय या स्थिति को समझ नहीं पाते। प्रारंभिक स्तर पर ही इस तरह के बालकों को अपने दैनिक जीवन में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के बालकों को दैनिक जीवन के कौशलों में कभी–कभी अपने परिवार जनों की सहायता भी लेनी पड़ती है। जैसे–ब्रशिंग, नहाने में या अन्य प्रकार की दैनिक आवश्यकताओं में उन्हें विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। जिससे वह स्वतंत्र रूप से अपने दैनिक कार्य को कर सकें। यदि हम दृष्टिबाधित बालकों की शिक्षा या उनके व्यवसाय के बारे में बात करें तो उसके लिए भी उन्हें विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। कक्षा में उनको विभिन्न प्रकार के अनुकूलन जैसे ब्रेल

लिपि या रिकॉर्डेड व्याख्यान या स्पर्शी शिक्षण अधिगम सामग्री प्रदान किए जाने पर ही वह सीख सकते हैं।

अधिगम का दिव्यांग बालकों के जीवन में उतना ही महत्व होता हैं, जितना कि अन्य सामान्य बालकों के जीवन में होता है। विशेष बालकों को दैनिक जीवन के कौशल शैक्षणिक तथा व्यवसायिक कौशलों में विभिन्न प्रकार के विशेष अनुदेशन या अनुकूलनों की आवश्यकता होती है, जिसके कारण बौद्धिक दिव्यांग बालक अपने दैनिक जीवन के कौशलों को भी नहीं सीख पाते। विशेष बालकों में प्रारंभिक अवस्था में ही सूक्ष्म तथा स्कूल गामक कौशलों में कमियां या पिछड़ापन पाया जाता है, जिसके कारण यह सामान्य कार्यों को भी नहीं कर पाते जैसे–बौद्धिक अक्षम बालकों में सूक्ष्म व स्थूल गामक कौशलों के पिछड़ेपन के कारण वह अपने हाथों से बॉल, ग्लास या किसी सामान्य खिलौने को पकड़ना इत्यादि नहीं कर पाते। प्रायः इन बालकों में इस तरह के प्रारम्भिक कौशलों में कमी देखी जाती है।

यह बालक अपने विकासात्मक क्रम की क्रियाओं में भी देरी करते हैं। विकासात्मक क्रम में बैठना, चलना आदि क्रियाओं को भी शीघ्रता से सीख नहीं पाते। यह उन सभी क्रियाओं में काफी पिछड़े होते हैं। उदाहरणार्थ सामान्य बालक जिस उम्र में बैठना, चलना शुरू कर देते हैं, यह बालक उनसे 4, 5 या अधिक वर्ष पिछड़े होते हैं। यह अपने सामान्य विकास के कार्यों को भी समय पर नहीं कर पाते उसमें काफी पीछे होते हैं, मानसिक रूप से पिछड़े होने के कारण विद्यालयी शिक्षा या व्यवसायिक शिक्षा के स्तर में भी बहुत पीछे होते हैं। इन बालकों को अधिगम की प्रक्रिया से जोड़ने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इनको विद्यालयी शिक्षा के साथ–साथ अन्य दैनिक कौशलों का भी प्रशिक्षण दें जो इनके जीवन के लिए आवश्यक है। इसके अन्तर्गत बालकों को दैनिक जीवन के कौशल, संप्रेषण, सामान्य बोलचाल या सामाजिकता से संबंधित संप्रत्यय, पूर्व व्यवसायिक आदि का प्रशिक्षण भी देते हैं। यह सभी इनके अधिगम के विभिन्न भाग होते हैं। इन बालकों की अधिगम प्रक्रिया अधिक व्यापक होती है। इसमें विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययों का समावेश होता है। इन्हें विद्यालयी शिक्षा के साथ–साथ अन्य सामाजिक कौशलों, दैनिक जीवन के कौशलों, भाषा तथा संप्रेषण कौशलों में प्रशिक्षण करवाया जाता है। सामान्य बालकों की तरह विशेष बालकों के लिए भी अधिगम आवश्यक होता है।

बालक निरंतर अभ्यास एवं अनुभवों के द्वारा सीखता है। सामान्य की अपेक्षा विशेष बालकों की सीखने की गति अपेक्षाकृत धीमी हो सकती है। कुछ विशेष बालक सामान्य कौशलों को सीखने में अधिक समय लगाते हैं। विशेष शिक्षक को इन बालकों को छोटे–छोटे कौशल सिखाने के लिए अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम से सम्बन्धित सभी क्रियायें सीखते समय इन बालकों को विभिन्न अनुभवों से परिचित करवाना भी आवश्यक होता है। विशेष बालकों को विशेष अनुकूलनों के द्वारा भी सिखाया जाता है। जैसे– लिखना सिखाने के लिये विभिन्न प्रकार के ग्रिपर्स या पकड़ सम्बंधी अनुकूलनो का प्रयोग किया जाना, जिससे बालकों में लेखन क्षमता का विकास हो। बौद्धिक अक्षम बालक किसी भी कौशल को एक साथ पूर्ण रूप से सीखने में असमर्थ होते हैं। अतः किसी भी क्रिया को सिखाने के लिए क्रिया विश्लेषण (Task Analysis), कार्य को छोटे–छोटे टुकड़ो में विभाजित करके सिखाया जाता है। विशेष बालकों में व्यवहारगत समस्याओं के कारण, सीखने की प्रक्रिया में बाधा आती है।

शिक्षण की विशेष विधि के द्वारा इन बालकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रदान की जाती है। शिक्षा का उद्देश्य सामान्य तथा विशेष सभी बालकों को उनके जीवनोपयोगी कौशल सिखाना होता है। धीरे–धीरे ये बालक सम्बंधित कौशल कार्यों में निपुण हो जाते है। यही प्रक्रिया अधिगम कहलाती है। अधिगम एक सतत चलने वाली प्रक्रिया हैं। प्रत्येक बालक अपनी क्षमता के अनुसार ही सीखता है। प्रत्येक विशेष बालक के सीखने के तरीके एवं समयावधि अलग–अलग हो सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. जब विशेष बालक पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा नया कौशल सीखता है, तब इसे .... कहते है।

प्रश्न 5. संसार में सभी प्राणी अपनी–अपनी गति से कुछ न कुछ सीखते हैं, अतः अधिगम .... है।

प्रश्न 6. किसी भी क्रिया को सिखाने के लिए .... अर्थात् कार्य को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित करके सिखाया जाता है।

1.8 निष्कर्ष

प्रत्येक विशेष बालक संसार में प्रवेश करते ही संपूर्ण जीवन में विभिन्न क्रियाओं तथा पदार्थों के लगातार संपर्क में आता है, उनसे कुछ न कुछ अनुभवों को प्राप्त करता एवं सीखता है। अधिगम जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्यु–पर्यन्त तक चलने वाली प्रक्रिया है, इसके द्वारा उसके व्यवहार में निरंतर परिवर्तन भी होता जाता है। उदाहरणार्थ– प्रारम्भिक अधिगम प्रक्रिया में विशेष बालक को फलों के नाम सिखाते समय वास्तविक फलों को स्पर्श भी करवाया जाता है, जिससे वह बालक अपने प्राप्त अनुभव के फलस्वरूप फल को पहचानने लगता है। विशेष बालक को जो अनुभव हुआ, उसी के आधार पर उसके व्यवहार में परिवर्तन भी आता है, ये दोनों क्रियाएं अधिगम कही जाती हैं।

प्रत्येक विशेष बालक अपनी मानसिक क्षमता के अनुसार ही सीखता है। कुछ मनोवैज्ञानिक बालक में होने वाले आन्तरिक या मानसिक परिवर्तन को अधिगम कहते हैं। अधिगम की प्रक्रिया प्रत्येक बालक के लिए महत्वपूर्ण होती है, चाहे वह सामान्य हो या फिर विशेष बालक। विशेष बालकों के संदर्भ में उनके अधिगम में विभिन्न प्रकार के कौशलों का समायोजन होता है। उनके अधिगम की प्रक्रिया सामान्य बालकों की ही भांति होती है, परंतु उसमें विभिन्न प्रकार के अनुकूलन व शिक्षण अधिगम सामग्री आदि का प्रयोग किया जाता है। सभी बालक एक समान नहीं होते हैं, उसी प्रकार दिव्यांग बालकों में भी अलग–अलग प्रकार की क्षमता पाई जाती हैं, इन बालकों में अलग–अलग प्रकार की दिव्यांगता होने के कारण उनके सीखने का स्तर, मानसिक क्षमता, शारीरिक शक्ति में अंतर होता है। इनकी अधिगम की प्रक्रिया में हमें विशेष प्रकार के अनुकूलन, पाठ्यक्रम, अनुदेशन एवं तकनीकी की भी आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त विशेष बालकों में स्वयं के अवकाश के समय का उपयोग करने के लिए भी प्रशिक्षण दिया जाता है। यह सभी क्रियाएं विशेष बालकों के अधिगम के लिए आवश्यक होती है। यह बालक सामान्य बालकों की भांति स्वयं से यह सभी क्रियाएं सीख नहीं पाते हैं। उनके शिक्षा एवं पुनर्वास के लिए यह सभी क्रियाएं उनको सिखाना आवश्यक होता है। इस प्रकार अधिगम ही शिक्षा की आधारशिला है, अधिगम और शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं।

1.9 इकाई सारांश

- अधिगम से तात्पर्य व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन से है।
- सीखने से तात्पर्य केवल उन्हीं परिवर्तनों से होता है जो अभ्यास (Practice) या अनुभव (Experience) के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं।
- विशेष बालक के विकास में परिपक्वता एक प्राकृतिक, स्वाभाविक स्थिति होती है, जो एक निश्चित समयान्तराल में पूरी भी हो जाती हैं।
- जब विशेष बालक स्वयं के संवेदी अंगो के द्वारा सीखता है, तब उसे संवेदनात्मक अधिगम कहते हैं।
- किसी विशेष बालक द्वारा मासपेशियों से सम्बन्धित नवीन कौशल सीखना ही गामक अधिगम प्रक्रिया हैं।
- बुद्धि से संबन्धित समस्त क्रियाओं में ज्ञानात्मक अधिगम का प्रयोग किया जाता है।
- जब किसी वस्तु के बारे में संवेदी अंगों द्वारा (छूकर, देखकर या स्वाद लेकर) प्रत्यक्ष रूप में ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे प्रत्यक्षयात्मक अधिगम कहते हैं।
- चिन्तन एवं कल्पना आदि के द्वारा अधिगम प्रक्रिया प्रत्ययात्मक अधिगम होती है।
- जब विशेष बालक पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा नया कौशल सीखता है, तब इसे साहचर्यात्मक अधिगम कहते हैं।
- विशेष बालक द्वारा किसी घटना को ध्यान पूर्वक देखना, उसके बारे में विचार करना, तत्पश्चात् उसको अपने शब्दों में व्यक्त करना यह संपूर्ण प्रक्रिया ही रसानुभूतिपूरक अधिगम है।
- अभिप्रेरक वह स्रोत होते हैं, जो विशेष बालक को व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं।
- अनुभव से तात्पर्य विशेष बालक की संचित अनुभूतियों से होता है, जो विशेष बालक के व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाती है।
- संसार में सभी प्राणी अपनी–अपनी गति से कुछ न कुछ सीखते हैं, अतः अधिगम सार्वभौमिक है।
- अधिगम उद्देश्यपूर्ण है, विशेष बालक किसी उद्देश्य के प्रति प्रेरित होकर ही कार्य को सीखता है।
- विशेष बालकों को दैनिक जीवन के कौशलों, शैक्षणिक तथा व्यवसायिक कौशलों में विभिन्न प्रकार के विशेष अनुदेशनों व जरुरी अनुकूलनों की आवश्यकता होती है।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवहार के अर्जन में प्रगति की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं।

2. जब विशेष बालक स्वयं के संवेदी अंगों के द्वारा सीखता है तब उसे संवेदनात्मक अधिगम कहते हैं।

3. बुद्धि से संबन्धित समस्त क्रियाओं में ज्ञानात्मक अधिगम का प्रयोग किया जाता है।

4. जब विशेष बालक पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा नया कौशल सीखता हैं तब इसे साहचर्यात्मक अधिगम कहते हैं।

5. संसार में सभी प्राणी अपनी–अपनी गति से कुछ न कुछ सीखते है अतः अधिगम सार्वभौमिक हैं।

6. किसी भी क्रिया को सिखाने के लिए क्रिया विश्लेषण (Task Analysis) कार्य को छोटे–छोटे टुकड़ो में विभाजित करके सिखाया जाता है।

1.11 अपनी प्रगति जाँचे

1. अधिगम प्रक्रिया की विशेषताएँ लिखें?
2. विशेष बालकों को .... के द्वारा भी सिखाया जाता है।
3. व्यवहार के द्वारा किसी .... में परिवर्तन सीखना है।
4. प्रत्यक्षयात्मक अधिगम (Perceptual Lerning) क्या है?
5. बुद्धि से संबन्धित समस्त क्रियाओं में .... का प्रयोग किया जाता है।

1.12 अधिन्यास/क्रियाकलाप

1. अधिगम क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?
2. मानव अधिगम की प्रक्रिया पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें ?
3. विशेष बालकों की शिक्षा में अधिगम का क्या महत्व है ?

1.13 विचार विमर्श के बिन्दु/स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

1.13.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....
....
....

1.13.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियों के साथ शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली नवीन तकनीकों व प्रविधियों पर चर्चा करेंगे।

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Biggie, M.L. and Hung, M.P., (1968), Psychological Foundation of Education, New York: Harper & Row.
- Crow, L.D. and Crow, Alice, (1973), Educational Psychology, New Delhi: Eurasia Publishing House.
- Cohen, D. (1979) J.B. Watson, the Founder of Behaviourism, London, Routledge & Kegan Paul. 25, 81—4
- Colthert, M. and Harris, M. (1983) An Introduction to the Psychology of Language, London, Routledge & Kegan Paul. 132
- Campione, J. C., Brown, A. L., & Ferrara, R. (1982).Mental retardation and intelligence.In R. J. Sternberg (Ed.), Handbook of human intelligence (pp. 392–490). New York: Cambridge University Presas.
- Gardner, H. (1993). Multiple Intelligencesa: The theory in practice.New York: Basic Books.
- Gray, J.A. (1979) Pavlov, London, Fontana (a good general survey of Pavlov and his work in a chep paperback).
- Herr, E. L., Moore, G. D., & Hasen, J. S. (1965).Cretivity, intelligence, and valuesa:A study of relationships. Exceptional Children, 32, 114–115.
- Hilgard, E.R. and Bower, G.H., (1957), Theoriesa of Lerning (2nd ed.), Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice Hall.
- Hilgard, E.R. and Bower, G.H. (1981) Theoriesa of Lerning, 5th edn, Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall (the standard work on lerning theory).
- Hilgard, E.R. and Bower, G.H. (1981) Theoriesa of Lerning, 5th edn, Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall. 16
- Hinde, R.A. and Stevenson-Hinde, J. (1973) Constraints on Lerning, London, Academic Presas.
- Jamesa, W. (1891) The Principlesa of Psychology, London, Macmillan.
- Kuppuswami, B., (1964), Advanced Educational Psychology, Delhi: University Publications.
- Mangal, S.K. (2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Lerning Private Limited.
- Murphy, Gardner, (1968), An Introduction to Psychology, New Delhi: Oxford & IBH.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Presasey, Robinson, and Horrocks, (1967), Psychology in Education, Delhi: Universal Book Stall (2nd ed.).

- Spencer, H.S. (1899) The Principlesa of Psychology, 4th edn, London, Williams & Norgate (first published 1855). 26, 112
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.
- Smith, H.P., (1962), Psychology in Teching, Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice Hall.
- Woodworth, R.S., (1945), Psychology, London: Methuen.
- Wolf, M.M., Risley, T. and Meesa, H. (1964) 'Application of operant conditioning proceduresa to the behaviour problems of an autistic child', Behaviour Resaerch and Therapy, 1 ,305—12. 141

इकाई–2

अधिगम के सिद्धान्त–व्यवहारवादी, थार्नडाइक, स्किनर, संज्ञानात्मक एवं समाजवादी विचारधारा

संरचना

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 अधिगम के सिद्धान्त

2.4 पॅावलोव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त

2.4.1 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना

2.4.2 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन सिद्धान्त का शिक्षा में महत्व

2.5 थार्नडाइक का संयोजनवाद अथवा प्रयास एवं त्रुटि विधि

2.5.1 थार्नडाइक का प्रयोग

2.5.2 मेंक्डूगल का चूहों पर प्रयोग

2.5.3 अधिगम सीखने के नियम

2.5.4 शिक्षा में अधिगम के नियमों का महत्व

2.5.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

2.5.6 प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना

2.5.7 शिक्षा में प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धान्त का महत्व

2.6 स्किनर का सक्रिय अनुबंधन का सिद्धान्त

2.6.1 सक्रिय अनुबंधन

2.6.2 सक्रिय व्यवहार एवं पुनर्बलन

2.6.3 सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता

2.7 कोहलर का अंतःदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना

2.7.1 कोहलर का प्रयोग

2.7.2 शिक्षा के अन्तः दृष्टि या सूझ सिद्धान्त का महत्व

2.8 लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त

2.9 मास्लो का मानवतावादी अधिगम सिद्धान्त

2.9.1 मास्लो का मानवीय आवश्यकताओं का क्रमिक प्रारूप

2.9.2 मास्लो के अधिगम सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

2.10 हेगार्टी का अनुकरण सिद्धान्त

2.10.1 अनुकरण सिद्धान्त द्वारा सीखने सम्बन्धी प्रयोग

2.10.2 शिक्षा में अनुकरण का महत्व

2.11 हल का सबलीकरण सिद्धान्त

2.11.1 हल के सिद्धान्त का शैक्षिक महत्व

2.12 टॉलमेंन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त

2.12.1 चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग

2.13 कर्ट कोफ्का का सिद्धान्त

2.14 अधिगम की विधियाँ

2.15 निष्कर्ष

2.16 इकाई सारांश

2.17 बोध प्रश्न के उत्तर :

2.18 अपनी प्रगति जाँचे

2.19 अधिन्यास/क्रियाकलाप

2.20 विचार विमर्श के बिन्दु/स्पष्टीकरण

2.21 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 परिचय

अधिगम एक जीवन पर्यन्त चलने वाली व्यापक प्रक्रिया है जो विशेष बालक की जन्मजात एवं अर्जित प्रक्रियाओं पर आधारित होती है। इसमें विशेष बालक वातावरण से प्रेरित होकर क्रियाएँ करता है तथा अपनी परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करने के लिए क्रियाएँ सीखता है। जिसमें विशेष बालक पूर्व के अनुभवों से नए अनुभवों को जोड़कर सीखता है व वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है। अधिगम की प्रक्रिया को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- पॉवलोव का शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- थार्नडाइक का संयोजनवाद अथवा प्रयास एवं त्रुटि विधि को समझ सकेंगे।
- स्किनर का सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- कोहलर का अंतःदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- मास्लो के मानवतावादी अधिगम सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- हेगार्टी के अनुकरण सिद्धान्त के बारे में समझ सकेंगे।
- हल के सबलीकरण सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- टॉलमेंन के चिन्ह अधिगम सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

2.3 अधिगम के सिद्धान्त (Theoriesa of Lerning)

अधिगम या सीखने की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये। इन प्रयोगों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनमे से प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

- पॉवलोव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- थार्नडाइक का संयोजनवाद अथवा प्रयास एवं त्रुटि विधि एवं शिक्षा में महत्व।
- स्किनर का सक्रिय अनुबंधन का सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- कोहलर का अंतःदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना एवं शिक्षा में महत्व।
- लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- मास्लो का मानवतावादी अधिगम सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- हेगार्टी का अनुकरण सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- हल का सबलीकरण सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।
- टॉलमेंन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त एवं शिक्षा में महत्व।

2.4 पॅावलव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त

रूसी मनोवैज्ञानिक पॅावलोव ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इसका दूसरा नाम सहज सम्बन्ध सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई प्राणी अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक (सहज) क्रिया करना सीख जाता है, तब इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया को सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम कहते हैं। सम्बन्ध प्रत्यावर्तन (Conditioned Resaponse) का अर्थ निम्नलिखित हैं–

लैंडल के अनुसार, ''**सम्बन्ध प्रत्यावर्तन में कार्य के प्रति स्वाभाविक उत्तेजना के स्थान पर प्रभावहीन उत्तेजना होती है जो स्वाभाविक उत्तेजना से सम्बन्धित किये जाने के कारण प्रभावपूर्ण हो जाती है।**''

बरनार्ड के अनुसार, ''**सम्बन्ध प्रत्यावर्तन उत्तेजना की पुनरावृत्ति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है जिसमें उत्तेजना प्रथम किसी प्रतिक्रिया के साथ होती है, परन्तु अन्त में वह स्वयं उत्तेजना बन जाती है।**''

जेम्स ड्रेवर के अनुसार, ''**अनुबन्धन वह प्रक्रिया है, जिसमें एक उत्तेजना किसी वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है। सामान्य दशाओं में यह प्रतिक्रिया, एक सामान्य प्रतिक्रिया की तरह दृष्टिगोचर होती है।**'

पॅावलोव का प्रयोग– पॅावलोव ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अनेक प्रयोग किये। अपने भूखे कुत्ते को एक विशेष प्रकार के बन्द कमरे में रखा। इस कमरे में कुत्ते को सर्वप्रथम घण्टी बजाकर सुनाई गई तथा तुरन्त भोजन रख दिया गया। यह कुछ सप्ताह तक लगातार दोहराया गया, जिससे कुत्ते ने घण्टी के बजने पर, भोजन मिलने की क्रिया को सीख लिया। इसके फलस्वरूप घण्टी के बजते ही कुत्ते के मुँह से लार गिरने लगती थी। कुछ समय पश्चात् कुत्ते के सामने घण्टी बजाई गई किन्तु भोजन नहीं पहुँचाया गया। लेकिन पूर्व में सीखी क्रिया के कारण उसकी लार गिरने लगी। और मुँह से निकलने वाली लार तथा घण्टी के मध्य सम्बन्ध प्रत्यावर्तन के अनुसार घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस सम्बन्ध को कुत्ते ने भली–भॉति सीख लिया। इस प्रयोग में मुँह से लार बहना एक ऐसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया है, जो कृत्रिम उद्दीपन घण्टी से सम्बन्धित हो जाती है।

पॅावलोव ने अपने प्रयोग में तीन तरह के अनुबंधन की बात कही है –

(i) पूर्व अनुबंधन (ningBefore Conditio)– कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) – कोई प्रतिक्रिया नहीं।

(ii) प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) – स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना)

(iii) अनुक्रिया अनुबंधन (During Conditioning)– कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) + प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) – स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना)

(iv) अनुबंधन पश्चात् (After Conditioning)– कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) – स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना)

पॅावलोन के द्वारा गये उपरोक्त प्रयोग में निम्नलिखित चरण (Steps), शास्त्रीय अनुबन्धन में पाये जाते है–

1. उद्दीपक सामान्यीकरण (Generalization)–घण्टी की आवाज को घटाने या बढ़ाने पर भी कुत्ता लार स्रावित करेगा।

2. विभेदन – ज्यादा अभ्यास (Trials)–के बाद कुत्ता निश्चित ही घण्टी पर लार स्रावित करेगा।

3. विलोपन (Extinction)–बार–बार घण्टी बजाने पर यदि भोजन नहीं मिलता तो कुत्ते का लार स्रावित करना धीरे–धीरे कम हो जायेगा।

4. स्वतः पुनर्लाभ–घण्टी बजाकर भोजन न देने के बाद यदि घण्टी बजाकर दिया जायेगा तो कुत्ता दुबारा लार गिराना शुरू कर देगा। जैसे–घटना के विस्मृत हो जाने के बाद पुनः घटित होने पर दुबारा स्मृत हो जाने की प्रक्रिया।

5. उत्तेजना का नियम (Law of Excitement)– कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) + प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) होने पर कुत्ता कृत्रिम उद्दीपन के प्रति उत्तेजना प्रकट करने लगता है।

6. सबलीकरण– इस प्रक्रिया में पुनर्बलन भोजन को कहा गया है। अनुकूलित अनुक्रिया के लिए सबलीकरण का होना आवश्यक है। पॉवलोव के प्रयोग से ही अधिगम के प्रसिद्ध सिद्धान्त 'सबलीकरण के सिद्धान्त' का निर्माण हुआ।

इस प्रकार बालक भी सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखते है। पॉवलोव ने कुत्ते के साथ किए जाने वाले अपने प्रयोग के आधार पर कृत्रिम उद्दीपक (घण्टी) को प्राकृतिक उद्दीपक (भोजन) के साथ प्रस्तुत किया। तथा कुछ समय के बाद प्राकृतिक उद्दीपक को हटा लिया परंतु कृत्रिम उद्दीपन घंटी के साथ वास्तविक अनुक्रिया (मुँह में लार आना) होने लगी। वॉटसन ने भी अधिगम को इसी प्रकार के अनुबंधन का परिणाम बताया है। उन्होंने 11 माह के बालक अल्बर्ट को अनुबंधन के द्वारा पालतू खरगोश तथा फर वाले खिलौने से डरना सिखाने में सफलता प्राप्त की थी।

2.4.1 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना

(Lerning by Conditioned Resaponse)- सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखने की प्रक्रिया के कुछ तत्व निम्नलिखित हैं–

1. सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखने में प्रेरणा (Motivation) का प्रमुख स्थान है क्योंकि बालक अपनी आवश्यकता से प्रेरित होकर ही सीखता है।

2. अपेक्षा (Expectation) के कारण अस्वाभाविक उत्तेजना तथा स्वाभाविक उत्तेजना के बीच सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है।

3. बार–बार पुनरावृत्ति (Repetition) के परिणामस्वरूप स्वाभाविक प्रतिक्रिया करना सीख लेता है। संबंध प्रत्यावर्तन के लिए पुनरावृत्ति आवश्यक है।

4. पॉवलोव ने अपनी प्रयोगशाला में बाधक उत्तेजनाओं को नियंत्रित किया अर्थात् ध्वनि–रक्षक (Sound-proof) लगवाया था। जिससे घण्टी की आवाज जैसी किसी अन्य अस्वाभाविक उत्तेजना का सम्बन्ध स्थापित न हो सके। प्रयोग में बाधक उत्तेजनाओं की अनुपस्थिति (Absence of Distracting Stimulus) अनिवार्य है।

2.4.2 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन सिद्धान्त का विशेष शिक्षा में महत्व

सम्बन्ध प्रत्यावर्तन सिद्धान्त का शिक्षा में निम्नलिखित महत्व है–

1. यह सिद्धान्त विशेष बालकों को सिखाने एवं अनुशासित रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

2. यह सिद्धान्त विशेष बालकों को वांछित व्यवहार सिखाने में अत्यधिक महत्वूपर्ण है।

3. यह सिद्धान्त विषय वस्तु, अक्षर विन्यास आदि सिखाने के लिए महत्वपूर्ण है। क्रो एवं क्रो के अनुसार, **''यह विधि उन विषयों में उपयोगी है, जिनमें चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती; जैसे–संलेख एवं अक्षर विन्यास।''**

4. यह सिद्धान्त विशेष बालकों के लिए पुरस्कार व पुनर्बलन के उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5. सम्बन्ध प्रत्यावर्तन एक उपयोगी सिद्धान्त है, जिस पर अधिगम निर्भर करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. पॉवलोव के सिद्धान्त का दूसरा नाम .... है।

प्रश्न 2. अनुक्रिया अनुबंधन (During Conditioning)– .... + प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) – स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना)

प्रश्न 3. सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखने में .... का प्रमुख स्थान है।

2.5 थार्नडाइक का संयोजनवाद अथवा प्रयास एवं त्रुटि विधि

थार्नडाइक ने अपनी पुस्तक 'एनिमल इंटेलिजेंस' (Animal Intelligence) में संबंधवाद (Connectionism) का प्रतिवादन किया। अतः उद्दीपक अनुक्रिया अनुबंध सिद्धान्त को थार्नडाइक का सीखने का सिद्धान्त भी कहते हैं। थार्नडाइक के अनुसार, **''सीखने में प्रयत्न एवं भूल का सहारा लिया जाता है।''** कोई भी विशेष बालक किसी भी कार्य को एकाएक नहीं सीख सकता, बल्कि उसको सीखने के लिए बालक अनेकों बार प्रयत्न करता है। बार–बार प्रयत्न करने में बालक अनेक गलतियाँ या त्रुटियाँ भी करता है, लगातार प्रयत्न करने से धीरे–धीरे त्रुटियों की संख्या कम होने लगती है। फिर एक अवस्था ऐसी आती है जबकि विशेष बालक किसी कार्य को पूरी तरह सीख लेता है। उदाहरणार्थ– विशेष बालक को पठन कौशल सिखाने हेतु अनेकों बार अभ्यास करवाया जाता है। बालक

अनेकों बार गलत भी पढ़ता है, फिर धीरे–धीरे बालक शब्दों को सही पहचानना व पढ़ना भी शुरू कर देता है। सीखने के इसी सिद्धान्त को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त कहते हैं। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में थार्नडाइक ने अनेक प्रयोग किये।

2.5.1 थार्नडाइक का प्रयोग

थार्नडाइक ने एक विशेष उलझन बॉक्स (Puzzle Box) का प्रयोग किया था। इस बाक्स में एक बटन लगा था। इस बटन के दबाने से बॉक्स का द्वार खुल जाता था। थार्नडाइक ने इस बॉक्स में एक भूखी बिल्ली को बन्द कर दिया तथा बॉक्स के बाहर (कुछ दूरी पर) भोजन के रूप में मछली का एक टुकड़ौ प्लेट पर रख दिया। भोजन को देखकर भूखी बिल्ली बॉक्स में लगातार उछल कूद करने लगी। वह कभी बॉक्स को हिलाती पंजा रगड़ती तो कभी घूर कर प्लेट को देखती थी। इस प्रकार के प्रयासों में भूल से उसका पंजा बटन पर पड़ गया और बटन दबते ही बॉक्स का द्वार खुल गया। बिल्ली बाहर आ गयी और प्लेट के भोजन को खा लिया। दूसरे दिन बिल्ली पर यह प्रयोग पुनः दोहराया गया, इस बार बिल्ली ने बॉक्स से बाहर निकलने में पहले की तुलना में कम समय लिया। इस प्रकार बिल्ली पर इस प्रयोग को लगातार दोहराने पर समय घटता चला गया। समय घटने का यह अर्थ है कि बिल्ली द्वारा द्वार खोलने की क्रिया में गलतियों की संख्या लगातार कम होती चली गयी। अन्त में, लगातार अभ्यास ने बाद बिल्ली ने बिना कोई गलती किए बटन को पंजे से दबाकर खोलना सीख लिया। इस प्रकार बिल्ली ने सही प्रतिक्रिया करना सीख लिया।

2.5.2 मेंक्डूगल का चूहों पर प्रयोग

मेंक्डूगल ने प्रयत्न एवं भूल के सिद्धान्त का सत्यापन करने के लिए चूहों पर कई प्रयोग किए। एक प्रयोग में उन्होंने चूहों को एक बडी नॉद के नीचे बन्द कर दिया। फिर नॉद से बाहर निकलने के लिए केवल दो मार्ग बनाये। इन दोनों मार्गों में एक मार्ग में प्रकाश तथा दूसरा अन्धकार युक्त मार्ग था। पहले चूहे प्रकाशयुक्त मार्ग की ओर जाते थे, किन्तु जैसे ही मार्ग में बिजली का झटका लगता था वे तुरंत ही अन्धकार वाले मार्ग में चढ़ जाते थे। अनेक प्रयासों के बाद चूहों ने प्रकाशयुक्त मार्ग को छोड़कर अन्धकार युक्त मार्ग से बाहर निकलना सीख लिया।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगों द्वारा स्पष्ट है कि प्रयास एवं भूल द्वारा अधिगम निम्नलिखित अवस्थाओं में सम्भव होता है–

1. विशेष बालकों के लिए नवीन परिस्थिति अधिगम के लिए विशेष वातावरण का होना आवश्यक है। शिक्षक अधिगम के लिए विभिन्न परिस्थितियों का निर्माण भी कर सकता है।

2. विशेष बालकों की अधिगम प्रक्रिया में निरन्तर अभ्यास एवं प्रयास (Exercise and Effort) बालक को अधिगम करने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे बालक को समस्या हल करने के लिए आत्मनिर्भर बनाया जा सकता हैं।

3. किसी भी कार्य को करते समय विभिन्न प्रकार की बाधायें आती हैं। बालक को इन बाधाओं का निवारण करना या सीखना ही अधिगम होता है। जैसे– विशेष बालक को परिवहन बस के द्वारा अपने आप विद्यालय से घर जाने के लिए प्रशिक्षण देते समय बालक विभिन्न प्रकार की बाधाओं (Hindrance) का सामना करता है, बस का देरी से आना, गलती से गलत बस में चढ़ जाना आदि। प्रत्येक प्रयास की

स्थिति में बाधा आती हैं, ये बाधायें अधिक अभ्यास व प्रयास के द्वारा दूर की जा सकती हैं।

4. विशेष बालक विभिन्न प्रकार की बाधा को पार करते हुए लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार किसी समस्या का समाधान भी खोजा जाता है।

5. विशेष बालकों को टब में बॉल डालते समय अनेक असफलता के बाद, अचानक सफलता भी प्राप्त होती है। किसी भी कौशल को सीखते समय बालक अनेकों प्रकार की गलतियों के कारण विफलता का सामना करता है परंतु अचानक उसे किसी सही प्रयास के कारण सफलता प्राप्त होती है।

6. विशेष बालक सही क्रिया का चुनाव करके, लगातार अभ्यास के द्वारा उस क्रिया को पूरी तरह से सीख सकता है। आकस्मिक सफलता प्राप्त हो जाने के बाद सही प्रतिक्रिया का चुनाव करके सही क्रिया का स्थायीकरण (Selection and Permanency) हो सकता है।

2.5.3 अधिगम/सीखने के नियम (Laws of Lerning)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अनेकों परीक्षण करके सीखने के नियमों की खोज की है। सीखने के नियम को क्रमबद्ध करने का श्रेय थार्नडाइक को है। थार्नडाइक ने सीखने के निम्नलिखित प्राथमिक नियमों का प्रतिपादन किया है–

1. तत्परता या तैयारी का नियम (Laws of Redinesas)– किसी कार्य को सीखने के लिए विशेष बालक को तैयार करना भी आवश्यक होता है। बालक शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों से किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार होना चाहिए, जिससे वह क्रिया को शीघ्रता से सीख। ऐसी दशा में बालक की सीखने की गति में वृद्धि हो जाती है। शिक्षक को बालक की शारीरिक व मानसिक तत्परता के लिए उसकी रूचि, इच्छा एवं आवश्यकता के आधार पर प्रशिक्षण देना चाहिए।

2. अभ्यास के नियम (Laws of Exercise) इस नियम का अर्थ यह है कि विशेष बालक को कार्य/विषय सिखाने के लिए बार बार अभ्यास कराना जरूरी होता है, लगातार अभ्यास के द्वारा बालक कार्य को सरलता से सीख लेता है, फिर आवश्यकता पड़ने पर उस कार्य को स्वयं भी कर सकता है। अभ्यास के द्वारा बालक की आत्मनिर्भरता एवं कार्य क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। विशेष शिक्षक को गणित, विज्ञान, आदि जटिल विषयों में विशेष बालक को लगातार अभ्यास कराना चाहिए।

3. प्रभाव का नियम (Laws of Effect)- किसी कार्य को करने से विशेष बालक को यदि पुरस्कार (Reinforcement) की प्राप्ति होती है, तब बालक उस कार्य को बार–बार करने का प्रयास करता है। बालकों को किसी क्रिया को सिखाने में पुनर्बलन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके द्वारा शिक्षक बालक के वांछित व्यवहार को बढ़ा सकता है। इसके विपरीत यदि बालक को कार्य करने के पश्चात् दण्ड की प्राप्ति होती है, तो वह उस कार्य की पुनरावृत्ति नहीं करता– इस नियम को प्रभाव का नियम कहते हैं। इस नियम का समर्थन करते हुए मोर्गन गिलीलैण्ड ने लिखा है, **''वे कार्य जो हमें सन्तोष देते है, पक्के हो जाते है तथा वे कार्य जिनके परिणाम हमें असन्तोष देते है, इतनी सरलता से पक्के नहीं होते।''**

थाईडाइक के उपर्युक्त तीन नियमों के अतिरिक्त अधिगम के अन्य नियम निम्नलिखित है–

1. पुनरावृत्ति का नियम (Laws of Repetition) इस नियम के अनुसार विशेष बालक को लगातार अभ्यास कराया जाये तो वह विषय या क्रिया को शीघ्रता से सीख लेता है।

2. नवीनता का नियम (Laws of Novelty) जो क्रियाएँ नवीन एवं रोचक होती हैं, उन्हें बालक अभ्यास के द्वारा सीख सकते हैं।

3. प्राथमिकता का नियम (Laws of Primacy) पूर्व के अनुभवों के आधार पर ही बालक प्रतिक्रिया करते हैं अर्थात् वह नए ज्ञान को पूर्व के अनुभव से जोड़कर देखते हैं। मन के अनुसार, **''अन्य बातों के समान होने पर किसी श्रृंखला के प्रारम्भिक अनुभव एवं कार्य लाभ में रहते हैं।''**

4. अनुपयोग का नियम (Laws of Disuse) अभ्यास न करने पर या सीखे गये कार्य का प्रयोग न होने पर बालक द्वारा वह कार्य भुला दिया जाता है। गेट्स के अनुसार, **''जब परिस्थिति एवं प्रतिक्रिया के बीच परिवर्तनीय सम्बन्ध का दीर्घ काल तक अभ्यास नहीं होता है, तो सम्बन्ध कमजोर पड़ जाता है।''**

थानडाईक द्वारा प्रतिपादित नियमों एवं अन्य नियमों के अनुसार सीखने में अभ्यास के साथ–साथ सीखने वाले की रूचि एवं मनोवृत्ति का भी महत्व होता है, जिसके लिए लगातार अनुभव की आवश्यकता होती है।

2.5.4 विशेष शिक्षा में अधिगम के नियमों का महत्व

थार्नडाइक के अधिगम सम्बन्धी नियमों का विशेष शिक्षा में निम्नलिखित महत्व है–

1. तत्परता का नियम, सीखने का प्राथमिक नियम है। विशेष शिक्षा में इसका अत्यधिक महत्व है। विशेष बालक जिस कार्य को सीखने के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से तत्पर होगा उसे वह सरलता से सीख लेगा। इस प्रकार अधिगम प्रक्रिया का रूचिपूर्ण होना अति आवश्यक है जैसे–विशेष बालक को खेल–खेल में गणित सिखाना आदि।

2. अभ्यास के नियम का विशेष शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। विशेष बालक को किसी कार्य को जितना अधिक अभ्यास कराया जायेगा, वह अमुक कार्य को उतनी ही अच्छी तरह से सीख लेगा। विशेष बालक को विभिन्न विषयों का निरन्तर अभ्यास कराना आवश्यक है। छोटी कक्षाओं में विशेष बालक वर्णमाला, गिनती आदि अभ्यास के नियम के आधार पर ही सीखते हैं।

3. प्रभाव का नियम विशेष बालकों की शिक्षा में पुरस्कार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ–साथ विशेष बालक को कक्षा में वांछित व्यवहार प्रदर्शित करने पर पुनर्बलन दिया जाना बालक के सकारात्मक व्यवहार को बढ़ाता है। विषय सीखने पर बालक को प्राथमिक या सामाजिक पुनर्बलन दिये जाने पर उसके सीखने में वृद्धि होती है। इसके विपरीत यदि बालक को क्रिया विशेष के लिए नकारात्मक पुनर्बलन दिया जाता है तो बालक उस व्यवहार की पुनरावृत्ति नहीं करता, इस प्रकार यह नियम विशेष बालकों के व्यवहार परिमार्जन के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

2.5.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

(Factors Affecting Lerning)- अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित है–

1. **शारीरिक कारक (Physiological Factors)** विशेष बालक के सीखने की क्रिया में उसकी आयु एवं स्वास्थ्य का प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ शरीर वाला बालक विभिन्न क्रिया कलापों को सरलता से सीख लेता है। इसके विपरीत दुर्बल एवं अस्वथ बालक कक्षा में विषय पर ध्यान नहीं दे पाता, जिससे वह विषय कठनाई से सीखता है।

2. **भौतिक कारक (Physical Factors)** विशेष बालकों के लिए उपयुक्त वातावरण का होना आवश्यक है। जैसे–विशेष बालक, तेज प्रकाश, शोरगुल वाले वातावरण के कारण सीखने में कठिनाई का अनुभव करते है, क्योकि यह सब सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

3. **मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)** सीखना एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, अतः बालक की मनोवैज्ञानिक स्थिति इसे प्रभावित करती है। विशेष बालकों को क्रिया सिखाने के लिए प्रेरित करना आवश्यक होता है, इसके द्वारा बालक को क्रिया के प्रति अधिक सक्रिय किया जा सकता है।

सीखने पर बुद्धि का विशेष प्रभाव पड़ता है। विशेष बालकों को सीखने की प्रक्रिया में बहुइंद्रिय उपागम का प्रयोग भी उनके अधिगम को प्रभावित करता है। विद्यालयों में विशेष बालकों की रूचि एवं क्षमता की जाँच करके उसी के अनुसार शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए जिससे बालक शीघ्रता से सीख लेता है। एक मनोवैज्ञानिक का कथन है, **''घोड़े को पानी के तालाब तक तो ले जाया जा सकता है, किन्तु उसे उसकी इच्छा के विरूद्ध पानी नहीं पिलाया जा सकता।''**

2.5.6 प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बालक प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखता है। प्रयास एवं त्रुटि से सीखने की क्रिया में निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं–

1. विशेष बालक में क्रिया के प्रति अंतर्नोंद (Drive) का होना आवश्यक है। अंतर्नोंद ही बालक को सीखने की प्रेरणा देता है और उसे कार्य करने के लिए क्रियाशील भी बनाता है।

2. विशेष बालक जब अन्तनोंद की सन्तुष्टि में बाधा देखता है, तो वह लक्ष्य प्राप्ति में बाधा दिखने पर अधिक प्रयास करता है। प्रयास एवं त्रुटि करते – करते बालक क्रिया को सीख जाता है।

3. विशेष बालक को सही क्रिया विधि का ज्ञान नहीं होता। कभी – कभी शारीरिक, मौखिक, एवं सांकेतिक सहायता के द्वारा भी विशेष बालक को क्रिया विधि सिखायी जाती है।

4. लगातार अभ्यास के बाद विशेष बालक सही क्रियाओं को सहायता के साथ या बिना सहायता के पहचानना प्रारम्भ कर देता है फिर धीरे–धीरे बालक स्वयं से क्रिया करने लगता है।

2.5.7 शिक्षा में प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धान्त का महत्व

प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धान्त का शिक्षा में महत्व निम्नलिखित है–

1. विशेष बालक अधिकांश बातें इसी सिद्धान्त के आधार पर सीखते हैं।
2. यह सिद्धान्त विज्ञान एवं गणित विषय को क्रमबद्ध रूप से सीखने के लिए उपयोगी है।
3. यह सिद्धान्त विशेष बालक को सीखे गए कौशल को सामान्यीकरण करने के लिए आवश्यक है।
4. यह सिद्धान्त लिखना, पढ़ना इत्यादि अनेक कौशलों को सीखने के लिए प्रेरित करता है।
5. यह सिद्धान्त शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निरन्तर अभ्यास, पर जोर देता है।
6. इस सिद्धान्त का प्रारूप सुधारात्मक है। जिसके द्वारा विशेष बालक अपनी पहले की गई त्रुटियों से अनुभव प्राप्त करता है।
7. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त को सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव वाला सिद्धान्त कहा है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. थार्नडाइक ने अपनी पुस्तक ....में संबंधवाद (Connectionism) का प्रतिवादन किया।

प्रश्न 5. किसी कार्य को करने से विशेष बालक को यदि ....की प्राप्ति होती है, तब बालक उस कार्य को बार बार करने का प्रयास करता हैं।

प्रश्न 6. जो क्रियाएँ .... होती हैं उन्हें बालक अभ्यास के द्वारा सीख सकते हैं।

2.6 स्किनर का सक्रिय अनुबंधन का सिद्धान्त

अमेंरिकन मनोवैज्ञानिक बी0 एफ0 स्किनर ने अधिगम के सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्होंने अपने सिद्धान्त में काफी महत्वपूर्ण प्रयोग किए। उनमें से कुछ प्रयोग निम्नवत है–

स्किनर ने प्रयोग के लिए एक विशेष संयंत्र बनाया, जो स्किनर बॉक्स के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रयोग में अंधकार युक्त, शान्त बॉक्स में भूखे चूहे को सकरे रास्ते से गुजर कर लक्ष्य तक पहुंचना था। भोजन प्राप्ति के लिए जैसे ही भूखा चूहा मार्ग पर जाता था, लीवर पर चूहे का पैर पड़ता था, और खट की आवाज या प्रकाश के साथ उसे कुछ खाना प्राप्त हो जाता था। लीवर को दबाने से होने वाली आवाज और प्राप्त हुआ भोजन पुनर्बलन (Reinforcement) का कार्य करता था। इस प्रकार चूहे को जैसे–जैसे पुनर्बलन मिलता चला गया, वैसे–वैसे वह तीव्रता से सही अनुक्रिया करने लगा।

कबूतरों पर प्रयोग करने के लिए इस स्किनर ने एक अन्य संयंत्र, कबूतर पेटिका (Pigeon Box) का उपयोग किया। इस प्रयोग में भूखे कबूतर ने जैसे ही दाहिनी ओर घूमकर सुनिश्चित स्थान पर चोच मारी, उसे अनाज का एक दाना प्राप्त हुआ। इस प्रकार धीरे–धीरे कबूतर ने दाहिनी ओर सिर घुमा कर चोच मारने की क्रिया द्वारा भोजन प्राप्त करना सीख लिया।

विभिन्न प्रयोगो द्वारा स्किनर ने अधिगम के क्षेत्र में एक नए सिद्धान्त 'सक्रिय अनुबंधन' को जन्म दिया। सीखने संबंधी व्यवहार को सक्रिय अनुबंधन संचालित करता है। विशेष बालक का व्यवहार और अनुक्रिया कुछ सीमा तक सक्रिय व्यवहार का ही रूप होती हैं। ऐसे सभी व्यवहार तथा अनुक्रिया जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होते हैं, उसे अनुक्रिया व्यवहार (Resapondent Behaviour) तथा उन व्यवहार अथवा अनुक्रियाओं को जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण नहीं होते, उन्हें सक्रिय व्यवहार कहते हैं। विशेष बालक का सक्रिय व्यवहार उद्दीपन पर आधारित न होकर अनुक्रिया अथवा व्यवहार पर निर्भर करता है। यहाँ बालक को पहले कुछ न कुछ करना होता है। इसके पश्चात् ही उसे परिणाम के रूप में कुछ पुनर्बलन मिलता है।

2.6.1 सक्रिय अनुबंधन

स्किनर के अनुसार सक्रिय अनुबंधन से अभिप्राय एक ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सक्रिय व्यवहार की सुनियोजित पुनर्बलन (Planned Reinforcement Schedulesa) द्वारा बार–बार पुनरावृत्ति होती रहती है और विशेष बालक व्यवहार सीखने में समर्थ हो जाता है।

अधिगम की इस प्रक्रिया में बालक को पहले कोई न कोई क्रिया करनी पड़ती है, यही व्यवहार पुनर्बलन उत्पन्न करने में माध्यम (Instrumental) का कार्य करता है। प्राथमिक पुनर्बलन आदि के रूप में पुरस्कार की प्राप्ति होने पर बालक उसी व्यवहार की पुनरावृत्ति करता है, जिसके परिणामस्वरूप उसे पुरस्कार अथवा पुनर्बलन प्राप्त हुआ था। फिर वह अपने व्यवहार की पुनरावृत्ति करता है। अंत में विशेष बालक वांछित व्यवहार सीख लेता है।

2.6.2 सक्रिय व्यवहार एवं पुनर्बलन

पुनर्बलन सक्रिय व्यवहार को सीखने के कार्य में सहायता देता है। विशेष बालक द्वारा की गई किसी अनुक्रिया अथवा व्यवहार को हम दो प्रकार से पुनर्बलित कर सकते हैं। जैसे– कुछ मनपसंद चीजों को देकर, जिसे पाना उसे अच्छा लगे, इस पुनर्बलन को धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) कहते हैं। जैसे–भोजन, टॉफी, मान–सम्मान, प्रशंसा आदि की प्राप्ति। दूसरे प्रकार का पुनर्बलन ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement) कहलाता है। जैसे–खेल के समय पर कार्य करवाना आदि।

सक्रिय अनुबंधन द्वारा बालक को वांछित व्यवहार सिखाने के लिए पुनर्बलन यथोचित समयानुसार दिया जाना चाहिए। मुख्य रूप से निम्न चार प्रकार का पुनर्बलन आयोजन (Reinforcement Schedule) प्रयोग में लाया जाता है–

1. सतत पुनर्बलन आयोजन (Continuous Reinforcement Schedule)–इसमें विशेष बालक की प्रत्येक सही अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलित (पुरस्कृत) किया जाता है।

2. निश्चित अंतराल पुनर्बलन आयोजन (Fixed Interval Reinforcement Schedule)–इस आयोजन में विशेष बालक को एक निश्चित समय के पश्चात् पुनर्बलन दिया जाता है, जैसे– विशेष बालक को सही कार्य करने पर कुछ मिनट के बाद भोजन/चिप्स का कुछ अंश देना आदि।

3. निश्चित अनुपात पुनर्बलन आयोजन (Fixed Ratio Reinforcement Schedule)– इस आयोजन में यह निश्चित अनुपात में पुनर्बलन प्रदान किया जाता है कि कितनी बार सही अनुक्रिया करने पर पुनर्बलन दिया जाए। उदाहरण के लिए विशेष बालक को सही कार्य करने पर निश्चित अनुपात में भोजन/चिप्स का कुछ अंश देना आदि।

4. परिवर्तनशील पुनर्बलन आयोजन (Variable Reinforcement Schedule)–कई बार पुनर्बलन किसी भी अनुक्रियाओं के पश्चात् दिया जाता है। इस प्रकार के पुनर्बलन आयोजन को परिवर्तनशील पुनर्बलन आयोजन का नाम दिया जाता है।

पुनर्बलन आयोजन के उपरोक्त प्रकारों की उपयुक्तता के बारे में अगर सोचा जाए तो विशेष बालक को वांछित व्यवहार सिखाने के लिए पुनर्बलन दिया जाता है ताकि बालक वांछित व्यवहार को स्थाई रूप से सीख सके।

स्किनर की ही भांति अल्बर्ट बंडूरा ने भी व्यवहारवादी सिद्धान्त के समर्थक हैं। इन्होंने समान स्पष्ट व्यवहारों पर जोर दिया है। इसके साथ–साथ व्यवहार में मॉडल द्वारा रूपान्तरण होने की बात कही है। सीखने की प्रक्रिया में आंतरिक संज्ञानात्मक चरों की व्याख्या की गयी है जो व्यक्ति को उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच मध्यस्थता करते हैं।

अल्बर्ट बंडूरा के अनुसार मानव अपने जीवन काल में विभिन्न व्यवहारों को सीखता है तथा समय– समय पर उन्हें दोहराता भी है। बालक के सीखने की प्रक्रिया में प्रेक्षण (Observation) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेष बालक देखे गए व्यवहारों को सीखता है अथवा उन व्यवहारों को दोहराता है। यही प्रक्रिया प्रेक्षण के द्वारा सीखना कहलाती है।

2.6.3 सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता

सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त विशेष शिक्षा जगत में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसमें से कुछ बातें निम्न है–

1. सीखने की प्रक्रिया को उचित पुनर्बलन द्वारा नियंत्रित और आयोजित करें जिससे विशेष बालक निरंतर आगे बढ़ने को प्रोत्साहित होता रहे।

2. सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का उपयोग विशेष बालकों के व्यवहार परिमार्जन में बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है। वांछित व्यवहार की पहचान करके उसमें

अपेक्षित परिवर्तन लाना है तो उपयुक्त पुनर्बलन द्वारा इस व्यवहार की पुनरावृत्ति को बढ़ाया जा सकता है।

3. अपेक्षित व्यवहार की ओर बालक तेजी से अग्रसर होगा और पुनर्बलन के संतुलित उपयोग द्वारा वांछित व्यवहार को सीखने में समर्थ हो जाएगा।

4. विशेष बालक के सर्वांगीण विकास के लिए सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त उपयोगी है। हेरगनहॉन के अनुसार –हम अपने आप में वही होते हैं जिसके लिए हमें प्रोत्साहित या पुरस्कृत किया जाता है। जिसे हम व्यक्तित्व कहते हैं वह और कुछ नहीं बल्कि समय–समय पर प्राप्त उन पुनर्बलनों का परिणाम है जिससे हम और हमारा व्यवहार एक निश्चित सांचे में ढल जाता है। उदाहरण के लिए एक अंग्रेज बच्चा छोटी आयु में ही अंग्रेजी अच्छी तरह से बोलना इसलिए सीख जाता है क्योंकि जब पहली बार उसने अंग्रेजी भाषा जैसी ध्वनियाँ निकाली होगी तो उसके प्रयत्नों को पूरा प्रोत्साहन मिला होगा। अगर यही बच्चा किसी जापानी या रूसी परिवार में पैदा होता तो फिर अंग्रेजी का स्थान जापानी या रूसी भाषा ने ले लिया होता क्योंकि इस अवस्था में उसे वैसा प्रयास करने पर अपने परिवेश द्वारा पुनर्बलन या प्रोत्साहन मिलता।

5. इस सिद्धान्त के अनुसार अनुक्रिया की उपयुक्तता एवं कार्य की सफलता, अभिप्रेरणा के सबसे अच्छे स्त्रोत हैं। विशेष विद्यार्थी के लिए कक्षा में शाबाशी के शब्द, अध्यापक के प्रोत्साहित करने वाले हाव–भाव, अधिक अंक और पुरस्कार, तालियाँ आदि सभी ऐसे पुनर्बलन हैं। जिनके द्वारा विशेष विद्यार्थी अधिक उत्साह से सीखने की ओर अग्रसर हो सकता है।

6. सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त के अनुसार नकारात्मक पुनर्बलन के द्वारा कुछ समय के लिए बुरे व्यवहार की पुनरावृत्ति रुक सकती है। इसलिए वांछित व्यवहार को सकारात्मक पुनर्बलन प्रदान करना आवश्यक है।

सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त के अनुसार अधिगम में सीखने की सामग्री को इस तरह आयोजित किया जाए कि जिससे विशेष बालक क्रिया के प्रति प्रेरित रहे। इसमें बालक को उसकी क्षमता व गति से सीखने का अवसर भी मिलना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 7. ऐसे सभी व्यवहार तथा अनुक्रिया जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होते हैं, उसे .... कहते हैं।

प्रश्न 8. सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का उपयोग विशेष बालकों के ....में बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है।

प्रश्न 9. .... में विशेष बालक की प्रत्येक सही अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलित (पुरस्कृत) किया जाता है।

2.7 कोहलर का अंतःदृष्टि या सूझ द्वारा सीखना

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध जर्मन मनोवैज्ञानिक कोहलर ने किया था। यह सिद्धान्त गैस्टाल्ट मत पर आधारित है। कोहलर के अनुसार, **''अधिगम प्रयत्न एवं भूल के द्वारा नहीं, बल्कि अन्तः दृष्टि के आधार पर किया जाता है। जब बालक किसी परिस्थिति अथवा समस्या के सभी अंगों को आपसी सम्बन्ध से समझ लेता है और तर्क–वितर्क द्वारा निष्कर्ष पर पहुँच जाता है तब इसको अन्तःदृष्टि (सूझ) द्वारा सीखना कहते हैं।''** जब विशेष बालक के सामने कोई समस्या उत्पन्न होती है तो वह समस्या के समाधान के लिए उसके अनुकूल योजनाबद्ध प्रतिक्रिया करता है समस्या समाधान के लिए अपनी अन्तःदृष्टि या सूझ का प्रयोग करता है। इस प्रतिक्रिया को अन्तःदृष्टि द्वारा अधिगम कहते है इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य सीख सकता हैं किन्तु पशु नहीं, पशु में मनुष्य जैसी अन्तः दृष्टि या सूझ सम्बन्धी विशेषताएँ नहीं पायी जाती है। चिम्पैन्जी कुछ मात्रा में सूझ के द्वारा सीख पाने में समर्थ होते है, इसलिए कोहलर ने चिम्पैन्जी पर अनेक प्रयोग किये।

2.7.1 कोहलर का प्रयोग

1. छड़ी सम्बन्धी प्रयोग – कोहलर ने एक भूखे चिम्पैन्जी को एक विशेष प्रकार के पिंजड़े में बन्द कर दिया उसके पिंजड़े में कई छड़ियाँ रख दी गयी। इन छड़ियों को परस्पर जोड़कर लम्बा किया जा सकता है। पिंजड़े के बाहर उसके लिए केले रख दिये गये भूखे चिम्पैन्जी ने केले देखकर उछल कूद प्रारम्भ कर दी, फिर उसने एक छड़ी की सहायता से केले खींचने का प्रयास किया, लेकिन सफल नहीं हो सका। ऐसा उसने दो तीन बार किया किन्तु वह हर बार असफल रहा तभी उसे दूसरी छड़ी दिखाई दी। वह उस छड़ी को देखता रहा, अचानक उसे दोनों छड़ियों को जोडने की सूझ आ गयी। अब दोनों छड़ियों को जोड़कर उसने केलों को पिंजड़े के पास खींच लिया और उन्हें खा लिया। इस प्रयोग द्वारा सूझ के सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

2. बॉक्स सम्बन्धी प्रयोग– कोहलर ने भूखे चिम्पैंजी को एक कमरे में बन्द कर दिया, जिसकी छत पर केले लटक रहे थे और फर्श पर तीन चार खाली बॉक्स पड़े हुये थे। जैसे ही चिम्पैंजी लटके हुए केले देखता है, उनको पकड़ने का प्रयास करता है, परन्तु ऊँचाई अधिक होने के कारण वो केले प्राप्त करने में असफल रहता है। कुछ देर बाद वह फर्श पर पडे हुए खाली बॉक्सों को अच्छी तरह देखता है, और बॉक्सों को एक दूसरे के ऊपर क्रम से रखकर उन पर चढ़ जाता है और छत पर लटके केले प्राप्त कर लेता है। यह उसकी अन्तःदृष्टि या सूझ ही थी जिसके द्वारा व केले प्राप्त करना सीख गया। उपर्युक्त प्रयोगों से स्पष्ट है कि अन्तःदृष्टि द्वारा अधिगम उच्च कोटि का होता है, क्योंकि इसमें मानसिक प्रयास और कल्पना का प्रयोग होता हैं। इसमें बालक बौद्धिक स्तर पर स्थिति का अवलोकन करके समस्या को समझ कर प्रतिक्रिया करता है और सीखता है। उदाहरणार्थ–गणित का प्रश्न हल करते समय कल्पना का प्रयोग करते हुए मानसिक प्रयास किया जाता है तब प्रश्न का हल सही होता है।

2.7.2 विशेष शिक्षा में अन्तः दृष्टि या सूझ सिद्धान्त का महत्व

अन्तः दृष्टि सिद्धान्त का शिक्षा में निम्नलिखित महत्व है–

1. यह सिद्धान्त विशेष बालकों को जटिल विषयों को समझाने में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

2. यह सिद्धान्त गणित, विज्ञान जैसे क्रमबद्ध विषयों को सीखने में बहुत लाभप्रद है।

3. अन्तःदृष्टि सिद्धान्त विशेष बालकों में कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति तथा समस्या समाधान में उपयोगी है।

4. अन्तःदृष्टि सिद्धान्त द्वारा सीखने में समय एवं शक्ति दोनों की बचत होती है।

5. अन्तःदृष्टि सिद्धान्त विशेष बालकों को रचानात्मक कार्यों को सिखाने के लिए उपयोगी है। क्रो एवं क्रो के अनुसार, **''यह विधि कला, संगीत एवं साहित्य की शिक्षा में अधिक उपयोगी है।''**

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 10. विशेष बालक अगर समस्या समाधान के लिए अपनी अन्तः दृष्टि या सूझ का प्रयोग करता है तो इस प्रतिक्रिया को .... अधिगम कहते है।

प्रश्न 11. अन्तः दृष्टि सिद्धान्त विशेष बालकों में कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति तथा ....में उपयोगी है।

प्रश्न 12. कोहलर का सिद्धान्त .... पर आधारित है।

2.8 लेविन का अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त

कर्ट लेविन का जन्म जर्मनी में 1890 ई० में हुआ था। कर्ट लेविन द्वारा प्रतिपादित अधिगम संबंधी क्षेत्र सिद्धान्त यह बताता है कि अधिगम की प्रक्रिया विशेष बालक एवं उसके वातावरण दोनों का प्रतिफल होती है। लेविन के अनुसार बालक के व्यवहार को समझने के लिए बालक की स्थिति को उद्देश्यों से संबन्धित मानचित्र में निर्धारित करने एवं प्रयत्नों की जानकारी आवश्यक है। यह सिद्धान्त बालक एवं उसकी अधिगम प्रक्रिया को सापेक्षिक अर्थात् एक दूसरे से संबंधित मानता है। इस सिद्धान्त में व्यवहार को एक प्रमुख स्थान दिया गया है। लेविन के अनुसार अधिगम की समस्या, कोई विचित्र वस्तु नहीं है। अधिगम को स्पष्ट रूप से समझने के लिए केवल इतना ही समझना होगा कि जीवन विस्तार पुनः व्यवस्थित होता है और मनोवैज्ञानिक संसार की पुनर्रचना होती है। कर्ट लेविन ने तीन अवधारणों का उल्लेख किया है–

1. जीवन दायरा (Life Space)–लेविन का विचार है कि किसी व्यक्ति के जीवन दायरे को मनोवैज्ञानिक क्षेत्र कहा जाता है। यह मनोवैज्ञानिक व्यक्ति तथा उसके

मनोवैज्ञानिक वातावरण की अंतःक्रिया का प्रतिफल होता है। व्यक्ति व्यवहार करते या सीखते समय जैविक प्राणी की तरह नहीं बल्कि एक मनोवैज्ञानात्मक व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है।

2. वेक्टर्स एवं कर्षण शक्तियाँ (Vectors & Valencesa)– किसी बालक को लक्ष्य के पास या लक्ष्य से दूर ले जाने वाली शक्ति को वैक्टर कहा गया है।

3. टोपोलौजी (Topology)– लेविन ने यह अवधारणा गणित के क्षेत्र से ली है, इस अवधारणा का बालक के जीवन में प्रत्यक्षीकरण एवं अंतःक्रियाओं के कारण आने वाले विभिन्न परिवर्तनों का सर्वोत्तम प्रयोग है। अर्थात् विशेष बालक के अधिगम प्रक्रिया में बाधाएं आती रहती है किन्तु इनके बावजूद भी बालक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाता है।

कर्ट लेविन द्वारा प्रतिपादित किया गया 'क्षेत्र सिद्धान्त' के अनुसार अधिगम विशेष बालक और वातावरण दोनों का प्रतिफल है। इस प्रकार लेविन के अनुसार अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें परिस्थिति तथा समय विशेष में बालक द्वारा किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपने जीवन दायरे की संज्ञानात्मक संरचना में अपेक्षित परिवर्तन लाने के प्रयास किए जाते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 13. अधिगम की प्रक्रिया विशेष बालक एवं उसके वातावरण दोनों का .... होती है।

प्रश्न 14. कर्ट लेविन का जन्म .... में 1890 ई० में हुआ था।

प्रश्न 15. किसी बालक को लक्ष्य के पास या लक्ष्य से दूर ले जाने वाली शक्ति को .... कहा गया है।

2.9 मास्लो का मानवतावादी अधिगम सिद्धान्त

मानवतावादी विचारधारा में विश्वास रखने वाले मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो द्वारा इस अधिगम सिद्धान्त को जन्म दिया गया। इन मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स, जोहन हाल्ट तथा मेंकोम नाउल्स के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं। अब्राहम मास्लो ने अपनी अवधारणा को विकसित करते हुए स्पष्ट किया कि मानव मात्र की मूलभूत आवश्यकताओं को उनके महत्व, उपयोगिता या अनिवार्यता की दृष्टि से निचले स्तर से लेकर उच्चतम स्तर के एक निश्चित क्रम में इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि एक आवश्यकता दूसरी आवश्यकता को जन्म देने का कारण बनती है, एवं बालक का विकास इन सभी बातों पर निर्भर करता है। इस प्रकार पांच प्रकार की मूलभूत आवश्यकताओं को निचले से लेकर उच्चतम विभिन्न स्तरों पर क्रमिक रूप से व्यवस्थित किया गया है, जिनका विवरण निम्न प्रकार से है–

2.9.1 मास्लो का मानवीय आवश्यकताओं का क्रमिक प्रारूप

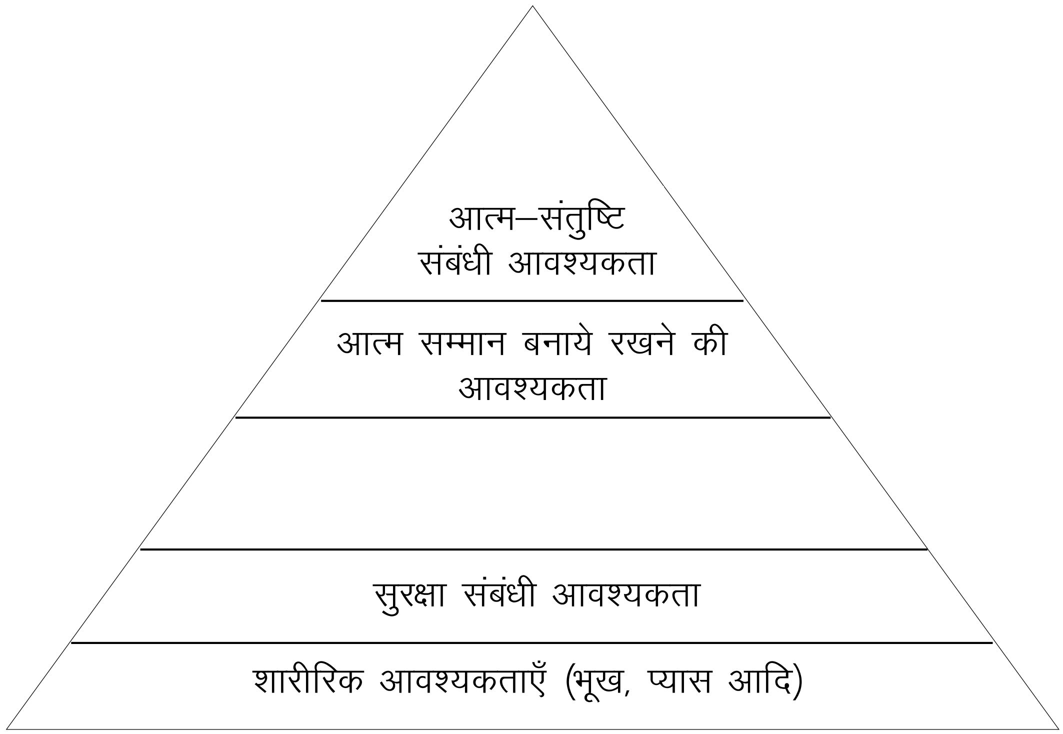

प्यार और दूसरों से संबंधित रहने की
आवश्यकता (समूह विशेष का अंग बनना)

1. प्रथम स्तर पर शारीरिक आवश्यकताएं आती हैं। विशेष बालक ज्यादातर इस प्रकार की आवश्यकताओं में अधिक संलग्न रहते हैं। इन आवश्यकताओं में भूख, प्यास, निद्रा, तथा मलमूत्र त्याग आदि का समावेश होता हैं। कुछ विशेष बालकों को उनके अधिगम प्रक्रिया में दैनिक जीवन संबंधी प्रशिक्षण दिया जाता हैं। जिससे वह स्वयं अपनी निजी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

2. द्वितीय स्थान पर सुरक्षा संबंधी आवश्यकताएं आती हैं। विशेष बालक पहले स्तर की आवश्यकताओं की संतुष्टि के बाद अपनी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में सोचता है। समाज में व्याप्त नियम एवं कानूनों के अनुपालन की बात सोचता है। विशेष बालक को उसकी मानसिक क्षमता के अनुसार इसमें भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. तृतीय स्तर पर अनुभव की जाने वाली आवश्यकताओं में प्यार और दूसरों से जुड़े रहने वाली आवश्यकताएं आती हैं। बालक किसी भी आयु, समाज, धर्म, लिंग या दिव्यांगता का हो वह समान रूप से प्यार पाना और प्यार करना भी चाहता है। इसके साथ–साथ वह समाज के समूह का हिस्सा भी बनना चाहता है। विशेष बालकों को सम्प्रेषण में कठिनाई होने के कारण समाजिकता सम्बन्धी प्रशिक्षण भी करवाना आवश्यक होता है।

4. आत्मसम्मान संबंधी आवश्यकताएं चतुर्थ स्तर पर आती हैं। इसकी पूर्ति हेतु बालक अपने में उपस्थित क्षमता के अनुसार प्रयास करता है तथा उपलब्धि और प्रसिद्धि भी प्राप्त करता है।

5. पांचवें स्तर पर आत्म संतुष्टि संबंधी सबसे उच्च प्रकार की आवश्यकताएं आती है, जिसमें बालक अपनी अंतर्निहित क्षमता की संतुष्टि से संबंधित आवश्यकताओं के बारे में सोचता है। बालक के जीवन का लक्ष्य इसी स्तर की आवश्यकता में वर्णित होता है। जैसे –संगीतकार, नाटककार, नृत्यकार, गणितज्ञ आदि अपनी क्षेत्र में यश तथा प्रतिभा कमाने के बाद अपने जीवन में इस आवश्यकता की संतुष्टि का अनुभव करते हैं। यह आवश्यकताएं बालक को जीवन के लक्ष्य और संतुष्टि की तरफ ले जाती है।

अब्राहम मास्लो द्वारा दिया गया अधिगम सिद्धान्त एक मानवतावादी सिद्धान्त है ऐसा इसलिए हैं, क्योंकि इस सिद्धान्त में बालक के अधिगम को एक संपूर्ण मानवी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। जिसके द्वारा अधिगमकर्ता (विशेष बालक) को अपने सभी दैनिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है। विशेष बालक की सभी मूलभूत आवश्यकताओं को क्रमिक रूप से इसी सिद्धान्त में प्रस्तुत किया गया है, अधिगम प्रक्रिया को किसी भी प्रकार से बालक पर थोपा नहीं जाता बल्कि वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसको क्रमिक रूप से सीखता चला जाता है। बालक प्रथम अवस्था से उच्चतम स्तर तक लगातार संतुष्ट होता जाता है। इसके साथ–साथ उसके व्यवहार में वांछित परिवर्तन भी होता है और यही अधिगम है।

2.9.2 अब्राहम मास्लो के अधिगम सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता

अब्राहम मास्लो के द्वारा दिए गए अधिगम सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता के बारे में हम निम्न प्रकार से चर्चा कर सकते हैं–

1. विशेष विद्यार्थियों में भी अनुभव प्राप्त करने की क्षमता अन्य बालकों की ही भांति होती है, वह भी मानवीय गुणो से युक्त होते हैं। उनके साथ भी शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रिया में समान व्यवहार करना चाहिए। मशीन या अन्य पदार्थों की तरह उनके साथ व्यवहार नहीं करना चाहिए। अधिगम प्रक्रिया के द्वारा बालकों में आत्म संप्रत्यय का विकास होता है।

2. मानवतावादी अधिगम के द्वारा विशेष बालकों के अंदर शिक्षा एवं अधिगम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी विकसित होता है।

3. विशेष बालकों के संदर्भ में मानवतावादी विचारधारा अधिक प्रभावी है क्योंकि समाज में प्रत्येक स्तर पर उन्हें निम्न दृष्टि से देखा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रम से अधिगम प्राप्त करने की प्रक्रिया इन बालकों के लिए अधिक उपयोगी है। हम देख सकते हैं कि जैसे–जैसे इन बालकों में मानसिक विकास होता है, उसी के आधार पर उनमें अधिगम का भी विकास होता है।

4. विशेष बालकों की अधिगम प्रक्रिया में सकारात्मक पुनर्बलन प्रदान करना चाहिए, जिससे वह अधिगम के लिए अधिक प्रेरित हो सकें।

5. यह सिद्धान्त विशेष बालकों में स्वअनुशासन को भी प्रेरित करता है, जिससे दिव्यांग बालक भी समाज का एक जिम्मेंदार सदस्य बन सकता है।

6. अब्राहम मास्लो ने अपनी विचारधारा में विद्यार्थियों के आत्म सम्मान की बात भी कही है। यह विचारधारा बालक के अपने अस्तित्व को दर्शाती है। यह विशेष बालक की अधिकार आधारित शिक्षा की ओर संकेत करती है।

7. इस सिद्धान्त के अनुसार विशेष बालक की शिक्षा बाल केंद्रित होनी चाहिए। बालक को अधिगम प्रक्रिया में उसकी क्षमता व मानसिक योग्यता के अनुसार अधिगम प्रक्रिया करवाई जानी चाहिए।

8. विशेष बालकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में मानवीय आधार पर समस्त प्रक्रिया को संगठित करना चाहिए, जिससे विशेष बालकों में शिक्षा के प्रति रुचि बनी रहे।

9. कुछ विशेष बालक निचले स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, विशेष शिक्षा के द्वारा बालकों को उच्च स्तर की आवश्यकता तक ले जा सकते हैं, यह एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिससे बालक का उतरोत्तर विकास संभव होता है।

इस प्रकार विशेष बालकों को शिक्षित करते समय प्रेरणा, सहयोग, पुनर्बलन इन सभी संप्रत्यय का भी योगदान होता है। विशेष बालकों को प्रशिक्षण देते समय, विभिन्न प्रकार के अनुकूलनों की भी आवश्यकता होती है जैसे–श्रवण बाधित बालकों के लिए कान की मशीन, दृष्टि बाधित बालकों के लिए ब्रेल लिपि, बौद्धिक अक्षम बालकों के लिए विशेष शिक्षण अधिगम सामग्री आदि इस प्रकार इन बालकों में अधिगम प्रक्रिया के लिए विशेष वातावरण व अनुकूलन की भी आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 16 मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स, जोहन हाल्ट तथा .. ..के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न 17. .... संबंधी आवश्यकताएं चतुर्थ स्तर पर आती है।

प्रश्न 18. मानवतावादी अधिगम के द्वारा विशेष बालकों के अंदर शिक्षा एवं अधिगम के प्रति .... भी विकसित होता है।

2.10 हेगार्टी का अनुकरण सिद्धान्त

विशेष बालक में अनुकरण/नकल करने की मूल प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रारम्भ में बालक बोलना, चलना, लिखना तथा सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी सभी बातें नकल करके सीखता है। अनुकरण द्वारा विशेष बालक नवीन ज्ञान प्राप्त करता है। अनुकरण बालक में विभिन्न सामाजिकता के गुण भी पैदा करता है। मेंक्डूगल के अनुसार, **''एक व्यक्ति द्वारा दूसरों की क्रियाओं अथवा शारीरिक गतिविधियों की नकल करने को अनुकरण कहते हैं।''**

2.10.1 अनुकरण सिद्धान्त द्वारा सीखने सम्बन्धी प्रयोग

हेगार्टी ने अनुकरण सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अनेक प्रयोग किये, अपने प्रयोग में उसने दो भूखे बन्दरों को अलग–अलग पिजड़ों में बन्द कर दिया। उनमें से एक बन्दर के सामने एक खोखली छड़ में केला फंसाकर रखा गया। बन्दर ने छड़ को पटक–पटक कर केले को निकालने का बहुत प्रयास किया किन्तु असफल रहा। अन्त में उसने पास में रखी, दूसरी छड़ की खोखली छड़ में फंसाया तथा केले को निकाल लिया और उसको खा लिया। इस सम्पूर्ण क्रिया को सामने के पिंजड़े में कैद बन्दर ध्यान पूर्वक देखता रहा।

अगले दिन यही प्रयोग दूसरे बन्दर पर दोहराया गया। इस बन्दर ने प्रयत्न एवं भूल का अनुकरण किए बिना एक बार में ही केले को निकालकर खा लिया। इससे स्पष्ट है कि उसने अनुकरण द्वारा केले को निकालना सीख लिया। वैसे भी बन्दरों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। विशेष बालकों में भी अनुकरण की प्रबल प्रवृत्ति पायी जाती है, अतः उन्हें नवीन ज्ञान प्रदान करने के लिए अनुकरण का सहारा लेना चाहिए।

2.10.2 विशेष शिक्षा में अनुकरण का महत्व

अनुकरण का शिक्षा में अत्यधिक महत्व है। विशेष बालक ज्यादातर व्यवहारों को अनुकरण द्वारा ही सीखते है। जेम्स के अनुसार, **''अनुकरण तथा अविष्कार समाज के दो पैर हैं, जिन पर चलकर मानव जाति ने अबाध प्रगति की है।''** अनुकरण का शिक्षा में निम्नलिखित महत्व है–

1. अनुकरण का विशेष बालक के शारीरिक विकास में अत्यधिक महत्व है। वह प्रारम्भ में उठना, बैठना, चलना, दौड़ना आदि सभी क्रियाएँ अनुकरण के द्वारा ही सीखता है।
2. अनुकरण द्वारा ही विशेष बालक लिखना, पढ़ना, याद करना आदि क्रियाओं को सीखता है, जिनसे उसका मानसिक विकास होता है।
3. विशेष बालक के भाषा विकास में भी अनुकरण का बहुत महत्व है। बालक माता–पिता व परिवारजनों को देखकर सही उच्चारण एवं भाषा का प्रयोग भी सीखता है।
4. विशेष बालक के नैतिक विकास में अनुकरण का अत्यधिक महत्व है। बालक अनुकरण द्वारा अनेक अच्छी आदतें सीखता है तथा अपने चरित्र का निर्माण करता है।
5. अन्य बालकों की भांति विशेष बालकों के सामाजिक विकास में अनुकरण का बहुत महत्व है। वह अनुकरण द्वारा सामाजिक आदान प्रदान सम्बन्धित गुणों को सीखता है।
6. विशेष बालक में स्वस्थ आदतों के विकास में अनुकरण का बहुत महत्व है। बालक में खान–पान एवं दैनिक व्यवहार सम्बन्धी आदतों का विकास अनुकरण द्वारा ही होता है।

अतः हम कह सकते है कि प्रत्येक विशेष बालक को सदैव अनुकरण के ज्यादा से ज्यादा अवसर प्रदान किये जाने चाहिए, जिससे वह अपना समुचित विकास कर सके, इसके साथ ही साथ बालक को प्रोत्साहन एवं उचित वातावरण भी प्रदान किया जाना चाहिए। **नन** के अनुसार **''अनुकरण व्यक्तित्व निर्माण की प्रथम सीढ़ी है। अनुकरण जितना व्यापक होगा, उतना ही अधिक व्यक्तित्व का विकास होगा।''**

2.11 हल का सबलीकरण सिद्धान्त

हल का सिद्धान्त अप्रत्यक्ष रूप से थार्नडाइक के 'प्रभाव के नियम' पर आधारित है। हल ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या आवश्यकता पूर्ति के रूप में की है अतः उनका सिद्धान्त Need Reduction Theory भी कहलाता है। हल ने आवश्यकता की पूर्ति को अधिगम की क्रिया का आधार माना है। हल के सबलीकरण अथवा आवश्यकता पूर्ति सिद्धान्त का मुख्य तत्व किसी आवश्यकता विशेष की पूर्ति से है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए विशेष बालक किसी वस्तु विशेष की आवश्यकता का अनुभव करता है, जिसकी पूर्ति के लिए अनुक्रिया करता है। यह अनुभव–अनुक्रिया संबंध, आवश्यकता प्रतीत होने पर ही होता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार विशेष बालक की आवश्यकता का अनुभव ही अधिगम प्रक्रिया का आधार है। हल ने चूहों पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला था कि उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य संबंध अंतर्नोद पर निर्भर करता है। विशेष बालक की आवश्यकता के कारण, उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। उसे अंतर्नोद कहते हैं। ऐसी स्थिति की अनुभूति होने पर विशेष बालक में अनेक उत्तेजनाएँ भी उत्पन्न होती हैं, जो कि उसे किसी लक्ष्य तक लेकर जाती हैं, और उससे तनाव कम हो जाता है, तब सबलीकरण होता है।

जब विशेष बालक अंतर्नोद का अनुभव करता है, अंतर्नोद उसे क्रिया की ओर प्रेरित करता है। आवश्यकता पूर्ति के लिए विशेष बालक काफी प्रयास करता है। आवश्यकता उसकी क्रियाशीलता को सबल बना देती है। जैसे– भूख लगने पर विशेष बालक भोजन प्राप्ति के लिए अनुक्रिया करता है। यहां पर भोजन सबलीकरण का काम करता है। हल का यह सिद्धान्त थार्नडाइक और पॉवलोव के सिद्धान्तों से मिलता–जुलता है, यह सिद्धान्त प्रेरकों पर अधिक बल देता है। किसी कार्य की प्रेरणा मिलते ही क्रिया प्रारंभ हो जाती है, और प्रेरणा की उपस्थिति से क्रियाएं प्रयोजन–पूर्ण तथा क्रमबद्ध भी होती जाती हैं। जब विशेष बालक को प्रेरणा के रूप में किसी कार्य के लिए पुरस्कार/पुनर्बलन प्राप्त होता है तो वह बार–बार उस कार्य की पुनरावृत्ति करता है।

इस प्रकार पुनर्बलन प्रेरणा से उसकी विशेष अनुक्रिया सबल हो जाती है। यदि इस अनुक्रिया के लिए उसे प्रेरणा नहीं मिलती तो विशेष बालक की अनुक्रिया को दोहराने की प्रवृत्ति कमजोर हो जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगम की प्रक्रिया एक चयनात्मक प्रक्रिया है। विशेष बालक बहुत सारी अनुक्रियाओं में से जो अनुक्रिया पुरस्कार या संतोष प्रदान करने वाली होती है, उसी का चयन करता है, और लक्ष्य प्राप्ति के बाद सबलीकरण की दशा प्राप्त करता है, इसे सबलीकरण का सिद्धान्त कहते हैं।

2.11.1 हल के सिद्धान्त का शैक्षिक महत्व

हल के सबलीकरण सिद्धान्त का शैक्षिक महत्व निम्नलिखित है–

1. यह सिद्धान्त विशेष बालकों की आवश्यकताओं तथा उनकी संतुष्टि पर बल देता है, जिससे वह बालक अपनी शैक्षणिक आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रेरित हो सके।
2. यह सिद्धान्त विशेष बालक के जीवन के लक्ष्य की ओर भी इंगित करता है। लक्ष्य स्पष्ट होने पर बालक अधिक रुचि व ऊर्जा के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ता है।

3. यह सिद्धान्त पुरस्कार और पुनर्बलन के महत्व पर भी प्रकाश डालता है। विशेष बालकों के प्रशिक्षण में पुनर्बलन एवं प्रेरणा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

4. यह विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियां के प्रयोग पर भी चर्चा करता है। अतः विशेष बालक की क्षमता के अनुसार उपयुक्त विधि व सामग्री के द्वारा शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक रोचक व अनुकूल बनाया जा सकता है।

2.12 टॉलमेंन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त

एडवर्ड टॉलमेंन ने अपनी पुस्तकों–Purposive Behaviour in Animals and Man (1932), Drivesa Towards War (1942) & Collected Papers in Psychology (1951) में इस सिद्धान्त का वर्णन किया है। उनके अनुसार, व्यवहार वस्तुनिष्ठ रूप से निर्धारणीय उद्देश्य के अनुरूप नियमित होता है। इसलिए टॉलमेंन को प्रयोजनपूर्ण व्यवहारवादी (Purposive Behaviourist) मनोवैज्ञानिक कहा गया हैं। टॉलमेंन के चिन्ह अधिगम सिद्धान्त के अनुसार बालक की सभी क्रियाएं प्रयोजनपूर्ण होती है। अधिगम की क्रिया में बालक का व्यवहार उद्देश्य पूर्ण होना चाहिए। जैसे–माता की आवाज सुनकर भूखा शिशु रोना शुरु कर देता है। वह जानता है कि रोने से उसे भोजन शीघ्रता से प्राप्त होगा और माता ही उसके भोजन की व्यवस्था करती है। यहां पर रोना किसी पूर्व ज्ञान पर आधारित है यदि उद्दीपक में किसी प्रकार का अर्थ जुड़ा नहीं होता तो किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती। टॉलमेंन के अनुसार उद्दीपक में अर्थ उसी समय जुड़ता है, जब वह किसी आवश्यकता और उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते हैं।

टॉलमेंन का सिद्धान्त अधिगम प्रतीकों के बोध पर भी बल देता है। इसलिए इसको प्रतीक अधिगम (Sign Lerning) भी कहते हैं। यह प्रतीक बालक की विशेष आवश्यकता और उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता करते हैं। टॉलमेंन के अनुसार जो लोग अधिगम प्राप्त करते हैं उन लोगों का व्यवहार, यह प्रदर्शित करता है कि व्यवहार में बुद्धि कार्य करती है। टॉलमेंन के अनुसार अधिगम के तीन स्तर होते हैं संबंध प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम, प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम तथा सूझ के द्वारा अधिगम प्रक्रिया का होना।

2.12.1 चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का विशेष शिक्षा में उपयोग

टॉलमेंन के अधिगम सिद्धान्त का शिक्षा में निम्नलिखित उपयोग है–

1. यह सिद्धान्त विशेष बालकों के प्रारंभिक अधिगम प्रक्रिया में अत्यंत उपयोगी है।
2. बालकों के प्रशिक्षण में, विशेष शिक्षक द्वारा लक्ष्य को भली–भांति स्पष्ट कर देने से बालक अधिगम प्रक्रिया में अधिक रुचि लेते हैं।
3. प्रभावशाली अधिगम के लिए क्रियाओं तथा विशेष विधियों पर अधिक बल देना चाहिए।
4. शिक्षक की शिक्षण प्रक्रिया क्रमबद्ध एवं उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिए।
5. शिक्षक को कक्षा में ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिससे विशेष बालक में स्वयं उद्देश्य प्राप्त करने की भावना जागृत हो सकें।
6. विशेष बालकों को अधिगम से जोड़ने के लिए प्रयास एवं त्रुटि, सूझ विधि आदि सिद्धान्तों के द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक रूचि पूर्ण एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।

7. यह सिद्धान्त विशेष बालकों के प्रशिक्षण के लिए विशेष प्रकार के शैक्षणिक वातावरण का निर्माण करने की ओर संकेत करता है।

2.13 कुर्ट कोफ्का का सिद्धान्त

कोफ्का ने अधिगम संबंधी अपने विचारों को अलग प्रकार से प्रस्तुत किया है। उनके विचार से बालक के पुराने अनुभव अपना स्थायी प्रभाव छोड़ते है। जिनकी स्मृति बनी रहती है, जिसके कारण बालक के भविष्य का व्यवहार पुराने अनुभवों के निकट ही रहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अध्यापकों को विशेष बालकों के सामने उचित वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे उनमें व्यवहार के लिए अंतःदृष्टि उत्पन्न हो सके।

2.14 अधिगम की विधियाँ

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अधिगम की कुछ विशेष विधियाँ बताई हैं, जिनके द्वारा विशेष बालक किसी विषय या कार्य को सरलता से सीख सकता है। ये विधियाँ विशेष बालक की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। अधिगम की प्रमुख विधियाँ निम्नवत हैं–

1. खण्ड या पूर्ण विधि – विशेष बालकों की अधिगम प्रक्रिया में पाठ को छोटे–छोटे कई भाग (खण्ड) में बाटकर सिखाना अधिक प्रभावी होता है एवं पूर्ण विधि में पूरी प्रक्रिया को एक साथ सिखाया जाता है। ये दोनों विधियाँ पाठ्यवस्तु के अनुसार निर्धारित की जा सकती हैं।

2. अविराम या विराम विधि – विशेष बालकों को लगातार प्रशिक्षण देना तथा बालकों को उनकी क्षमता के अनुसार बीच–बीच में विश्राम देना। ये दोनों विधियाँ विशेष बालक की मानसिक क्षमता तथा सीखने की गति व स्वास्थ्य पर निर्भर करती हैं।

3. आकस्मिक या संकल्पित विधि – विशेष बालक बहुत सारी क्रियाएँ बिना उद्देश्य या प्रयास के सीख लेता है, इसे आकस्मिक अधिगम कहते हैं। इसके विपरीत रुचि या लक्ष्य के अनुसार अधिगम प्रक्रिया संकल्पित विधि कहलाती है। जैसे– परीक्षा में अधिक नंबर लाने के लिए विषय का अभ्यास करना आदि।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 19. बालक की आवश्यकता के कारण, उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, उसे .... कहते हैं।

प्रश्न 20. सबलीकरण का सिद्धान्त ....पर अधिक बल देता है।

प्रश्न 21. बालक प्रायः ज्यादातर व्यवहारों को .... द्वारा ही सीखते हैं।

प्रश्न 22. टॉलमेंन को ....मनोवैज्ञानिक कहा गया है।

2.15 निष्कर्ष

अधिगम के सिद्धान्त विशेष बालकों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अत्यंत उपयोगी है। बालकों के प्रशिक्षण में, विशेष शिक्षक द्वारा क्रियाओं तथा विशेष विधियों पर अधिक बल देने से बालक अधिगम प्रक्रिया में अधिक रुचि लेते हैं। कक्षा में ऐसे वातावरण का निर्माण हो जाता है। जो शिक्षण प्रक्रिया को क्रमबद्ध एवं उद्देश्यपूर्ण भी बनाता है, जिससे विशेष बालक में स्वयं उद्देश्य प्राप्त करने की भावना जागृत होती है। इसके द्वारा विशेष बालकों को अधिगम से जोड़कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक रूचि पूर्ण एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। प्रत्येक बालक अपनी मानसिक क्षमता के अनुसार सीखता है। कुछ मनोवैज्ञानिक, बालक में होने वाले आन्तरिक या मानसिक परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर अलग–अलग सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। अधिगम प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त एवं विचार प्रस्तुत किए गए हैं, जो मानव के अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं यह सभी सिद्धान्त अपने आप में विशेष महत्व रखते हैं, जैसा कि आपने ऊपर देखा है कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पुनर्बलन को सीखने का आधार बनाया है, तथा कुछ ने प्रयास एवं त्रुटि को प्राथमिकता दी है। इस प्रकार अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने अलग–अलग विचार प्रस्तुत किए हैं, जो मानव अधिगम की प्रक्रिया पर आधारित है, तथा शिक्षा जगत के लिए अत्यंत उपयोगी है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इन सभी सिद्धान्तों का महत्व है।

2.16 इकाई सारांश

- जब कोई प्राणी अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक (सहज) क्रिया करना सीख जाता है, तब इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया को सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम कहते है।

- अनुबन्धन वह प्रक्रिया हैं। जिसमें एक उत्तेजना किसी वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है। सामान्य दशाओं में यह प्रतिक्रिया, एक सामान्य प्रतिक्रिया की तरह दृष्टिगोचर होती है।

- सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखने में प्रेरणा (Motivation) का प्रमुख स्थान है, क्योंकि बालक अपनी आवश्यकता से प्रेरित होकर ही सीखता है।

- विशेष बालकों के लिए नवीन परिस्थिति में अधिगम के लिए, विशेष वातावरण का होना आवश्यक है, अर्थात् शिक्षक अधिगम के लिए विभिन्न स्थितियों का निर्माण भी कर सकता है।

- किसी भी कार्य को करते समय विभिन्न प्रकार की बाधायें आती है। बालक को इन बाधाओं का निवारण सीखना ही अधिगम होता है।

- किसी क्रिया को सिखाने में पुनर्बलन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके द्वारा शिक्षक बालक के वांछित व्यवहार को बढ़ा सकता है। इसके विपरीत यदि बालक को कार्य करने के पश्चात् दण्ड की प्राप्ति होती है, तो वह उस कार्य की पुनरावृत्ति नहीं करता इस नियम को प्रभाव का नियम कहते है।

- सीखने पर बुद्धि का विशेष प्रभाव पड़ता है। विशेष बालकों के सीखने की प्रक्रिया में बहुइंद्रिय उपागम का प्रयोग भी उनके अधिगम को प्रभावित करता है।

- अंतर्नोंद ही बालक को सीखने की प्रेरणा देता है और उसे कार्य करने के लिए क्रियाशील भी बनाता है।

- ऐसे सभी व्यवहार तथा अनुक्रिया जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होते हैं, उसे अनुक्रिया व्यवहार (Resapondent Behaviour) तथा उन व्यवहार अथवा अनुक्रियाओं को जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण नहीं होते, उन्हें सक्रिय व्यवहार कहते हैं।

- विशेष बालक को वांछित व्यवहार सिखाने के लिए पुनर्बलन दिया जाता है, ताकि बालक वांछित व्यवहार को स्थाई रूप से सीख सके।

- अनुक्रिया की उपयुक्तता एवं कार्य की सफलता, अभिप्रेरणा का सबसे अच्छा स्त्रोत है।

- सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त के अनुसार अधिगम में सीखने की सामग्री को इस तरह आयोजित किया जाए जिससे विशेष बालक क्रिया के प्रति प्रेरित रहे। इसमें बालक को उसकी क्षमता व गति से सीखने का अवसर भी मिलना चाहिए।

- लेविन के अनुसार बालक के व्यवहार को समझने के लिए बालक की स्थिति को उद्देश्यों से संबन्धित मानचित्र में निर्धारित करने एवं प्रयत्नों की जानकारी देना आवश्यक है।

- अब्राहम मास्लो द्वारा दिया गया अधिगम सिद्धान्त एक मानवतावादी सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त में बालक के अधिगम को एक संपूर्ण मानवी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसके द्वारा अधिगमकर्ता (विशेष बालक) को अपने सभी दैनिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है, अर्थात् विशेष बालक की सभी मूलभूत आवश्यकताओं को क्रमिक रूप से इस सिद्धान्त में प्रस्तुत किया गया है।

- अनुकरण द्वारा विशेष बालक नवीन ज्ञान प्राप्त करता है। अनुकरण बालक में विभिन्न सामाजिकता के गुण भी पैदा करता है।

- वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए विशेष बालक किसी वस्तु विशेष की आवश्यकता का अनुभव करता है उसकी पूर्ति के लिए अनुक्रिया करता है, यह अनुभव–अनुक्रिया संबंध, आवश्यकता प्रतीत होने पर ही होता हैं।

- टॉलमेंन के चिन्ह अधिगम सिद्धान्त के अनुसार बालक की सभी क्रियाएं प्रयोजनपूर्ण होती है।

- टॉलमेंन के अनुसार अधिगम के तीन स्तर होते हैं। संबंध प्रत्यावर्तन द्वारा अधिगम, प्रयास एवं त्रुटि द्वारा अधिगम तथा सूझ के द्वारा अधिगम प्रक्रिया का होना।

- बालक बहुत सारी क्रियाएँ बिना उद्देश्य या प्रयास के सीख लेता है। इसे आकस्मिक अधिगम कहते हैं। इसके विपरीत रुचि या लक्ष्य के अनुसार अधिगम प्रक्रिया संकल्पित विधि कहलाती है।

2.17 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पॉवलोव के सिद्धान्त का दूसरा नाम सहज सम्बन्ध सिद्धान्त है।
2. अनुक्रिया अनुबंधन (During Conditioning)– कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) + प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) – स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना)
3. सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखने में प्रेरणा (Motivation) का प्रमुख स्थान है।
4. थार्नडाइक ने अपनी पुस्तक 'एनिमल इंटेलिजेंस' (Animal Intelligence) में संबंधवाद (Connectionism) का प्रतिवादन किया।
5. किसी कार्य को करने से विशेष बालक को यदि पुरस्कार (Reinforcement) की प्राप्ति होती है, तब बालक उस कार्य को बार बार करने का प्रयास करता है।
6. जो क्रियाएँ नवीन एवं रोचक होती हैं उन्हें बालक अभ्यास के द्वारा सीख सकते है।
7. ऐसे सभी व्यवहार तथा अनुक्रिया जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होती हैं, उसे अनुक्रिया व्यवहार (Resapondent Behaviour) कहते हैं।
8. सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का उपयोग विशेष बालकों के व्यवहार परिमार्जन में बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है।
9. सतत पुनर्बलन आयोजन में विशेष बालक की प्रत्येक सही अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलित (पुरस्कृत) किया जाता है।
10. समस्या समाधान के लिए बालक अपनी अन्तःदृष्टि या सूझ का प्रयोग करता है तो इस प्रतिक्रिया को अन्तःदृष्टि द्वारा अधिगम कहते हैं।
11. अन्तः दृष्टि सिद्धान्त विशेष बालकों में कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति तथा समस्या समाधान में उपयोगी है।
12. कोहलर का सिद्धान्त गैस्टाल्ट मत पर आधारित है।
13. अधिगम की प्रक्रिया विशेष बालक एवं उसके वातावरण दोनों का प्रतिफल होती है।
14. कर्ट लेविन का जन्म जर्मनी में 1890 ई० में हुआ था।
15. किसी बालक को लक्ष्य के पास या दूर ले जाने वाली शक्ति को वैक्टर कहा गया है।
16. मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स, जोहन हाल्ट तथा मेंकोम नाउल्स के नाम अधिक उल्लेखनीय है।
17. मानवतावादी अधिगम के द्वारा विशेष बालकों के अंदर शिक्षा एवं अधिगम के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी विकसित होता है।
18. बालक की आवश्यकता के कारण, उसमें तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, उसे अंतर्नोद कहते हैं।
19. सबलीकरण का सिद्धान्त प्रेरकों पर अधिक बल देता है।
20. बालक प्रायः ज्यादातर व्यवहारों को अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं।
21. टॉलमेंन को प्रयोजन पूर्ण व्यवहारवादी (Purposive Behaviourist) मनोवैज्ञानिक कहा गया है।

2.18 अपनी प्रगति जाँचे

1. ....सिद्धान्त Need Reduction Theory भी कहलाता है।
2. आकस्मिक या संकल्पित विधि से आप क्या समझते हैं?
3. हल के सबलीकरण सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ का वर्णन करें।
4. ....ने पांच प्रकार की मूलभूत आवश्यकताओं को निचले से लेकर उच्चतम विभिन्न स्तरों पर क्रमिक रूप से व्यवस्थित किया है।
5. अधिगम प्रयत्न एवं भूल के द्वारा नहीं, बल्कि .... के आधार पर किया जाता है।
6. प्रत्येक बालक अपनी .... के अनुसार सीखता है।

2.19 अधिन्यास / क्रियाकलाप

1. अधिगम / सीखने के नियम क्या हैं? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?
2. सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?
3. लेविन के अनुसार जीवन क्षेत्र (aceLife Sp)क्या है ?
4. ''सबलीकरण का सिद्धान्त प्रेरकों पर अधिक बल देता है'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
5. अंतर्नोद किसे कहते हैं?
6. आत्मसम्मान संबंधी आवश्यकताएं किस स्तर पर आती हैं?

2.20 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

2.20.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....
....
....

2.20.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियों के साथ शिक्षण अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों व विशेष शिक्षा में इनके महत्व पर चर्चा करेंगे।

2.21 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Alkinson, R.G., and Shiffrin, R.H., (1968), Human Memory: A proposed system and its control procesas in K.W. Spence and J.T. Spence (Eds), The Psychology of Lerning and Motivation - Advancesa in Resaerch and Theory, Vol. 2, New York: Accademic Presas.
- Biggie, M.L. and Hung, M.P., (1968), Psychological Foundation of Education, New York: Harper & Row.
- Craik, F.I.M. and Lokhart, R.S., (1972), Levels of Procesasing: A Frame Work for Memory, Resaerch Journal of Verbal Lerning and Verbal Behaviour, Vol. II. Pp. 671-684.
- Crow, L.D. and Crow, Alice, (1938), Educational Psychology, New York: Harcourt Bracerworld.
- Hergenhahn, B.R., (1975), An Introduction to Theoriesa of Lerning, Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice Hall.
- Hilgard, E.R. and Bower, G.H. (1981) Theoriesa of Lerning, 5th edn, Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall. 16
- Joyce, Bruce and Weil Marsha, (1972), Models of Teching, New Jersey: Engle Woodcliffs: Prentice Hall.
- Levin, M.J., (1978), Psychology-A Biographical Approach, New York: McGraw-Hill.
- Mangal S.K., (2002), Advanced Educational Psychology, New Delhi: Prentice Hall, (2nd ed.).
- Mangal, S.K.(2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Lerning Private Limited.
- Maslow, A., (1954), Motivation and Personality, New York: Harper Row.
- Miller, G.A., (1956), The Magic Number Seven plus or minus two, some limits on our capacity for procesasing information, Psychological Review, 63, 81-97.
- Miller, G.A., Gialanter E., and Pribram, K.H., (1960), Plans and Structure of Behaviour, New York: Holt Rinchart and Winston.
- Pavlov, J.P., (1927), Conditional Reflexesa, Oxford Clarendon Presas.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Reynolds, G.S., (1975), A Primer of Operant Conditioning, Glenview Illionis: Scott, Forman, (2nd ed).
- Rogers, C.R., (1969), Freedom to Lern, Columbus, OH: Merril.
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.

- Skinner, B.F., (1938), The Behaviour of Organism, New York: Appleton-century-Crofts.
- Thorndike, E.L. (1913) Educational Psychology, 1, New York, Techers College.
- Thorndike, E.L. (1931) Human Lerning, London, Century. 94 Thorndike, E.L. (1932) 'Reward and punishment in animal lerning', Comparative Psychology Monographs, 8(39), 1—23. 64
- Watson, J.B., (1919), Psychology from the Stand point of a Behaviourist, Philadelphia: Lippincott.
- Woodward, R.S., and Marquis, (1948), Psychology, New York: Henry Holt &Co..
- Wolf, M.M., Risley, T. and Meesa, H. (1964) 'Application of operant conditioning proceduresa to the behaviour problems of an autistic child', Behaviour Resaerch and Therapy, 1 ,305—12. 141

इकाई–3

बुद्धि एवं सृजनात्मकता के स्वरूप एवं सिद्धान्त

संरचना–

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 बुद्धि का अर्थ व परिभाषाएँ

3.4 बुद्धि के सिद्धान्त

3.4.1 बुद्धि का एक–कारक सिद्धान्त

3.4.2 बुद्धि का द्वि–कारक सिद्धान्त

3.4.3 बुद्धि का बहुकारक सिद्धान्त

3.4.4 बुद्धि का समूह–कारक सिद्धान्त

3.4.5 बुद्धि का पदानुक्रमिक सिद्धान्त

3.4.6 बुद्धि का संरचना सिद्धान्त

3.4.7 बुद्धि का वर्ग घटक सिद्धान्त

3.5 सृजनात्मकता का अर्थ

3.5.1 सृजनात्मक बालक के गुण

3.5.2 सृजनात्मकता की अवस्थाएँ

3.5.3 सृजनात्मकता का प्रशिक्षण

3.6 बुद्धि एवं सृजनात्मकता में संबंध

3.7 निष्कर्ष

3.8 सारांश

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 अपनी प्रगति जाँचे

3.11 अधिन्यास / क्रियाकलाप

3.12 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 परिचय

मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है। बुद्धि होने के कारण यह अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। परंतु सभी की बुद्धि एक समान नहीं होती। सभी बालक एक ही समस्या के लिए अलग–अलग प्रकार के समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। सामान्यतः बुद्धि बालक के सीखने की योग्यता होती है। किसी भी बालक को दैनिक जीवन की सामान्य स्थितियों में, समस्याओं का समाधान करने में बुद्धि का प्रयोग करना होता है। बुद्धि का अर्थ है, दैनिक जीवन में अपनी प्रतिभा का प्रयोग करना। बुद्धि एक मानसिक प्रतिभा है जो बालक में जन्मजात होती है। जिसके कारण बालक सीखता व चिंतन भी करता है। प्रत्येक बालक को सामान्य कार्यों को करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। अपनी बुद्धि के द्वारा मनुष्य विभिन्न कार्यों को समझता व करता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषाएँ समझ सकेंगे
- बुद्धि के सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे
- सृजनात्मकता के संप्रत्यय को समझ सकेंगे
- बुद्धि एवं सृजनात्मकता के संबंध को समझ सकेंगे

3.3 बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषाएँ

बुद्धि से तात्पर्य विशेष बालक के सोचने समझने व समस्या समाधान क्षमता से है, बालक की सामान्य योग्यता से है, जो उसके दैनिक, सामाजिक एवं शैक्षणीय कार्यों के लिए आवश्यक होती है। बुद्धि के ही द्वारा विशेष बालक चिन्तन करता है, परन्तु प्रत्येक विशेष बालक की बौद्धिक क्षमता में अन्तर होता है। कुछ विशेष बालकों की मानसिक योग्यता सामान्य बालकों के समान नहीं होती है। जैसे–बौद्धिक अक्षम बालकों में किसी भी सामान्य कार्य को देरी से समझना, समस्या समाधान में कठिनाई, निर्णय न ले पाना आदि प्रमुख है। इसीलिए ये बालक धीमी गति से सीखते हैं। विशेष बालकों में अन्य बालकों की भांति बुद्धि का जीवन के प्रत्येक स्तर पर अत्यधिक महत्व होता है।

दूसरें शब्दों में बुद्धि सीखने की क्षमता या पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है। विशेष बालक किसी भी कार्य को विशेष अनुकूलनों के साथ सीख सकते हैं। जैसे–पठन–पाठन क्रिया में, बौद्धिक अक्षम बालकों को फलों के नाम सिखाने में फ्लैश कार्ड एवं वास्तविक फलों व अन्य अनुकूलनों का प्रयोग किया जाता है। यदि कुछ विशेष विद्यार्थी बार–बार प्रक्रिया देखने एवं निर्देश प्राप्त करने पर भी संप्रत्यय सीख नहीं पाते तो उन्हें विशेष अनुदेशों व विशेष सामग्री के साथ सिखाया जाना आवश्यक होता है। बुद्धि, विशेष बालक की सीखने व समायोजन योग्यता या क्षमता से सम्बन्धित होती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने मतानुसार बुद्धि को परिभाषित किया है, उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत हैं–

सर्वप्रथम फ्रीमेंन ने बुद्धि की व्याख्या करने के लिए बुद्धि संबंधी विचारों का विश्लेषण कर उन्हें निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है–

- बुद्धि समायोजन की योग्यता है।

  (Intelligence is the ability to adjust)

- बुद्धि सीखने की योग्यता है।

  (Intelligence is the ability to lern)

- बुद्धि अमूर्त चिंतन की योग्यता है।

  (Intelligence is the ability to think abstractly)

बुद्धि की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

बर्ट के अनुसार, **''बुद्धि अपेक्षाकृत नवीन परिस्थितियों में समायोजन की जन्मजात योग्यता हैं।''**

स्टर्न के अनुसार, **''बुद्धि नवीन परिस्थितियों के अनुरूप अपने चिन्तन को समायोजित करने की सामान्य योग्यता है।''**

क्रुज के अनुसार, **''बुद्धि नवीन एवं भिन्न परिस्थितियों में समुचित रूप से समायोजन करने की योग्यता है।''**

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि–नवीन ज्ञान को शीघ्रता से प्राप्त करने की योग्यता है। इसमें निम्नलिखित परिभाषाएं सम्मिलित की गई है–

बकिंघम के अनुसार, **''बुद्धि सीखने की योग्यता है।''**

मेंकडूगल के अनुसार, **''बुद्धि जन्मजात प्रवृत्ति को अतीत के अनुभव के प्रकाश में सुधारने की योग्यता है।''**

डियरबोर्न के अनुसार, **''बुद्धि सीखने की योग्यता या अनुभवों से लाभ प्राप्त करने की योग्यता है।''**

अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि, अमूर्त चिंतन की योग्यता है। ये परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

बिने के अनुसार, **''बुद्धि उचित ढंग से तर्क करने तथा उचित निर्णय करने एवं आत्म–विश्लेषण की क्षमता है।''**

टरमेंन के अनुसार, **''व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है जितनी उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।''**

इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की व्यापक परिभाषाएं भी दी हैं–

वेक्सलर के अनुसार, **''बुद्धि किसी व्यक्ति की संपूर्ण शक्तियों का योग या सार्वभौमिक योग्यता है जिसके द्वारा वह उद्देश्यपूर्ण कार्य करता है, तर्कपूर्ण ढंग से सोचता है तथा प्रभावपूर्ण ढंग से वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करता है।''**

स्टोडार्ड के अनुसार, **''बुद्धि कठिनाई, अमूर्तता, जटिलता, मितव्ययता, लक्ष्यअनुकूलता एवं सामाजिक मूल्य में नवीनता की उत्पत्ति से युक्त क्रियाओं को करने तथा इन क्रियाओं की शक्ति को केन्द्रित करने तथा संवेगात्मक दबावों का प्रतिरोध करने की आवश्यकता वाली परिस्थितियों में बनाए रखने की योग्यता है।''**

कोलैसनिक के अनुसार, **''बुद्धि कोई एक शक्ति, क्षमता या योग्यता नहीं है जो सभी परिस्थितियों में समान रूप से कार्य करती है, वरन् अनेक योग्यताओं का योग है।''**

रेक्स एवं नाइट के अनुसार, **''बुद्धि वह तत्व है जो सभी मानसिक योग्यताओं में सामान्य रूप से सम्मिलित रहता है।''**

संक्षेप में, उपर्युक्त से स्पष्ट है– बुद्धि विशेष बालक की जन्मजात शक्ति है और उसकी सभी मानसिक योग्यताओं का योग एवं अभिन्न अंग है, जो विशेष बालक को सामान्य तथा विशिष्ट सभी कार्यों के लिए जरुरी है।

3.4 बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि विशेष बालक की एक मनोवैज्ञानिक योग्यता है। बुद्धि की प्रकृति, संरचना के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन्हें बुद्धि का सिद्धान्त कहते हैं। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

- बुद्धि का एक–कारक सिद्धान्त
- बुद्धि का द्वि–कारक सिद्धान्त
- बुद्धि का बहु–कारक सिद्धान्त
- बुद्धि का समूह–कारक सिद्धान्त
- बुद्धि का पदानुक्रमिक सिद्धान्त
- बुद्धि का संरचना सिद्धान्त
- बुद्धि का वर्ग घटक सिद्धान्त

3.4.1 बुद्धि का एक–कारक सिद्धान्त

इसे एक खंडीय सिद्धान्त भी कहा गया है। इस सिद्धान्त के समर्थक Binet, Terman और Stern है। इनके अनुसार बुद्धि एक इकाई है जो संपूर्ण विधि में सक्रिय होकर एक ही प्रकार का कार्य करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि सर्वशक्तिशाली मानसिक शक्ति है, जिसका सभी की योग्यता पर नियंत्रण रहता है। बुद्धि के एक कारक सिद्धान्त के अनुसार, विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को केवल एक क्षमता के रूप में ही स्वीकार किया है, किसी भी व्यक्ति में बुद्धिमत्ता होने के कारण वह सभी क्रियाओं में दक्ष हो सकता है। यदि व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता उच्च स्तर की है तो वह, सभी क्रियाओं को सीख सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी विशेष बालक में गणितीय कौशल है तो वह बालक अन्य विषयों में भी उच्च उपलब्धियों को प्राप्त करेगा। कोई बालक संगीत या कला में पूर्णतया निपुण है तो वह अन्य प्रकार की कौशलों में भी पूर्ण तरह निपुण होगा।

एकल बुद्धि सिद्धान्त के अनुसार, किसी भी उच्च बुद्धि लब्धि वाले बालक ज्यादातर सभी विषयों में दक्ष होते हैं। इस प्रकार के बालक विभिन्न कार्यों में विशिष्ट ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं परंतु, आजकल के परिवेश में कोई भी एक व्यक्ति सभी कार्यों में दक्ष नहीं हो सकता, अर्थात् व्यक्ति एक से अधिक कार्यों में दक्ष हो सकता है परंतु, वह सभी कार्यों में दक्ष हो ऐसा आवश्यक नहीं है। इस प्रकार यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। बुद्धि केवल एक तत्व नहीं है जो सभी प्रकार के गुणों के लिए जिम्मेंदार हो, विभिन्न कौशलों एवं क्रियाओं

को सीखने के लिए मनुष्य को लगातार प्रयास करने होते हैं। केवल बुद्धिमान होने से ही कोई व्यक्ति सभी क्रियाओं में दक्ष नहीं हो सकता, अतः यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है।

3.4.2 बुद्धि का द्वि–कारक सिद्धान्त

इसके अलावा बुद्धि का द्वि–कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक स्पीयरमेंन ने 1904 में किया था। उन्होंने बुद्धि की संरचना को दो प्रमुख कारकों में विभाजित कर दिया– पहला सामान्य कारक तथा दूसरा विशिष्ट कारक। इनके अनुसार किसी भी बालक को अपने दैनिक तथा सामान्य कार्य करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। किसी विशिष्ट प्रकार के कार्यों को करने के लिए विशिष्ट बुद्धि की आवश्यकता होती है। स्पीयरमैन ने सामान्य कार्यों को करने के लिए सामान्य बुद्धि तथा विशिष्ट प्रकार के कार्यों के लिए विशिष्ट प्रकार की बुद्धि का उल्लेख किया है। उनके अनुसार व्यक्ति हमेंशा अपनी विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग नहीं करता। वह जिस प्रकार के कार्य होते हैं, उसी प्रकार अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है।

यदि बालक सामान्य दैनिक कार्य करता है तो उसमें वह अपनी सामान्य बुद्धि का इस्तेमाल करता है इसके विपरीत यदि वह किसी विशिष्ट कार्य को संपादित करता है तो वह उसमें अपनी विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग करता है। बुद्धि से संबंधित विभिन्न सिद्धान्तों में स्पीयरमेंन का बुद्धि सिद्धान्त अत्यंत महत्वपूर्ण है, यद्यपि इस सिद्धान्त की बहुत आलोचनाएं भी हुई हैं, परंतु इस सिद्धान्त को अन्य सिद्धान्तों की नीव के तौर पर माना जाता है। बाद में इसी के अनुसार अन्य सिद्धान्तों की रचना भी हुई है।

यह सिद्धान्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण खोज है, जिसने मानव बुद्धि को दो भागों में विभाजित किया है, जो मानव अधिगम प्रक्रिया को समझने के लिए सहायक हैं। स्पीयरमेंन ने बुद्धि दो प्रकार से विभाजित किया है–

1. **सामान्य योग्यता**– यह योग्यता विशेष बालक को सभी प्रकार के दैनिक कार्यों में सहायता करती है। सामान्य कार्य करने के लिए सामान्य बुद्धि तत्व की आवश्यकता होती है। बुद्धि की सामान्य योग्यता की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

   (i) यह तत्व, विशेष बालक में भी जन्म से ही होता है।

   (ii) यह तत्व सभी, सामान्य तथा विशेष बालकों में पाया जाता है।

   (iii) यह तत्व सदैव एक समान ही होता है।

   (iv) प्रत्येक बालक की सामान्य योग्यता में अंतर होता है।

   (v) जिस बालक में यह तत्व होता है वह अन्य की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त करता है।

   (vi) दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस तत्व की आवश्यकता होती है।

2. **विशिष्ट योग्यता**– यह योग्यता विशिष्ट कार्यों को करने में सहायता प्रदान करती है। जैसे– कोई पेंटिंग या कला कौशल में निपुण होता है, अर्थात् विशेष कार्यों में दक्षता विशिष्ट बुद्धितत्व द्वारा प्राप्त होती है। बुद्धि के विशिष्ट तत्व की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

   (i) विशिष्ट तत्व जन्मजात न होकर बालक द्वारा अर्जित किया जाता है।

   (ii) क्रिया विशेष के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के विशिष्ट तत्व होते हैं।

(iii) विभिन्न प्रकार के बालकों में विशेष योग्यताएं (विशिष्ट तत्व) भी भिन्न–भिन्न होते हैं। जिस विशेष बालक का विशिष्ट तत्व उच्च होता है, वह उसी कला/विषय का विशेषज्ञ होता है।

(iv) विशिष्ट तत्व को अर्जित किया जा सकता है।

3.4.3 बुद्धि का बहुकारक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक अमेंरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक हैं। उनके मतानुसार, बुद्धि कई प्रकार की शक्तियों का एक समूह है। विभिन्न प्रकार की शक्तियों में किसी प्रकार की समानता आवश्यक नहीं है। बुद्धि के बहुकारक सिद्धान्त के अनुसार, बुद्धि कई तत्वों का समूह होती है और प्रत्येक तत्व में कोई सूक्ष्म योग्यता अवश्य होती है। मनुष्य बुद्धि के द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों को संपादित कर सकता है।

बुद्धि अलग–अलग छोटे कारकों का सम्मिश्रण होती है। ये कारक स्वतंत्र होते हैं, और इन कारकों के मिलने से ही बुद्धि की रचना होती है, जिस प्रकार से छोटी–छोटी ईंटों को जोड़ने से किसी मकान की रचना होती है परंतु वे सभी ईंटें अपने आप में स्वतंत्र एवं अलग होती हैं। जो जुड़कर के किसी मकान या किसी इमारत का निर्माण करती हैं। उसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि में भी छोटे–छोटे कारकों का समावेश होता है, जो अलग–अलग तथा बिल्कुल स्वतंत्र होते हैं, विभिन्न कारक आपस में जुड़ करके मनुष्य की बुद्धि का निर्माण करते हैं। मनुष्य में अनेक विशिष्ट प्रकार की मानसिक क्षमताएं होती हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल पृथक–पृथक होती हैं। वे जुड़कर मनुष्य की बुद्धि का निर्माण करती हैं। अर्थात् यह सभी मिलकर मनुष्य की बुद्धि का सृजन करती हैं।

थॉर्नडाइक बुद्धि को एक तत्व के रूप में नहीं मानते, उनके विचार से सभी मनुष्यों की बुद्धि, विशेष होती है। किसी बालक में एक विषय की योग्यता है तो उससे बालक की दूसरी योग्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के कार्यों के अनुसार बुद्धि को तीन भागों में विभाजित किया है– **प्रथम**– सामाजिक बुद्धि, जो समाजिकता के लिए आवश्यक है।

द्वितीय–मूर्त बुद्धि, जो बालक मूर्त सम्प्रत्यय को समझने में प्रयोग करता है।

तृतीय– अमूर्त बुद्धि, जिसका प्रयोग अमूर्त चिंतन के लिए किया जाता है।

3.4.4 बुद्धि का समूह–कारक सिद्धान्त

बुद्धि के समूह कारक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि को अनेक योग्यताओं के समूह के रूप में चित्रित किया गया है। अमेंरिकी मनोवैज्ञानिक थर्स्टन ने अपने प्रयोगों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला की बुद्धि विभिन्न प्रकार की योग्यताओं का एक समूह है, जिसमें मुख्यतः सात प्रकार की प्राथमिक योग्यताएं आती हैं–

1. सांख्यिक योग्यता
2. शाब्दिक योग्यता
3. अंतरिक्षिक योग्यता
4. शब्द–प्रवाह योग्यता
5. तार्किक योग्यता

6. स्मृति संबन्धी योग्यता

7. प्रत्यक्ष संबन्धी योग्यता

इन सभी प्रकार की योग्यताओं के समूह को हम बुद्धि कहते हैं। बुद्धि केवल एक तत्व नहीं है। यह एक या दो योग्यताओं से संबंधित नहीं है बल्कि बुद्धि विभिन्न प्रकार की योग्यताओं से संबंधित है, जो मानव अधिगम के लिए आवश्यक है। मानसिक योग्यताओं के समूह को समूहकारक बुद्धि कहा गया है। केली के अनुसार, ''बुद्धि नौ मानसिक योग्यताओं के समूह से बनी है।'' केली ने बुद्धि के निर्माण में निम्नलिखित योग्यताओं का उल्लेख किया है–

(i) वाचिक योग्यता

(ii) सांख्यिक योग्यता

(iii) स्थानिक संबंधों के साथ सफल व्यवहार करने की क्षमता

(iv) क्रियात्मक योग्यता

(v) शारीरिक क्षमता

(vi) यांत्रिक योग्यता

(vii) संगीतात्मक योग्यता

(viii) रुचि

(ix) आंतरिक संबंधों के साथ व्यवहार करने की क्षमता

3.4.5 बुद्धि का पदानुक्रमिक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक मनोवैज्ञानिक पी0 ई0 वर्नन और बर्ट हैं। इन्होंने बालक की मानसिक योग्यताओं को क्रमिक महत्व प्रदान किया है, जिसके अनुसार मानसिक योग्यता के प्रथम स्तर में सामान्य मानसिक योग्यता को रखा है। इस को दो भागों में विभाजित किया गया है–

(i) क्रियात्मक यांत्रिक आंतरिक्षिक शारीरिक)Practical Mechanical Spacial Physical(–P:M का संबंध प्रयोगात्मक, यांत्रिक, स्थान संबंधी तथा शारीरिक योग्यताओं से होता है।

(ii) शाब्दिक सांख्यिक शैक्षणिक (Verified Number Education of V:ed)–V:ed का संबंध मौखिक योग्यता, संख्या संबंधी योग्यता, तथा शैक्षिक योग्यता से होता है।

3.4.6 बुद्धि का संरचना सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के जन्मदाता डॉ0 जे0 पी0 गिलफोर्ड हैं। इस सिद्धान्त को बुद्धि की संरचना, बुद्धि का त्रिविमीय प्रारूप आदि नामों से भी जाना जाता हैं। गिलफोर्ड के अनुसार, बुद्धि के स्वरूप को 3 विमाओं के प्रारूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

(i) विषय सामग्री (Content)–यह मानसिक कार्यों में निहित रहती है। इसके चार प्रकार हैं–

1. आकृति संबंधी (Figural)

2. संकेत संबंधी (Symbolical)

3. शब्द संबंधी (Semantic)

4. व्यवहार संबंधी (Behavioural)

(ii) संक्रिया (Operation)– प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया में निहित क्रियाओं को पाँच भागों में बांटा गया है। जिन्हें संक्रिया कहते हैं। यह निम्नलिखित हैं–

1. संज्ञान (Cognition)

2. स्मृति (Memory)

3. अभिकेंद्रीय चिंतन (Convergent Thinking)

4. अपकेंद्री चिंतन (Divergent Thinking)

5. मूल्यांकन (Evaluation)

(iii) उत्पाद (Product)- यह बुद्धि की तृतीय विमा है। यह विषय सामग्री एवं संक्रिया के परिणामस्वरूप होती है। यह निम्नलिखित है–

1. इकाईयॉ (Units)

2. कक्षा (Classes)

3. संबंध (Relations)

4. प्रणाली (Systems)

5. प्रत्यावर्तन (Transformations)

6. उपादेयता (Implications)

गिलफोर्ड ने अपने त्रि–आयामी प्रतिमान (Three Dimension Model) के माध्यम से यह प्रदर्शित किया है कि किसी भी मानसिक या बौद्धिक कार्य को करने में प्रत्येक आयाम से संबन्धित एक या अधिक कारक की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए विशेष बालक के द्वारा विद्यालय का टाइम टेबल देखने में किस शिक्षक की कक्षा पहले होगी, इसे देखने के लिए टाइम टेबल में छपे शब्दों, संख्याओं को पढ़ने, अर्थ समझने तथा इसके बाद संक्रिया करने हेतु स्मृति, संज्ञा तथा चिंतन आदि की सहायता लेनी होगी जिसके परिणामस्वरूप बालक उत्पाद के रूप में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

3.4.7 बुद्धि का वर्ग घटक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी0 थॉमसन हैं, जिनके अनुसार विशिष्ट योग्यताओं का एक विशेष वर्ग होता है। जिसमे योग्यताओं में परस्पर समानता होती है। उदाहरणार्थ– संगीत योग्यता समूह के अंतर्गत नृत्य, गायन, वादन आदि में परस्पर संबंध रहेगा, किंतु इन योग्यताओं का अन्य वर्ग की योग्यताओं से कोई संबंध नहीं होगा।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के बावजूद भी अभी तक किसी सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं हुआ है। फिर भी हम कह सकते हैं कि बुद्धि के अंतर्गत सामान्य मानसिक योग्यता तथा अन्य मानसिक योग्यताओं का समावेश है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. .... अमूर्त चिंतन की योग्यता है।

प्रश्न 2. बुद्धि का एक–कारक सिद्धान्त के समर्थक Binet, ...और Sterr है।

प्रश्न 3. बुद्धि सीखने की योग्यता या ....से लाभ प्राप्त करने की योग्यता है।

3.5 सृजनात्मकता का अर्थ

हम सभी ईश्वर की संतान है। ईश्वर ने प्रकृति की सभी वस्तुओं का निर्माण किया है। भारतीय दर्शन के अनुसार सभी मनुष्य तथा सृष्टि उस परमात्मा के अंश हैं। ईश्वर में सृजनात्मक योग्यताएँ विद्यमान है, इसलिए संसार के सभी प्राणियों में सृजनात्मक योग्यताएँ होती हैं सृजनात्मकता विशेष बालक की मनोवैज्ञानिक योग्यता से संबन्धित होती है, किन्तु प्रत्येक बालक में अलग–अलग प्रकार की सृजनात्मक योग्यता पायी जाती है। जैसे–कोई विशेष बालक कला में, विज्ञान में, संगीत में, नृत्य आदि क्षेत्रों में निपुण हो सकता है। गांधीजी, अब्दुल कलाम आजाद, न्यूटन, श्रीनिवास रामानुजम, श्री आर्यभट्ट आदि सृजनात्मक व्यक्ति थे, जिन्होने अपने–अपने क्षेत्रों में विशिष्ट ख्याति प्राप्त की। यद्यपि इन लोगों में जन्मजात ईश्वर प्रदत्त सृजनात्मक प्रतिभा थी, परन्तु इनकी प्रतिभा के विकास में शिक्षा, संस्कार तथा वातावरण का भी पूर्ण प्रभाव था।

दूसरे शब्दों में, उचित शिक्षा तथा वातावरण विशेष बालक की सृजनात्मक क्षमता का विकास करने में सहायक होती है। विशेष बालक में सृजनात्मक क्षमता से तात्पर्य उन योग्यताओं से है, जिन्हे वह नवीन रूप से प्रस्तुत करता है। नए, मौलिक, असाधारण कार्य तथा विचार ही सृजनात्मकता को प्रदर्शित करते हैं। सृजनात्मकता बालक की विशेष योग्यता है, जिसके द्वारा बालक किसी नए विचार का निर्माण करता है या कोई नई खोज करता है, जिसके साथ वह अपने पूर्व अनुभवों का पुनर्गठन भी करता है। विभिन्न विद्वानों ने सृजनात्मकता की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए उसे अपनी–अपनी तरह से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की परिभाषाएं निम्नवत् हैं–

सृजनात्मकता का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रो0 रुश का कथन है कि सृजनात्मकता मौलिकता है जो वास्तव में किसी भी प्रकार की क्रिया में घटित हो सकती है।

क्रो और क्रो के अनुसार – **''सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।''**

Creativity is a mental procesas to expresas the original outcome.

-Crow and Crow

जेम्स ड्रेवर का कथन है– **''सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।''**

Creativity isessmentially found in new constructions or productions

Jam-esaDrev e r

कोल और ब्रूस के विचार में – **''सृजनात्मकता एक मौलिक उत्पादन के रूप में मानव–मन की ग्रहण करने, अभिव्यक्त करने और गुणांकन करने की योग्यता एवं क्रिया है।''**

Creativity is an ability and activity of man's mind to grasp, expresas and appriciate in the form of an original product

Cole and Bruce-

स्टीन के अनुसार – **''सृजनात्मकता एक नवीन कार्य है जो किसी समय बिन्दु पर एक समूह द्वारा तर्कसंगत या उपयोगी या संतोषजनक रूप से स्वीकृत हो।''**

"Cretivity is a novel work that is tenable or useful or satisfying by a group at some point in time."

- Stein

इन परिभाषाओं के अनुसार किसी नई वस्तु के लिए चिंतन या खोज इनका केंद्रीय तत्व है। अतः हम कह सकते हैं कि सृजनात्मकता, विशेष बालक की वह योग्यता है। जिसके द्वारा वह किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण या खोज कर सकता है।

3.5.1 सृजनात्मक बालक के गुण

1. सृजनात्मक बालक किसी समस्या के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं।
2. सृजनात्मक बालक में मौलिकता अधिक देखने को मिलती है, और उसके विचार वास्तविक तथा नए होते हैं।
3. सृजनात्मक बालक स्वतंत्र रूप में किसी समस्या को देख कर विचार करते हैं। उनके विचारों पर किसी अन्य बालक के विचारों का प्रभाव नहीं होता।
4. सृजनात्मक बालक नए–नए कार्य तथा चिंतन करने में अधिक रूचि लेते हैं।
5. किसी भी समस्या के प्रति स्वयं चिंतन करने के कारण वह अपने विचारों को भली प्रकार से व्यक्त कर पाते है।
6. इन प्रकार के बालकों में चिंतन प्रवाह भी देखने को मिलता है।
7. विशेष बालकों में भी सृजनात्मकता के गुण विद्यमान होते हैं। उचित शिक्षा एवं वातावरण इन बालकों की योग्यता में निखार ला सकते हैं।
8. सृजनात्मक बालक अपनी बात पर दृढ़ रहते हैं।
9. सृजनात्मक बालक एक समय में बहुत सारे विचारों पर ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता रखते हैं।

इसके अलावा गिलफोर्ड ने सृजनात्मकता से संबंधित ये प्रमुख गुण (Traits) बताए हैं–

1. समस्या के प्रति संवेदना (Generalised sensitivity of the problems),
2. चिंतन–प्रवाह (Fluency of thinking),
3. शब्द–प्रवाह (Word fluency),
4. साहचर्यात्मक प्रवाह (Associational fluency),
5. अभिव्यक्ति–प्रवाह (Expresasional fluency),
6. मौलिकता (Originality)

3.5.2 सृजनात्मकता की अवस्थाएँ

Wallas and Patrick के अनुसार चाहे बालक सामान्य चिंतन द्वारा किसी समस्या का समाधान कर रहा हो या वह सृजनात्मक रूप से चिंतन कर रहा है तो उसे निम्नलिखित चार अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है–

1. **तैयारी या आयोजन प्रक्रिया–** सृजनात्मक चिंतन में यह पहली अवस्था होती है, इस अवस्था में समस्या से संबंधित सभी आवश्यक तत्वों तथा प्रमाणों को एकत्र किया जाता है, जो समस्या को समझने के लिए पूरी तैयारी करने में आवश्यक होता है। इस स्तर पर बालक द्वारा समस्या को समझने के लिए उसे पक्ष तथा विपक्ष, सभी प्रकार के प्रमाण एकत्र करना आवश्यक होता है।

2. **उद्भवन–** यह सृजनात्मक चिंतन की दूसरी अवस्था होती है, इसमें बालक की निष्क्रियता बढ़ जाती है। वह थोड़े समय के लिए समस्या के बारे में चिंतन करना छोड़ देता है। इस अवस्था की उत्पत्ति तब होती है, जब बालक के बहुत प्रकार के प्रयत्न के बाद भी समस्या का समाधान नहीं हो पाता है।

3. **प्रबोधन–** इस अवस्था में अचानक बालक को समस्या का समाधान दिखाई पड़ता है। उद्भवन अवस्था में जब बालक अचेतन रूप से समस्या के विभिन्न पहलुओं को पुनः संगठित करता है, तब अचानक उसे समस्या का समाधान नजर आ जाता है। यह अवस्था प्रबोधन की अवस्था कहलाती है।

4. **प्रमाणीकरण–** सृजनात्मकता की इस अवस्था में प्रबोधन की अवस्था से प्राप्त समाधान या निष्कर्ष की जांच की जाती है। इस अवस्था में बालक यह देखने की कोशिश करता है कि उसे प्राप्त समाधान उपयुक्त है या नहीं। जांच करने के पश्चात् जब बालक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि समाधान सही नहीं है तो वह संपूर्ण कार्य विधि का संशोधन भी करता है और पुनः उसी समस्या के दूसरे समाधान की खोज में लग जाता है।

3.5.3 सृजनात्मकता का प्रशिक्षण

1. विशेष बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए उचित समय व अवसर प्रदान करने की आवश्यकता होती है, जिससे बालक अपनी सृजनात्मक शक्ति का प्रदर्शन कर सके।

2. विशेष बालकों के नवीन विचारों को सुनना तथा क्रियान्वयन के लिए समय तथा सुविधा प्रदान करना आवश्यक होता है।

3. विशेष बालकों द्वारा नवीन या सृजनात्मक विचार प्रस्तुत करने पर प्रोत्साहित करने से उनके सृजनात्मक चिंतन को बढ़ावा मिलता हैं।

4. कक्षा में विशेष बालकों को सृजनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करना, उनकी क्रियाशीलता को बढ़ाता है।

5. प्रत्येक बालक को उसकी रुचि व क्षमता के अनुसार कार्य देने से विशेष बालकों उत्साहपूर्ण ढंग से कार्य करते हैं।

6. विशेष बालकों के समक्ष समस्यात्मक प्रश्न या स्थिति को रखकर, उनमें सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है।

7. विशेष छात्र जिस विषय या परिस्थिति को लेकर सृजनात्मक चिंतन कर रहा है, उससे संबन्धित ज्ञान, कौशल तथा अन्य सूचनाएँ बालक को प्रदान करनी चाहिए, जिससे वह सही दिशा में कार्य कर सके।

8. विशेष बालकों को सृजनात्मक कार्य करने में, यदि अतिरिक्त समय की आवश्यकता हो तो वह उन्हें मिलना चाहिए, जिससे वह भी कक्षा के सृजनात्मक क्रियाकलाप में शामिल हो सकें।

9. सृजनात्मकता के विकास के लिए विशेष बालकों को भ्रमण, पर्यटन, पिकनिक आदि ले जाना चाहिए, जिससे वह विषय के संप्रत्यय को ठीक प्रकार से समझ सकेंगे और संबन्धित चिंतन भी कर सकेंगे।

10. कक्षा में छोटे समूहों का निर्माण करना तथा छोटे–छोटे समूह प्रोजेक्ट कार्य भी विशेष बालकों में सृजनात्मकता का विकास करते हैं।

11. विशेष बालक यदि सृजनात्मक प्रदर्शन करता है तो अध्यापक द्वारा पुनर्बलन प्रदान करना बालकों में सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास करता है।

12. बालकों के बीच प्रतिस्पर्धा के वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिससे बालकों में सृजनात्मक चिंतन का विकास हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. उचित शिक्षा तथा वातावरण विशेष बालक की .... का विकास करने में सहायक होता हैं।

प्रश्न 5. सृजनात्मक बालक नए–नए कार्य तथा ....करने में अधिक रूचि लेते है।

प्रश्न 6. सृजनात्मक चिंतन में पहली अवस्था ....होती है।

3.6 बुद्धि एवं सृजनात्मकता में संबंध

सृजनात्मकता और बुद्धि एक नहीं वरन् यह दोनों अलग–अलग मानसिक क्रियाएं हैं, जो प्रत्येक विशेष बालक में विद्यमान हो भी सकती हैं और नहीं भी। प्रायः अत्यधिक सृजनात्मक बालक प्रतिभावान होते हैं परंतु हमेंशा ऐसा नहीं होता, यह भी देखा गया है कि उच्च बुद्धि लब्धि वाले बालक सृजनात्मक नहीं होते। सृजनात्मक बालकों और उच्च बुद्धिलब्धि (I.Q.) के असृजनात्मक बालकों में यह देखा गया कि उच्च बुद्धिलब्धि वाले बालकों की अपेक्षा सृजनात्मक बालक अधिक स्वावलंबी व कल्पनाशील हैं।

कुछ अन्य अध्ययनों के द्वारा ज्ञात किया गया है कि यह आवश्यक नहीं है कि सृजनशील बालक अधिक बुद्धिमान हो। सृजनशील परीक्षणों द्वारा मापी गई सृजनशीलता–बुद्धि से अलग होती है परन्तु, जो शिक्षक द्वारा मूल्यांकन की जाती है, वह बुद्धि से संबन्धित होती है। इस प्रकार शैक्षणिक दृष्टि से सृजनशीलता और ज्ञानोपार्जन में संबंध दिखाई देता है। अतः सृजनात्मकता तथा बुद्धि में कुछ समानताएं दिखाई देने के कारण प्रायः यह भ्रम होता है कि दोनों में बहुत ज्यादा समानता है। जबकि यह दोनों ही बौद्धिक क्षमताएं हैं, तथा विशेष बालक के दैनिक सभी व्यवहारों में यह परिलक्षित भी होती हैं। ये दोनों क्षमताएँ जन्मजात होती हैं तथा दोनों का व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। दोनों में समानता के कुछ बिंदु होते हुए भी मूलभूत अंतर होते हैं, जिन्हें हम निम्न रूप से व्यक्त कर सकते हैं–

बुद्धि	सृजनात्मकता
1. बुद्धि किसी समस्या का संपूर्ण हल प्राप्त करने की मानसिक क्षमता है।	1. सृजनात्मकता नए कार्य करने की मानसिक क्षमता और शक्ति है।
2. यह बालक में एक विशेष गुण के रूप में पायी जाती है।	2. यह तभी सार्थक समझी जाती है, जब यह गुण समाज से स्वीकृत हो।
3. विभिन्न विकासात्मक अवस्था में बुद्धिलब्धि एक जैसी ही रहती है।	3. सृजनात्मकता की मात्रा विभिन्न विकासात्मक अवस्था में भिन्न–भिन्न हो सकती है।
4. बुद्धि पर वातावरण तथा अधिगम का प्रभाव नहीं पड़ता।	4. सृजनात्मकता पर वातावरण तथा अधिगम का प्रभाव पड़ता है।
5. प्रायः बुद्धि की मात्रा में परिवर्तन नहीं होता।	5. सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है।
6. बुद्धि को औसत बुद्धिलब्धि, औसत से कम और औसत से अधिक के आधार पर मापा जाता है।	6. सृजनात्मकता का मापन भी किया जा सकता है।
7. कम या अधिक बुद्धिलब्धि वाला बालक सृर्जनशील हो सकता है।	7. अधिक सृजनशील बालक अधिक या कम बुद्धि लब्धि वाला भी हो सकता है।
8. बुद्धि भी एक जन्मजात प्रवृत्ति है। विशेष बालकों में शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा इसका विकास भी किया जा सकता है।	8. सृजनात्मकता एक जन्मजात प्रवृत्ति है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 7. उच्च बुद्धिलब्धि वाले बालकों की अपेक्षा सृजनात्मक बालक अधिक ..... हैं।

प्रश्न 8. विभिन्न विकासात्मक अवस्था में .... एक जैसी ही रहती है।

प्रश्न 9. सृजनात्मकता का .... भी किया जा सकता है।

3.7 निष्कर्ष

प्रत्येक बालक की बुद्धि–लब्धि व सृजनात्मक क्षमता अलग–अलग होती है। बालक प्रत्येक वातावरण में जैसे घर, विद्यालय तथा आस–पास कुछ न कुछ सीखता रहता है। सीख लेने पर मानसिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति बालक के व्यवहार के आधार पर दिखाई देती है। वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक विद्यमान रहते है जो बालक को अनुक्रिया के लिए प्रेरित करते रहते हैं। इसके अलावा बालक में सीखे गए अनुभवों का संचयन भी होता है। जिससे वह नवीन समस्या उत्पन्न होने पर पुराने अनुभवों के आधार पर उनका समाधान ढूँढता है। किसी भी समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक बालक के पास समाधान के अलग–अलग तरीके हो सकते हैं। यह बालक की मानसिक क्षमता व बुद्धि पर आधारित हो सकते हैं, क्योंकि इसके साथ–साथ बालक में कई नवीन विचारों का समावेश भी होता है। ये सभी नवीन विचार बालक के सृजनात्मकता के गुण की ओर इशारा करते हैं। सृजनात्मकता एक जन्मजात प्रवृत्ति है, जिसका समय व परिस्थिति के अनुसार विकास भी किया जा सकता है।

3.8 इकाई सारांश

- बुद्धि एक मानसिक प्रतिभा है। जो बालक में जन्मजात होती है, जिसके कारण बालक सीखता व चिंतन भी करता है।
- बुद्धि के एक कारक सिद्धान्त के अनुसार–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को केवल एक क्षमता के रूप में स्वीकार किया है, किसी भी व्यक्ति में बुद्धिमत्ता होने पर वह सभी क्रियाओं में दक्ष हो सकता है।
- सामान्य कार्य करने के लिए सामान्य बुद्धि तत्व की आवश्यकता होती है। व विशेष कार्यों में दक्षता विशिष्ट बुद्धितत्व द्वारा प्राप्त होती है।
- बुद्धि का बहु कारक सिद्धान्त के अनुसार इसमें बुद्धि कई तत्वों का समूह होती है और प्रत्येक तत्व में कोई सूक्ष्म योग्यता अवश्य होती है। मनुष्य बुद्धि के द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों को संपादित कर सकता है।
- मानसिक योग्यताओं के समूह को समूह कारक बुद्धि कहा गया है।
- क्रियात्मक यांत्रिक आंतरिक्षिक शारीरिक का संबंध प्रयोगात्मक, यांत्रिक, स्थान संबंधी तथा शारीरिक योग्यताओं से होता है।

- शाब्दिक सांख्यिक शैक्षणिक का संबंध मौखिक योग्यता, संख्या संबंधी योग्यता तथा शैक्षिक योग्यता से होता है।
- गिलफोर्ड ने बुद्धि के स्वरूप को 3 विमाओं के प्रारूप से स्पष्ट किया है।
- अमेंरिकी मनोवैज्ञानिक थर्स्टन के अनुसार बुद्धि विभिन्न प्रकार की योग्यताओं का एक समूह है।
- सृजनात्मकता मौलिकता है, जो वास्तव में किसी भी प्रकार की क्रिया में घटित हो सकती है।
- विशेष बालकों के समक्ष समस्यात्मक प्रश्न या स्थिति को रखकर, उनमें सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है।
- सृजनात्मकता नए कार्य करने की मानसिक क्षमता और शक्ति है।
- अधिक सृजनशील बालक अधिक या कम बुद्धिलब्धि वाला भी हो सकता है।

3.9 बोध प्रश्न के उत्तर

1. बुद्धि अमूर्त चिंतन की योग्यता है।
2. बुद्धि का एक–कारक सिद्धान्त के समर्थक Binet, Terman और Stern है।
3. बुद्धि सीखने की योग्यता या अनुभवों से लाभ प्राप्त करने की योग्यता है।
4. उचित शिक्षा तथा वातावरण विशेष बालक की सृजनात्मक क्षमता का विकास करने में सहायक होते हैं।
5. सृजनात्मक बालक नए–नए कार्य तथा चिंतन करने में अधिक रूचि लेते हैं।
6. सृजनात्मक चिंतन में यह पहली अवस्था तैयारी या आयोजन प्रक्रिया होती है।
7. उच्च बुद्धिलब्धि वाले बालकों की अपेक्षा सृजनात्मक बालक अधिक स्वावलंबी व कल्पनाशील हैं।
8. विभिन्न विकासात्मक अवस्था में बुद्धिलब्धि एक जैसी ही रहती है।
9. सृजनात्मकता का मापन भी किया जा सकता है।

3.10 अपनी प्रगति जाँचे

1. बुद्धि के बहुकारक सिद्धान्त के जनक .... है।
2. बुद्धि के संरचना सिद्धान्त को बुद्धि का .... भी कहा जाता है।
3. स्पीयरमेंन के अनुसार बुद्धि......................... प्रकार की योग्यताओं का योग है।
4. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं?
5. सृजनात्मकता की अवस्थाओं पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?

3.11 अधिन्यास / क्रियाकलाप

1. ''बुद्धि एवं सृजनात्मकता में संबंध'' पर टिप्पणी लिखें।
2. बुद्धि क्या है? स्पीयरमेंन के अनुसार बुद्धि का सामान्य तत्व व विशिष्ट तत्व क्या है ?
3. बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें।

3.12 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

3.12.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....

....

3.12.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियों के साथ बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों पर चर्चा करेंगे।

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Binet, A., and Simon, T., (1936), The development of Intelligence in Children, Baltimore: Williams & Wilkins.
- Crow, L.D. and Crow Alice, (1973), Educational Psychology, (3rd Indian Reprint), New Delhi: Eurasia Publishing House.
- Campione, J. C., Brown, A. L., & Ferrara, R. (1982).Mental retardation and intelligence. In R. J. Sternberg (Ed.), Handbook of human intelligence (pp.392–490).New York: Cambridge University Presas.
- Ellis, Henry, (1965), Transfer of Lerning, New York : Macmillan.
- Gardner, H. (1993). Multiple intelligencesa: The theory in practice.New York: Basic Books.
- Garrett, H.E., and Shoneck, (1933), M.R., Psychological Tesats, Methods and Resaults (Part II), New York: Harper and Brothers.
- Griffith, J. H., (1933), The Psychology of Human Behaviour, London: George Allen.
- Guilford, J.P., (1967), The Nature of Human Intelligence, New York: Mcgraw Mill.

- Herr, E. L., Moore, G. D., & Hasen, J. S. (1965).Cretivity, intelligence, and valuesa:A study of relationships. Exceptional Children, 32, 114–115.
- Horton, D.L., & Turnage, T.W., (1976), Human Lerning, Englewood Cliffis, Prentice Hall.
- Hulse, S.H., Deesae, J. and Egeth, H., (1975), The Psychology of Lerning, (4th ed.), New York : McGraw-Hill.
- Jensen, A. R., (1980), Bias in Mental Tesating, New York: Free Presas.
- Kingsley, H.L., and Garry, R., (1957), The Nature and Conditions of Lerning, (2nd ed.), Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice-Hall.
- Knight, Rex and Knight, Margaret, (1952), A Modern Introduction to Psychology, London: University Tutorial Presas.
- Mangal, S.K., (2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Lerning Private Limited.
- Murphy, Gardener, (1968), An Introduction to Psychology, New Delhi: Oxford and IBH.
- Peterson, L.R., (1975), Lerning, Glenview, Illinois : Scott, Foresaman.
- Pillai, N.P., Pillai, K.S., and Nair, K.S., (1972), Psychological Foundation of Education, Trivandrum: Kala Niketan.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.
- Sawrey, J.H., and Telford, (1964), Educational Psychology (2nd ed.) New York: Prentice Hall.
- Sorenson, Herbert, (1948), Psychology in Education, New York : McGraw-Hill.
- Stephens, J.M., (1965), Hand Book of Classroom Lerning, New York : Holt.
- Stern, W., (1914), Psychological Methods of Tesating Intelligence, Baltimore, Warwick and York: Inc..
- Stoddard, G.D., (1943), The Mening of Intelligence, New York: Macmillan.
- Terman, L.M., and Merrill, M.A., (1937), Mesuring Intelligence, Boston:Hougton Miffin.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड – 2

अधिगम प्रक्रिया एवं अभिप्रेरणा

इकाई – 4	**75**
संवेदना, ध्यान एवं प्रत्यक्षीकरण	
इकाई – 5	**89**
स्मृति, चिंतन एवं समस्या समाधान	
इकाई – 6	**107**
अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकृति एवं सिद्धान्त	

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. के. एन. सिंह. — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 पी0 के0 पाण्डेय — प्रभारी निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 सुषमा पाण्डेय — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग डी0डी0यू0 विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो0 रजनी रंजन सिंह — आचार्य, विशेष शिक्षा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 जी0 के0 द्विवेदी — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 दिनेश सिंह — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ नीलम बंसल — प्रवक्ता, विशेष शिक्षा कम्पोजिटिंग रिजनल सेन्टर (CRC), लखनउफ (इकाई 1,2,3,4,5,6)

डॉ नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता विशेष शिक्षा, शिक्षा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 7,8,9,10,11,12,13,14,15)

सम्पादक

प्रो0. योगेन्द्र पाण्डेय — एसोसियएट प्रोफेसर, (विशेष शिक्षा), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

परिमापक

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

समन्वयक

डॉ. नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता, (विशेष शिक्षा), शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज.

सितम्बर, 2019 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड परिचय

मानव अधिगमं एक जटिल प्रक्रिया है। शिक्षण कार्य मांनव की अधिगमं क्षमंता पर निर्भर करता है। विशेष शिक्षकों के लिए मांनव अधिगमं की प्रक्रिया के बारे में समंझना बहुत आवश्यक होता है। इसके द्वारा उन्हें विशेष बालकों के सीखने की प्रक्रिया व उससे सम्बन्धित व्यवहार की जानकारी होती है। यह ज्ञान विशेष बालकों की अधिगमं संबंधी समंस्या को पहचान में मंदद करता है तथा जिसके आधार पर शैक्षिक मूंल्यांकन तथा प्रबन्धन कर सकते है। यह खण्ड संवेदना, ध्यान एवं प्रत्यक्षीकरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ, अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकृति एवं विभिन्न सिद्धान्त, स्मृंति, चिंतन एवं समंस्या समांधान के स्वरूप की जानकारी भी प्रदान करता है। इस खण्ड को तीन इकाईयों में विभाजित कर इसका अध्ययन करेगें जिनका विवरण इस प्रकार है–

इकाई–4 में संवेदना, ध्यान/अवधान एवं प्रत्यक्षीकरण का अर्थ, परिभाषा एवं संकल्पनां इत्यादि की चर्चा की गयी है।

इकाई–5 में स्मृंति, चिंतन एवं समंस्या समांधान के स्वरूप, प्रकृति एवं विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

इकाई–6 में अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकृति, विशेषताएं एवं सिद्धान्त का वर्णन किया गया है।

इकाई–4

संवेदना, ध्यान एवं प्रत्यक्षीकरण

संरचना

4.1 परिचय
4.2 उद्देश्य
4.3 संवेदना का अर्थ
4.3.1 संवेदना के सिद्धांत
4.3.2 संवेदना की विशेषताएं
4.3.3 संवेदना का शैक्षिक महत्व
4.4 ध्यान/अवधान का संप्रत्यय
4.4.1 ध्यान/अवधान की विशेषताएं
4.4.2 ध्यान/अवधान के प्रकार
4.4.3 अवधान के सिद्धांत
4.5 प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप
4.5.1 संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का महत्त्व
4.6 निष्कर्ष
4.7 इकाई सारांश
4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.9 अपनी प्रगति जाँचे
4.10 अधिन्यास/क्रियाकलाप
4.11 विचार विमर्श के बिन्दु/स्पष्टीकरण
4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 परिचय

विशेष बालकों के संदर्भ में संवेदना का अत्यधिक महत्व होता है। ज्यादातर विशेष बालकों में किसी न किसी ज्ञानेंद्रिय से सम्बन्धित अक्षमता होने से सीखने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। जिसके कारण विशेष बालक के विकास में भी अवरोध होता है। संवेदना ज्ञानेन्द्रियों से संबन्धित एक प्रारम्भिक मानसिक प्रक्रिया है। जिसमें ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विशेष बालक धीरे–धीरे ज्ञान प्राप्त करता है। किन्तु विशेष बालक को, जिस ज्ञानेन्द्रिय से ज्ञान प्राप्ति में बाधा होती है, जैसे– 'दृष्टि–अक्षमता' या 'श्रवण–अक्षमता' आदि होने पर

बालक दृष्टि व श्रवण इंद्रिय की संवेदना को ग्रहण नहीं कर पाता, जो उसके विकास में अवरोध उत्पन्न करती है तो इस परिस्थिति में बालक को अन्य उपस्थित संवेदना के अनुसार शिक्षण प्रशिक्षण दिया जाता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- संवेदना का अर्थ एवं विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- संवेदना के सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- ध्यान की प्रकृति व विशेषताएँ जान सकेंगे।
- ध्यान के प्रकार के बारे में बता सकेंगे।
- प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप समझ सकेंगे।
- विशेष शिक्षा मे संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का महत्त्व जान सकेंगे।

4.3 संवेदना (Sensation) का अर्थ

जन्म के बाद से ही बालक वाह्य वातावरण से संपर्क स्थापित करने लगता है। वह विभिन्न रंग, आवाज, स्पर्श आदि के प्रति संवेदनशील होने लगता है। छोटे शिशु किसी चमकीले रंग व किसी आवाज के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, इसके अलावा किसी रंगीन खिलौने को देख कर उसे पकड़ने की कोशिश भी करते हैं, वातावरण में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों के द्वारा शिशु अनुक्रिया प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रकार की अनुक्रिया में बालक वस्तुओं को स्पर्श करते हैं, उन्हें देखते हैं तथा उन्हें महसूस भी करते हैं। यह देखने, सुनने व महसूस करने की प्रक्रिया बालक के संवेदी अंगों के द्वारा होती है। विशेष बालक अपने संवेदी अंगों के द्वारा वातावरण में उपलब्ध उद्दीपकों की सूचना प्राप्त करता है।

वस्तु को स्पर्श करके, देख करके, आवाजों को सुनकर उसे अपने वातावरण का संज्ञान होता है, बालक के अधिगम की प्रक्रिया में संवेदनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेष बालक के, जन्म के बाद से ही बाह्य जगत के वातावरण से, ज्ञानार्जन करने का आधार संवेदना है।

ज्ञानेंद्रियों के द्वारा वस्तुओं का प्रारंभिक ज्ञान संवेदना कहलाता है। यह ज्ञानेंद्रियाँ सिर्फ बाहरी वातावरण से ही नहीं बल्कि हमारे शरीर से भी सूचनाएं ग्रहण करती हैं। ज्ञानेन्द्रिय मुख्यतः सात प्रकार की होती हैं – चक्ष्वेंद्रिय (आँख), श्रवणेंद्रिय (कान), घ्राणेंद्रिय (नाक), स्वादेंद्रिय (जिह्वा), स्पर्शेंद्रिय (त्वचा), एवं Vestibular (Balance), Propriocipation (Body Awareness) प्रत्येक इंद्रिय अलग–अलग प्रकार के उद्दीपक से प्रभावित होती है। जैसे– जीभ के लिए स्वाद, नाक के लिए खुशबू आदि। संवेदना का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं–

एस. माथुर– **''संवेदना ज्ञानेंद्रिय की प्रतिक्रिया है, जो उत्तेजित होने पर मस्तिष्क और नाड़ी मंडल के केंद्र में स्नायुविक धाराएं भेजती है। इस प्रकार मस्तिष्क का प्रथम प्रत्युत्तर ही संवेदना है।''**

"A sensation is an act of the sense organ which, stimulated sends nerve currents to the sensory centres of the brain and the first response of the brain is a sensation."

-S. Mathur

क्रूज– **''उत्तेजना के प्रति जीव की प्रथम प्रतिक्रिया ही संवेदना है।''**

"Sensation refer the initial response of the organism to a stimulation."

-Cruze

जेम्स– **''संवेदना ज्ञान के मार्ग में पहली वस्तुएं हैं।''**

"Sensations are first things in the way of consciousness."

-James

मनोवैज्ञानिक वार्ड का कथन है– **''विशुद्ध संवेदना एक मनोवैज्ञानिक कल्पना है।''**

"Pure sensation is a psychological myth."

-Ward

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संवेदना ज्ञान प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है जिसके द्वारा विशेष बालक वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने में समर्थ होता है। स्वयं के आस–पास के वातावरण की जानकारी बालक को संवेदना के द्वारा होती है। जैसे – किसी खुशबू का एहसास सूँघ कर किया जाता है, किसी आवाज को सुनकर पहचान सकते हैं।

4.3.1 संवेदना के सिद्धांत

संवेदना के लिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने निम्न सिद्धान्त प्रस्तुत किए है–

1. चयन करना (Selection)- वातावरण में अनेकों उद्दीपक विद्यमान होते हैं, विशेष बालकों के लिए यह चयन करना आवश्यक होता है कि वह अपनी आवश्यकतानुसार उद्दीपक का चयन करे।

2. परिवर्तन (Change/Discrimintation)- जब विशेष बालक किसी विशेष परिस्थिति में उद्दीपक का अनुभव करता है, तो उस उद्दीपक की मात्रा में आए थोड़े परिवर्तन को तुरंत महसूस भी कर लेता हैं। जैसे– लाल रंग की गेंद के स्थान पर गुलाबी रंग की गेंद का प्रयोग। बौद्धिक अक्षम बालकों को इस परिस्थिति में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

3. तुलना (Comparison)- उद्दीपक की मात्रा में परिवर्तन आने की स्थिति में, बालक उस उद्दीपक की दोनों मात्राओं के बीच तुलना करता हैं तो यह स्थिति तुलनात्मक स्थिति कहलाती है। जैसे– लाल व गुलाबी रंग की गेंद मे अंतर करना की कौन सी गेंद ज्यादा अच्छी है।

इस प्रकार संवेदना के सिद्धांतों के अनुसार उचित उद्दीपकों का चयन करना अनिवार्य होता है। वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक उपस्थित होते हैं किंतु बालक अपनी आवश्यकता के अनुसार उनका चयन करता है। जैसे–विशेष बालक द्वारा विभिन्न सामानों में से खेलने के लिए बॉल का चयन करना आदि। इसके साथ साथ दो या दो से अधिक उद्दीपकों में अंतर करना भी आवश्यक होता है। कभी–कभी वातावरण में मिलते

जुलते उद्दीपक भी होते हैं, जिनमें बालक को वांछित उद्दीपक का चयन करना होता है। इसके अलावा विशेष बालक दो उद्दीपकों के बीच तुलना भी करते हैं। ये तुलना सामान्यतः जीवन की सभी परिस्थितियों में लागू होती हैं। विशेष बालक जिस प्रकार से सीखते जाते हैं। उनकी संवेदना संबंधी क्रियाएं और भी तीव्र होती जाती हैं।

4.3.2 संवेदना की विशेषताएँ

संवेदना में विभिन्न प्रकार की विशेषताएँ पायी जाती हैं, जो निम्न हैं–

1. प्रत्येक संवेदना में अपने अपने अलग–अलग गुण होते हैं। हर संवेदना एक दूसरे से अलग–अलग प्रकार की होती है, जैसे–रंग के आधार पर प्रत्येक रंग अपने आप में अलग होता है परंतु पीले रंग या लाल रंग में भी अलग–अलग भिन्नता पाई जाती है जैसे–गहरा पीला हल्का पीला गहरा लाल हल्का लाल आदि।
2. इसी प्रकार वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपन मौजूद होते हैं। जिन्हें हम रंग, स्वाद, ध्वनि आदि के आधार पर पहचानते हैं। यह इनके अपने गुण हैं। जैसे–वस्तुओं के रंग ध्वनियाँ, स्वाद, गंध आदि सब संवेदनाएं हैं। जो गुणों के आधार पर प्रत्येक से भिन्न–भिन्न होती है।
3. प्रत्येक संवेदना में तीव्रता की भी विशेषता पाई जाती है। कोई उत्तेजक तीव्र या मंद हो सकते हैं। जैसे–कोई प्रकाश तेज या धीमा हो सकता है। स्वर तेज या धीमा हो सकता है। सभी उत्तेजकों में तीव्रता के आधार पर भी अंतर होता है।
4. विशेष बालकों के प्रशिक्षण में संवेदना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसमें अवधि या काल का भी महत्व होता है। विशेष बालकों को प्रशिक्षण करवाते समय संवेदना का अनुभव अधिक समय तक देने पर, वह क्रिया बालक के मस्तिष्क में अधिक समय तक संचित रहती है। जैसे–फलों की पहचान करने मे यदि बालक को अधिक अभ्यास व फ्लैश कार्ड, वास्तविक फल स्पर्श के आधार पर तथा स्क्रीन/चलचित्र मे फल दिखाए जाने पर, विशेष बालक उस फल को पहचानना शीघ्रता से सीख लेता है।
5. किसी उद्दीपक के प्रति, ज्ञानेंद्रिय का जितना भाग उत्तेजित होता है। उसे संवेदना का विस्तार कहते हैं। इसके साथ–साथ प्रत्येक संवेदना में स्पष्टता भी पाई जाती है, यह संवेदना की तीव्रता, विस्तार और अवधि आदि पर निर्भर करती है।
6. बालक के हाथ पर यदि बर्फ रखी जाए तो वह बता सकता है कि बर्फ कहां पर रखी गई है। संवेदना में स्थानीय चिन्ह की भी विशेषता पाई जाती है।

बाल्यावस्था से ही बालक अपनी संवेदनाओं के द्वारा वातावरण की विभिन्न सूचनाओं को ग्रहण करता जाता है। यह जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। इसके साथ–साथ विद्यालयी शिक्षा में भी बालक विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के द्वारा सूचनाएं ग्रहण करता है, तथा क्रियाओं को भी सीखता है। यह सभी संवेदनाएं उसकी अधिगम प्रक्रिया में सहायक होती हैं।

4.3.3 संवेदना का शैक्षिक महत्व

विशेष बालक के शिक्षण–प्रशिक्षण प्रक्रिया में ज्यादा से ज्यादा संवेदना के अनुभवों का समावेश किया जाता है। इसके द्वारा विशेष बालक के मानसिक व बौद्धिक विकास में सहायता मिलती है। जैसे–बालक को वस्तुओं के नाम सिखाने में, वस्तुओं को दिखाकर, उनको स्पर्श कराकर, उसकी ध्वनि सुनाकर आदि बहुइंद्रिय उपागम के आधार पर प्रशिक्षण

करवाया जाता है। जिससे विशेष बालक में किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय की क्षतिग्रस्तता होने पर भी बालक वांछित क्रिया या विषय को सीख सके। जैसे– पार्क का संप्रत्यय देने के लिए दृष्टिबाधित बालक को पार्क में लेकर जाना, श्रवण बाधित बालक को पार्क के चित्र दिखाना, या पार्क से संबंधित कोई चलचित्र दिखाना आदि।

विशेष बालक को तरह–तरह की संवेदना के द्वारा किसी भी वांछित क्रिया या संप्रत्यय को सिखा सकते हैं। क्योंकि इन बालकों की शिक्षा में इंद्रिय प्रशिक्षण का विशेष स्थान होता है। इंद्रिय अनुभव के द्वारा हम बौद्धिक अक्षम बालकों को भी आसानी से सिखा सकते हैं, क्योंकि इस तरह से अर्जित ज्ञान उनके मस्तिष्क में अधिक समय तक संचित रहता है। और ज्ञानेंद्रियों के समुचित विकास से बालक के मानसिक और बौद्धिक विकास में भी सहायता मिलती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. ज्ञानेंद्रियों के द्वारा वस्तुओं का प्रारंभिक ज्ञान .... कहलाता है।

प्रश्न 2. ज्ञानेन्द्रिय मुख्यतः .... प्रकार की होती हैं।

प्रश्न 3. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संवेदना ज्ञान प्राप्ति की .... है।

4.4 ध्यान/अवधान (Attention) का संप्रत्यय

ध्यान मन या मस्तिष्क से संबन्धित प्रक्रिया है, जो विशेष बालक के मन को किसी एक तरफ केंद्रित करती है। ध्यान शब्द वास्तव में एक क्रिया शब्द है। जिसका तात्पर्य किसी विषय, व्यक्ति, वस्तु, विचार या क्रिया पर विशेष बालक की मानसिक शक्तियों को केंद्रित करने से होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'अवधान' शब्द के लिए हम अपनी दैनिक बोलचाल की भाषा में 'ध्यान' शब्द का प्रयोग करते हैं। सामान्य बोलचाल की भाषा में ध्यान शब्द का प्रयोग हमें उसके बारे में यह धारणा बनाने के लिए प्रेरित करता है कि ध्यान हमारे मन और मस्तिष्क से संबंधित कोई ऐसी शक्ति योग्यता या कार्य–क्षमता है जिसे हम अपनी सुविधानुसार उसका मनचाहा उपयोग कर सकते हैं।

विशेष बालकों मे ज्यादातर कक्षा मे पाठ्यवस्तु पर ध्यान न देना जैसी समस्याएँ पायी जाती है। जिससे इन बालकों मे अधिगम प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। अतः विशेष अनुदेशन व सामग्री के द्वारा पाठ्यवस्तु को आकर्षण एवं रुचिपूर्ण बनाया जा सकता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने ध्यान/अवधान के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए है–

डमविले – **''किसी एक विषय पर चेतना को केंद्रित करना ध्यान कहलाता है।''**

"Attention is the concentration of consciousness upon one object rather than upon another."

-Dumville.

रॉस **''किसी विषय के विचार को स्पष्ट रूप से मन के सामने ले आने की प्रक्रिया ध्यान (या अवधान) कहलाती है।''**

"Attention is a process of getting an object of thought clearly before the mind."

-Ross.

मार्गन एवं गिलीलैंड– **''अपने वातावरण के किसी विशिष्ट तत्व की ओर उत्साह पूर्वक जागरूक होना अवधान कहलाता हैं। यह किसी अनुक्रिया के लिए पूर्व समायोजन है।''**

"Attention is being keenly alive to some specific pattern in our environment. It is a adjustment for response."

-Morgan and Gilliland.

रामनाथ शर्मा – **''ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके वातावरण में विद्यमान उद्दीपकों में से अपनी रूचि और अभिवृत्ति के अनुसार कोई विशिष्ट उद्दीपक चुनने के लिए विवश करती है।''**

"Attention can be defined as a process which compels the individual to select some particular stimulus according to his interest and attitude out of the multiplicity of stimuli present in the environment."

-Ramnath Sharma.

उपर्युक्त परिभाषाए ध्यान की प्रकृति के संबंध में, निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत करती है–

1. विशेष बालकों द्वारा किसी विशिष्ट वस्तु या घटना पर चेतना को केंद्रित करना ही ध्यान है।
2. विशेष बालक वातावरण मे कई वस्तुओं को देखते हैं और उनमें से किसी वस्तु विशेष के प्रति सचेत रहते हैं। जैसे– कक्षा में प्रयोग किए जाने वाले विशेष अधिगम सामग्री एवं फ्लैश कार्ड, चार्ट, शिक्षकों की उपस्थिति तथा उनकी क्रियाओं आदि के प्रति सचेत रहना आदि, बालक के ध्यान का केन्द्रीयकरण करते हैं।
3. विशेष बालक शिक्षक के शब्द/सांकेतिक भाषा के प्रति अधिक सचेत होते हैं तथा उस पर अपने ध्यान को केंद्रित करते है।
4. किसी वस्तु, आवाज या क्रिया पर चेतना केंद्रित करने से विशेष बालक उस वस्तु, आवाज या क्रिया को अच्छी तरह समझ लेते है। किन्तु दृष्टि अक्षम बालक केवल स्पर्श करके या सुनकर, श्रवण अक्षम बालक केवल देखकर ही विषय को समझ सकते हैं।
5. चेतना को केंद्रित करने की प्रक्रिया में जब बालक अन्य वस्तुओं की अपेक्षा किसी एक विशेष वस्तु की ओर अधिक सचेत होते हैं– ध्यान कहलाती है।

विशेष बालक के वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक विद्यमान होते हैं। जिनके प्रति बालक अनुक्रिया करता है, परंतु समय विशेष में बालक किसी विशेष उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करना चाहता है, बालक जिस उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करना चाहता है, उस पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। जैसे– शिक्षक के द्वारा कक्षा में पढ़ाए जाने पर, बालक बाहर के शोर की ओर ध्यान केंद्रित ना करके बल्कि शिक्षक की बातों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है तो यह संपूर्ण प्रक्रिया ध्यान कहलाती है।

संक्षेप में, वातावरण में से, आवश्यकतानुसार उद्दीपकों का चयन करना तथा उन पर अपना ध्यान केंद्रित करने की क्रिया ही ध्यान कहलाती है। हमारी ज्ञानेंद्रियां जैसे– कान, नाक आदि अनेक प्रकार के उद्दीपकों के द्वारा प्रभावित होती हैं, परंतु सभी उद्दीपकों के प्रति बालक अनुक्रिया नहीं करता है, वह अपनी आवश्यकता और इच्छानुसार कुछ खास–खास उद्दीपकों को चुन लेता है, और उनके प्रति अनुक्रिया करता है। इसे ही अवधान कहा जाता है।

4.4.1 ध्यान/अवधान की विशेषताएं

ध्यान/अवधान में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं–

1. अवधान एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है।
2. अवधान में शारीरिक समायोजन देखने को मिलता है।
3. अवधान में तत्परता की स्थिति होती है।
4. अवधान का विस्तार सीमित होता है।
5. अवधान में अस्थिरता तथा उच्चलन (Fluctuation and Shifting) का गुण पाया जाता है।
6. अवधान निरंतर बदलता रहता है।
7. ध्यान या अवधान के लिए तैयारी या जागरूकता जरूरी है।

4.4.2 ध्यान/अवधान के प्रकार

रॉस के अनुसार ध्यान का वर्गीकरण किया गया है –

1– **स्वाभाविक/ऐच्छिक** (Voluntary)–विशेष बालक के द्वारा इच्छानुसार कार्य करना। जैसे– विज्ञान विषय की समस्या पर ज्यादा ध्यान देना ऐच्छिक ध्यान कहलाता है।

2– **अनैच्छिक** (Voluntary-Non)– विशेष बालक का बिना किसी विशेष प्रयत्न के अधिगम प्रक्रिया अनैच्छिक अधिगम कहलाती है। यह सहज अधिगम प्रक्रिया होती है।

4.4.3 अवधान के सिद्धांत

1. **मार्गाविरोध सिद्धांत (Bottle Neck Theory)-** इस सिद्धांत को फिल्टर सिद्धांत भी कहा जाता है। सिद्धांत का प्रतिपादन ब्रोडबेंट (Broadbent) ने अपनी पुस्तक "Perception and Communication" में मार्गाविरोध सिद्धांत के बारे में बताया था। उन्होंने बताया कि जिस तरह से यदि हम एक ऐसे बोतल में पानी बदलने की कोशिश करते हैं, जिसका मुंह छोटा होता है तो यहां पर पानी को भीतर जाने में एक तरह का अवरोध उत्पन्न होता है, कुछ पानी बोतल से बाहर गिर जाता है तथा कुछ पानी बोतल के अंदर चला जाता है। ठीक उसी तरह यदि विशेष बालक को एक साथ कई तरह की सूचनाओं को संसाधित करना पड़ता है, तो वह सभी ऐसी सूचनाओं पर एक साथ ध्यान नहीं दे पाता है, क्योंकि उसमें जैविक रूप से एक फिल्टर लगा होता है। कुछ सूचनाएं इस फिल्टर को पार करते हुए विशेष बालक के ध्यान में प्रवेश करती हैं तो कुछ सूचनाएं पीछे ही रह जाती हैं, क्योंकि

वे सूचनाएं उस फिल्टर को पार नहीं कर पाते हैं, और विशेष बालक धीरे–धीरे इन्हें भूल जाता है।

2. **फिल्टर तनुकरण मॉडल (Treisman's Filter Attentuation Model)-** इस सिद्धांत का प्रतिपादन ट्रीसमैन (Treisman) नामक मनोवैज्ञानिक ने किया। इन्होंने फिल्टर सिद्धांत का दावे के साथ खंडन किया। ट्रीसमैन के अनुसार सूचनाओं के संसाधन के प्रारंभिक अवस्था में ही फिल्टर लगा होने के कारण बहुत सारी सूचनाओं पर ध्यान नहीं दे पाता है। विशेष बालक जिस कान/इन्द्री से प्राप्त सूचना पर ध्यान नहीं दे पाता है, वह संसाधित होने से पूर्णतया अवरुद्ध नहीं हो जाती है, बल्कि उनका रूप थोड़ा सूक्ष्म हो जाता है। विशेष बालक उनका आंशिक विश्लेषण ही कर पाता है। यही कारण है कि ध्यान नहीं दी गई सूचना की कुछ विशेषताओं से भी बालक अवगत हो जाता है। ट्रीसमैन ने अपने प्रयोग में विषयी को एक साथ दो तरह की सूचना दी, एक तरह की सूचना इंग्लिश नोवल का पैराग्राफ था। जिसे सुनकर विषयी को बताना था। इसके साथ एक दूसरी सूचना भी दी गई जो कि उसी उपन्यास का दूसरा पैराग्राफ जैव रसायन का एक टॉपिक था। परिणाम में देखा गया कि विषयी का उन सूचनाओं पर ध्यान देने में अधिक कठिनाई हुई, जो उस सूचना के समान थी। जिसे उसको दोहराना था परंतु जैव रसायन के टॉपिक की 'अस्वीकृत' करने में कोई खास कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ।

अवधान के दोनों सिद्धांत मानव अधिगम की प्रक्रिया के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह विशेष बालकों के सीखने की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन करते हैं। विशेष बालक के वातावरण में अलग–अलग प्रकार के उद्दीपक उपस्थित रहते हैं, बालक एक ही समय में सभी उद्दीपकों पर ध्यान नहीं दे सकता, वह अपनी जरूरत के अनुसार उद्दीपकों का चयन कर लेता है। तथा उस पर ही अपना ध्यान केंद्रित करता है। इस पूर्ण प्रक्रिया में बालक अपने संवेदी अंगों के द्वारा वातावरण की सूचनाओं को ग्रहण करता है।

ध्यान या अवधान एक ऐसी परिवर्तनशील एवं चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विशेष बालक किसी वस्तु या घटना के प्रति अपनी अनुक्रिया व्यक्त करने में आवश्यक रूप से सचेत एवं जागरूक बनाने के लिए उस पर अपनी चेतना को अच्छी तरह केंद्रित करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. .... हमारे मन और मस्तिष्क से संबंधित कोई ऐसी शक्ति योग्यता है।

प्रश्न 5. अवधान में अस्थिरता तथा .... का गुण पाया जाता है।

प्रश्न 6. किसी एक विषय पर ....को केंद्रित करना ध्यान कहलाता है।

4.5 प्रत्यक्षीकरण (Perception) का स्वरूप

विशेष बालक जन्म से ही परिवार व सामाजिक वातावरण मे रहता है और विभिन्न घटनाक्रम व वस्तुओं को देखता व महसूस भी करता है। विशेष बालक दिन प्रतिदिन की क्रियाएँ, सामाजिक वातावरण, व अन्य प्रकार की गतिविधियों को देखता तथा अपनी समझ के अनुसार उसका आंकलन या वर्णन भी करता है। यह आंकलन या वर्णन विशेष बालक की मानसिक प्रक्रिया से संबन्धित होता है। विशेष बालक अपनी मानसिक क्षमता के अनुसार ही घटना को समझता है एवं उसकी व्याख्या भी कर सकता है।

प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विशेष बालक द्वारा अपने आंतरिक अंगों एवं बाह्य वातावरण में उपस्थित उदीपकों का तत्काल अनुभव किया जाता है। जो कि संवेदना की प्रक्रिया से प्रारंभ होती है और किसी व्यवहार करने की क्रिया के पहले तक होती रहती है, ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की मस्तिष्क द्वारा एक अर्थपूर्ण व्याख्या करना प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। प्रत्येक विशेष बालक का वस्तु या घटनाक्रम के प्रति प्रत्यक्षीकरण भी भिन्न हो सकता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षीकरण को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है–

कोलमैन के अनुसार– **''प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जीव को अपने आंतरिक अंगों तथा अपने वातावरण के बारे में सूचना मिलती है।''**

वुडवर्थ के अनुसार– **''प्रत्यक्षीकरण इंद्रियों की सहायता से पदार्थ और बाह्य घटनाओं या तथ्यों को जानने की क्रिया है।''**

"Perception is the process of getting to know objects and objective facts by use of the senses."

-Woodworth

जेम्स– **''प्रत्यक्षीकरण विशेष रूप से उन भौतिक पदार्थों की चेतना है, जो ज्ञानेन्द्रियों के सामने रहते हैं।''**

"Perception is the consciousness of particular material things present to senses.."

-James

कॉलिन्स और ड्रेवर– **''संवेदना द्वारा किसी वस्तु या परिस्थिति को तुरंत समझ लेना प्रत्यक्षीकरण है।''**

"Perception is the process of getting to know objects and objective facts by use of the senses."

-Collins and Denver.

स्टेगनर– **''ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाह्य वस्तुओं या परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।''**

"Perception is the process of obtaining knowledge of external objects and events by means of the senses."

-Stagner

रायबर्न– **"अनुभव के अनुसार संवेदना की व्याख्या करने की प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।"**

"The process of interpretation of sensation according to experience is known as Perception."

-Ryburn.

भाटिया– '' **प्रत्यक्षीकरण, संवेदना और अर्थ का योग है।''**

"Perception is sensation plus meaning."

-Bhatia

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत बालक वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों को अवलोकन करके स्वयं से उसका चिंतन करता है, विशेष बालक के वातावरण में विभिन्न प्रकार के उद्दीपक विद्यमान रहते हैं। बालक उन सभी उद्दीपकों को देखता व महसूस भी करता रहता है। कुछ विशेष उद्दीपकों के प्रति वह अनुक्रिया भी करता है, और कुछ उद्दीपकों के प्रति वह चिंतन भी करता हैं। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में बालक उद्दीपकों की व्याख्या अपने मतानुसार करता है। यदि बालक वातावरण में उपस्थित उद्दीपकों के प्रति चिंतन करता है, अपने शब्दों में उसकी व्याख्या करता है, तो यह समस्त प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण कहलाती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय चयनात्मक एवं संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा विशेष बालक को अपने आंतरिक अंगों तथा बाहरी वातावरण में उपस्थित वस्तुओं का तत्कालिक अनुभव होता है।

प्रत्यक्षीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

- प्रत्यक्षीकरण के लिए उद्दीपक का होना अनिवार्य है। विशेष बालक किसी वस्तु या घटना का अनुभव करता है। बिना किसी उद्दीपक के प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया संभव नही है।

- प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक का तत्कालिक अनुभव होता है। विशेष बालक घटना या वस्तु को तत्काल देखता व अनुभव भी करता है।

- प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया मे बालक का सक्रिय रहना भी जरूरी होता है, जिससे वह उद्दीपक के प्रति अपनी मानसिक प्रक्रिया कर सकेगा।

- प्रत्यक्षीकरण एक चयनात्मक प्रक्रिया है। वातावरण मे विभिन्न प्रकार के उद्दीपक विद्मान होते है, विशेष बालक के द्वारा उपयुक्त उद्दीपक का चयन करना भी आवश्यक होता है।

4.5.1 संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का महत्व

विशेष शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का चहुमुखी विकास होता है। प्रत्यक्षीकरण की क्रिया के द्वारा बालक का संज्ञानात्मक विकास तीव्र गति से होता है, क्योंकि विशेष बालक स्वयं के वातावरण का अवलोकन, चिंतन तथा व्याख्या आदि संज्ञानात्मक कार्यों को करना प्रारम्भ कर देता है, जो बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विशेष शिक्षा में संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का महत्त्व निम्नवत है–

1. विशेष बालक अपनी ज्ञानइंद्रियों के द्वारा वस्तु या घटना का ज्ञान प्राप्त करता है। देखना, सुनना, स्पर्श के द्वारा बालक वस्तु या घटना के बारे मे जानकारी प्राप्त करता है। यदि विशेष बालक में किसी भी प्रकार की अक्षमता है। जैसे–सुनने, देखने या अन्य किसी प्रकार की–तो वह उसके सीखने की प्रक्रिया मे बाधा उत्पन्न करेगी। इस प्रकार की कठिनाई के लिये विशेष बालक के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण व अनुकूलन जैसे–कान की मशीन, ब्रेल लिपि प्रशिक्षण, आदि की आवश्यकता होती है।

2. विद्यालय के पाठ्यक्रम में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का होना भी आवश्यक है जैसे–खेल–कूद, व्यायाम आदि। इसके द्वारा विशेष बालक प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करता है तथा अधिक क्रियाशील होता है। ये संवेदी अनुभव विशेष बालक के समग्र विकास के लिए आवश्यक हैं।

3. विशेष बालकों के लिए बहु–इंद्रिय उपागम तथा संवेदी प्रशिक्षण उनके विकास के लिए नितांत आवश्यक है। यदि किसी विशेष बालक में किसी ज्ञानेन्द्रिय संबन्धित दोष है तो यह प्रशिक्षण उपयोगी होता है।

4. विशेष बालकों को इंद्रिय अनुभव एवं स्वयं करके सीखना आदि ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। इसके साथ–साथ विशेष बालक स्वयं निरीक्षण भी करने लगते है।

विशेष बालक पूर्व ज्ञान के आधार पर प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया करते है। अतः पूर्व तथा नवीन ज्ञान के बीच सामंजस्य आवश्यक है। जिससे बालक यथोचित क्रिया कर सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 7. ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की मस्तिष्क द्वारा एक अर्थपूर्ण व्याख्या करना .... कहलाता है।

प्रश्न 8. मार्गाविरोध सिद्धांत को .... भी कहा जाता है।

प्रश्न 9. विशेष बालक .... के द्वारा वस्तु या घटना का ज्ञान प्राप्त करता है।

4.6 निष्कर्ष

प्रत्यक्षीकरण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। विशेष बालक मे उद्दीपक के प्रति ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता ही प्रत्यक्षीकरण का कारण होती है। विशेष बालकों के शैक्षणिक विकास की दृष्टि से भ्रमण, पिकनिक, पर्यटन आदि उपयोगी हैं, जो बालक को प्रत्यक्षीकरण के लिए सहायता प्रदान करते है। विशेष शिक्षण प्रशिक्षण सामग्री जैसे–दृष्टि अक्षम बालक के लिए ब्रेल लिपि व स्पर्शीय शिक्षण अधिगम सामग्री तथा श्रवण अक्षम बालक के लिए सांकेतिक भाषा व दृष्टीय शिक्षण अधिगम सामग्री, बौद्धिक अक्षम बालक के लिए विशेष अनुदेशन व शिक्षण अधिगम सामग्री जो विशेष बालक की इंद्रिय क्षतिग्रस्तता के अनुसार होती है। यह विशेष बालक के शिक्षण अधिगम को सरल एवं अनुकूल बनाती है।

4.7 इकाई सारांश

- संवेदना ज्ञानेन्द्रियों से संबन्धित एक प्रारम्भिक मानसिक प्रक्रिया है।
- ज्ञानेन्द्रिय मुख्यतः सात प्रकार की होती हैं – चक्ष्वेंद्रिय (आँख), श्रवणेंद्रिय (कान), घ्राणेंद्रिय (नाक), स्वादेंद्रिय (जिह्वा), स्पर्शेंद्रिय (त्वचा), एवं Vestibular (Balance), Proprioeption (Body Awareness).
- उत्तेजना के प्रति जीव की प्रथम प्रतिक्रिया ही संवेदना है।
- किसी उद्दीपक के प्रति, ज्ञानेंद्रिय का जितना भाग उत्तेजित होता है, उसे संवेदना का विस्तार कहते हैं।
- ज्ञानेंद्रियों के समुचित विकास से बालक के मानसिक और बौद्धिक विकास में भी सहायता मिलती है।
- ध्यान (या अवधान) एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके वातावरण में विद्यमान उद्दीपकों में से अपनी रूचि और अभिवृत्ति के अनुसार कोई विशिष्ट उद्दीपक चुनने के लिए विवश करती है।
- विशेष बालकों द्वारा किसी विशिष्ट वस्तु या घटना पर चेतना को केंद्रित करना ही ध्यान है।
- ट्रीसमैन के अनुसार सूचनाओं के संसाधन के प्रारंभिक अवस्था में ही फिल्टर लगा होने के कारण बहुत सारी सूचनाओं पर ध्यान नहीं दे पाता है।
- प्रत्यक्षीकरण एक सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है, जिसमे द्वारा विशेष बालक द्वारा अपने आंतरिक अंगों एवं बाह्य वातावरण मे उपस्थित उद्दीपकों का तत्काल अनुभव किया जाता है।
- विशेष बालकों के शिक्षण व प्रशिक्षण में बहुइंद्रिय उपागम तथा संवेदी प्रशिक्षण नितांत आवश्यक है।

4.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ज्ञानेंद्रियों के द्वारा वस्तुओं का प्रारंभिक ज्ञान संवेदना कहलाता है।
2. ज्ञानेन्द्रिय मुख्यतः सात प्रकार की होती हैं।
3. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संवेदना ज्ञान प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है।
4. ध्यान हमारे मन और मस्तिष्क से संबंधित कोई ऐसी शक्ति योग्यता या कार्य–क्षमता है।
5. अवधान में अस्थिरता तथा उच्चलन (Fluctuation and Shifting) का गुण पाया जाता है।
6. किसी एक विषय पर चेतना को केंद्रित करना ध्यान (अवधान) कहलाता है।
7. ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की मस्तिष्क द्वारा एक अर्थपूर्ण व्याख्या करना प्रत्यक्षीकरण कहलाता है।

8. मार्गाविरोध सिद्धांत को फिल्टर सिद्धांत भी कहा जाता है।

9. विशेष बालक ज्ञानइंद्रियों के द्वारा वस्तु या घटना का ज्ञान प्राप्त करता है।

4.9 अपनी प्रगति जाँचे

1. संवेदना के लिए मनोवैज्ञानिकों ने ....सिद्धांत प्रस्तुत किए है?
2. ''तुलनात्मक स्थिति' से आप क्या समझते हैं?
3. संवेदना में .... चिन्ह की भी विशेषता पाई जाती है?
4. संवेदना का विस्तार क्या हैं?
5. विद्यालय के पाठ्यक्रम में .... क्रियाओं का होना भी आवश्यक है।
6. प्रत्यक्षीकरण एक .... मानसिक प्रक्रिया है।

4.10 अधिन्यास / क्रियाकलाप

1. प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?
2. संवेदना के विभिन्न सिद्धांतों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?
3. विशेष बालकों शिक्षा में संवेदना व प्रत्यक्षीकरण का क्या महत्व है ?

4.11 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

4.11.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....

....

4.11.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियो के साथ संवेदना का विस्तार प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली प्रविधियों पर चर्चा करेंगे।

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Bhatia, H.R., (1968), Elements of Education Psychology (3rd ed. Reprint) Calcutta: Orient Longman.
- Broadbent, D.E., (1958), Perception and Communication, Oxford: Pergamon Press.

- Biggie, M.L. and Hung, M.P., (1968), Psychological Foundation of Education, New York: Harper & Row.
- Crow, L.D. and Crow, Alice, (1973), Educational Psychology, New Delhi: Eurasia Publishing House.
- Collins, Mary, and Drever, James, (1930), Experimental Psychology, (3rd ed.),London: Methuen.
- Coltheart, M. and Harris, M. (1983) An Introduction to the Psychology of Language, London, Routledge & Kegan Paul. 132
- Dumville, B., (1938), The Fundamentals of Psychology (3rd ed.), London: University Tutorial Press.
- James, W., (1890), Principles of Psychology (Vol. II), New York: Holt.
- Mangal, S.K. (2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Learning Private Limited.
- Morgan, J.B., and Gilliland, A.R., (1942), An Introduction to Psychology, New York: Macmillan.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Ross, J.S., (1951), Ground Work of Educational Psychology, London: George G. Harrup &Co..
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.
- Shanker, Udai, (1984), Advanced Educational Psychology, New Delhi: Oxonian Press.
- Sharma, R.N., (1967), Educational Psychology, Meerut: Rastogi Publication.
- White, Alan, R., (1964), Attention, Oxford: Blackwell.
- Woodworth, R.S. (Ed.), (1954), Experimental Psychology, New York: Holt.
- Woodworth, R.S., (1945), Psychology, London: Methuen.

इकाई–5

स्मृति, चिंतन एवं समस्या समाधान

संरचना–

5.1 परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 स्मृति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

5.3.1 स्मृति की अवस्थाएँ

5.3.2 स्मृति के प्रकार

5.3.3 स्मृति का मापन

5.3.4 स्मृति को प्रभावशाली बनाने की कुछ तकनीक एवं उपाय

5.4 चिंतन का अर्थ

5.4.1 चिंतन की प्रकृति

5.4.2 चिंतन के साधन

5.4.3 चिंतन शक्तियों का विकास

5.5 समस्या समाधान– अर्थ एवं प्रकृति

5.5.1 समस्या समाधान की विधियाँ

5.5.2 समस्या समाधान संबंधी व्यूह रचनाएँ

5.5.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

5.6 निष्कर्ष

5.7 इकाई सारांश

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 अपनी प्रगति जाँचे

5.10 अधिन्यास / क्रियाकलाप

5.11 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 परिचय

मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्राणी है। अपनी बुद्धि के कारण मानव सभी प्राणियों से उच्च होता है। उसने अपनी बुद्धि के द्वारा विभिन्न प्रकार के अविष्कार एवं रचनाएं की है। जो मानव जीवन को सभ्यता की ओर ले जाती है। जीवन के इन सभी पहलुओं में अधिगम (सीखना) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सीखना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि किसी सीखे हुए व्यवहार को किसी अन्य या नवीन परिस्थिति में, उस अनुक्रिया की पुनरावृत्ति करना भी आवश्यक होता है। किसी सीखे हुए व्यवहार को दुबारा प्रयोग करने के लिए, विशेष बालक को अपने मस्तिष्क में इन अनुभवों तथा ज्ञान को सुरक्षित रखना अनिवार्य होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- स्मृति का अर्थ एवं परिभाषाएँ समझ सकेंगे।
- स्मृति की अवस्थाएँ समझ सकेंगे।
- स्मृति के प्रकार व मापन के बारे में जान सकेंगे।
- चिंतन का अर्थ व प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- समस्या समाधान– अर्थ एवं प्रकृति समझ सकेंगे।
- विशेष बालकों में समस्या समाधान के महत्व को समझ सकेंगे।

5.3 स्मृति (Memory)

स्मृति से तात्पर्य पूर्व की सूचनाओं को मस्तिष्क में इकत्र करने की क्षमता से है। स्मृति के अंतर्गत किसी सूचना को एक समय तक याद करना शामिल होता है। जैसे–कूछ परिचित मोबाइल नंबर हमें अधिक समय तक याद रहते हैं, परंतु कुछ स्मृतियां जैसे अपरिचित मोबाइल नंबर हमें बहुत कम समय तक याद रहता है। अर्थात् स्मृति एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति पुरानी घटनाओं को मस्तिष्क में सुरक्षित कर लेता है और उन्हें पुनः प्राप्त भी कर सकता है। स्मृति की कुछ परिभाषाएँ निम्न है–

स्टाउट (Stout)– **''जहां तक आदर्श पुनरावृति के मात्र पुनः उत्पादन होने का प्रश्न है, स्मृति को एक आदर्श पुनरावृति कहा जा सकता है। आदर्श पुनरावृति के इस उत्पादक पहलू के लिए पूर्व अनुभवों से संबंधित वस्तुओं का जहां तक हो सके उसी क्रम तथा ढंग से पुनः प्रकाश में आना आवश्यक है, जिस क्रम तथा ढंग में वे पहले उपस्थित थी।''**

वुडवर्थ एवं मार्क्विस (Woodworth and Marquis)– **''जो बात पहले सीखी जा चुकी है, उसको याद रखना ही स्मृति है।''**

रायबर्न (Ryburn) –**''अपने अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने के कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में पुनः वापस लाने की जो शक्ति हम में होती है, उसी को स्मृति कहते हैं।''**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्मृति से तात्पर्य विशेष बालक की याद करने की क्षमता से है। प्रत्येक मनुष्य को अपने दैनिक एवं शैक्षणिक सभी कार्यों के लिए कुछ बातों को याद रखना अनिवार्य होता है। विशेष बालकों को भी दैनिक तथा शैक्षणिक कौशलों को सिखाया जाता है। बालक की स्मृति ही उसे अन्य क्रियाओं को सीखने के लिए प्रेरित करती है, जैसे–बालक को यदि गिनती याद होती है तो वह आगे की प्रक्रिया जोड़ना, घटाना आदि कर सकता है। इसी प्रकार दैनिक कार्यों को संपादित करने के लिए भी हमें स्मृति की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में किसी घटना, व्यक्ति, संप्रत्यय आदि को याद रखने की शक्ति ही स्मृति होती है। जिसके द्वारा हम अपने प्रतिदिन के कार्यों को सरलता पूर्वक कर सकते हैं।

5.3.1 स्मृति की अवस्थाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है–

1. **कूट संकेतन (Encoding)**–कूट संकेतन से तात्पर्य स्मृति में पहली बार आई सूचना से होता है ताकि इसका पुनः प्रयोग भी किया जा सके। कूट संकेतन में संचित होने वाली सूचना को दोबारा ग्रहण भी किया जा सकता है।

2. **भंडारण/संचयन (Storage)**– स्मृति की दूसरी अवस्था है किसी भी सूचना का यदि कुछ संगठन किया गया है तो उसका भंडारण भी बहुत आवश्यक है। जिससे सूचना का दोबारा आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग किया जा सके। भंडारण उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा सूचना को कुछ अधिक समय तक धारण किया जा सकता है।

3. **पुनः प्राप्ति (Retrieval)**– यह स्मृति की तीसरी अवस्था है। जब कोई व्यक्ति स्मृति में संचित सूचनाओं को पुनः प्राप्त करता है तो इस अवस्था को स्मरण/पुनरुद्धार स्मृति कहते हैं। जैसे–विशेष बालक का गणित में गुणा करने के लिए संख्या के पहाड़ो को स्मरण करना। बालक के द्वारा किसी भी सूचना का पुनःस्मरण तब तक नहीं हो सकता यदि उसका ठीक प्रकार से संचयन नहीं किया गया है।

5.3.2 स्मृति के प्रकार

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति तंत्र तीन प्रकार के होते हैं–

1. संवेदी स्मृति–संवेदी स्मृति को तत्कालिक स्मृति भी कहा जाता है। किसी भी सूचना को सबसे पहले संवेदी स्मृति में आना होता है। सूचना की अवधि बहुत कम होती है, सूचना कुछ ही सेकेंड तक विशेष बालक के मस्तिष्क में संरक्षित रहती है। संवेदी स्मृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

   (i) **प्रतिभा संबंधी स्मृति**– विशेष बालक के मस्तिष्क द्वारा देखी गयी वस्तु या व्यक्ति की सूचना एक सेकंड तक ही संचित हो पाती है।

   (ii) **प्रतिध्वनि स्मृति**– विशेष बालक के मस्तिष्क में आवाज के चिन्ह एक या उससे कम सेकंड तक संचित रहते है।

2. अल्पकालिक स्मृति– विशेष बालक का मस्तिष्क सभी प्रकार की सूचनाओं पर ध्यान नहीं देता है जो संवेदी स्मृति हिस्से में आती रहती है। जो सूचनाएं हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण होती है। वह हमारे द्वितीय स्मृति भंडारण तंत्र में प्रवेश करती हैं।

इसे हम अल्पकालिक स्मृति भी कहते हैं। इस प्रकार की सूचनाएं मानव मस्तिष्क में सामान्यतः 30 सेकंड या उससे कम समय तक ही संरक्षित हो पाती है। अल्पकालिक स्मृति को लघु कालिक, सक्रिय स्मृति भी कहते है।

3. दीर्घकालिक स्मृति– विशेष बालकों के द्वारा अल्पकालिक स्मृति में आई हुई सूचना जो धारण सीमाओं को पार करके अधिक अभ्यास के द्वारा दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है। यह सूचना अधिक समय तक सुरक्षित रहती है। दीर्घकालिक स्मृति क्षमता एक ऐसी स्मृति की क्षमता है जहां पर सूचनाओं का स्थाई भंडारण होता है। जैसे–आपका यादगार जन्मदिन कैसे मनाया था, आदि।

- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे दो भागों मे बांटा है–

  (i) **प्रासंगिक स्मृति**– इसमे अस्थायी सूचनाएँ संचित होती है, जो विशेष बालकों के साथ घटित होती है। जैसे– बालक का विद्यालय मे पहला दिन आदि।

  (ii) **अर्थगत स्मृति**– शब्दों या संकेतों के बारे मे क्रमबद्ध ज्ञान के संचय को अर्थगत स्मृति कहते है। जैस– हिन्दी वर्णमाला या शब्द आदि।

विशेष बालक को सीखे गए कौशल को याद रखने के लिए उसका बार–बार अभ्यास कराना आवश्यक हो जाता है जैसे– अपना नाम लिखना सीखने के लिए बौद्धिक अक्षम बालक को उसके नाम के फ्लैश कार्ड को बार–बार दिखाना, लिखना सिखाना, एवं उसके मनके (वर्ण/मात्रा) याद कराना आदि। इस प्रकार अभ्यास के द्वारा बालक अपना नाम लिखना सीख जाता है तो धारण करने तथा पुनः प्रस्तुत करने की क्षमता को स्मृति कहते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान मे अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त मे दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. धारण करने तथा पुनः प्रस्तुत करने की क्षमता को .... कहते है।

प्रश्न 2. .... प्रक्रिया में सूचना को कुछ अधिक समय तक धारण किया जा सकता है।

प्रश्न 3. संवेदी स्मृति को .... भी कहा जाता है।

5.3.3 स्मृति का मापन

विशेष बालकों की स्मृति एवं धारण शक्ति का मापन किया जा सकता है। किसी भी विशेष बालक की भंडारण या धारण क्षमता को नापने के लिए हम निम्न प्रकार के सूत्र का प्रयोग करते हैं–

स्मृति में धारण की गयी विषय सामग्री की मात्रा = याद की गयी विषय सामग्री की मात्रा – विस्मृति सामग्री की मात्रा

इस सूत्र के द्वारा हम किसी भी विशेष बालक की स्मरण क्षमता का पता लगा सकते हैं कि वह कितनी विषय सामग्री प्रारम्भ में याद कर सकता है, एवं उसका पुनः उपयोग भी कर सकता है। अब उसमें से कितनी सामग्री विस्मृत भी हो चुकी है। विस्मरण समृति का एक नकारात्मक रूप है, जब विशेष बालक पूर्व के सीखे गए अनुभवों को किसी कारणवश भूल जाता है तो इसे विस्मरण कहा जाता है।

5.3.4 स्मृति को प्रभावशाली बनाने की कुछ तकनीक एवं उपाय

1. विशेष बालकों को विषय वस्तु के प्रति रुचि होने के कारण वह उसे अधिक समय तक याद रख सकते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर सीखे गए कौशलों का प्रयोग भी कर सकते हैं।

2. विशेष बालकों में इच्छा एवं संकल्प शक्ति की नितांत कमी होती है अतः इन बालकों में आत्मविश्वास एवं दृढ़ संकल्प का निर्माण करना चाहिए।

3. सामान्य बालकों की अपेक्षाकृत विशेष बालकों को अधिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। जिससे वह सभी प्रकार के कौशल सीख सकते हैं। विशेष बालक ज्यादातर विषय वस्तु को स्वयं अभ्यास नहीं करते, शिक्षक की जिम्मेदारी होती है कि उन्हें विषय वस्तु को दोहराने के लिए प्रेरित करें।

4. विशेष बालकों में अन्य दिव्यांगता भी हो सकती है। यह सभी परिस्थितियाँ बालक के सीखने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। अतः इन बालकों को विद्यालय पाठ्यक्रम में अनुकूलन के द्वारा सिखाया जाता है।

5. विशेष बालकों को उनके दैनिक जीवन से जुड़ी हुई वस्तु या घटनाओं से जोड़कर सिखाने से यह बालक जटिल विषय भी शीघ्रता से सीख लेते हैं तथा उस संप्रत्यय को अधिक समय तक याद भी रख सकते हैं। जैसे–गणित विषय को खेल–खेल में सिखाना आदि।

6. विशेष बालकों को विषय वस्तु सिखाते समय क्रिया विश्लेषण करना आवश्यक होता है। किसी भी संप्रत्यय को छोटे–छोटे हिस्सों में विभाजित करके हम बालक को जटिल कौशल भी सिखा सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. अल्पकालिक स्मृति को .... सक्रिय स्मृति भी कहते है।

प्रश्न 5. .... में धारण की गयी विषय सामग्री की मात्रा = याद की गयी विषय सामग्री की मात्रा – .... सामग्री की मात्रा।

प्रश्न 6. विशेष बालकों को विषय वस्तु सिखाते समय .... करना आवश्यक होता है।

5.4 चिंतन का अर्थ एवं प्रकृति

सामान्य शब्दों मे 'चिंतन' से तात्पर्य याद करने या विचार करने से होता है। दैनिक जीवन मे चिंतन शब्द का प्रयोग मानसिक क्रिया से संबन्धित होता हैं। जैसे– विशेष बालकों को पूर्व मे की गयी क्रिया जैसे– हम पिकनिक पर गए थे। वहाँ क्या–क्या किया था या पिछले साल विद्यालय के वार्षिकोत्सव मे क्या–क्या कार्यक्रम थे आदि। इस प्रकार पूर्व की घटना की 'कल्पना' करना आदि। चिंतन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से क्रियाओं जैसे –याद करना, कल्पना करना, प्रत्यक्षीकरण करना आदि से संबन्धित होता है। विभिन्न विचारकों ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

वैलेन्टाइन (Valentine) **''मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाना चाहिए। जिसमे श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर अविराम गति से प्रवाहित होते हैं।''**

रॉस (Ross)–**''चिंतन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पक्ष या मनोवैज्ञानिक वस्तुओं से सम्बन्धित मानसिक क्रिया है।''**

गैरट (Garrett)–**''चिंतन एक प्रकार का अव्यक्त एवं अदृश्य व्यवहार होता है। जिसमें सामान्य रूप से प्रतीकों (बिम्बों, विचारों, प्रत्ययो) का प्रयोग होता है।''**

मोहसिन (Mohsin)– **''चिंतन समस्या–समाधान सम्बन्धी अव्यक्त व्यवहार है।''**

गिल्मर– **''चिंतन एक ऐसी समस्या समाधानात्मक प्रक्रिया है। जिसमें हम प्रत्यक्ष वास्तविक क्रियाओं के स्थान पर विचारों और प्रतीकों का उपयोग करते हैं।''**

चिंतन की उपरोक्त सभी परिभाषाओं के अनुसार चिंतन को एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है। जिसमें बाहर कि घटनाओं का आन्तरिक या मानसिक चित्रण किया जाता है। विशेष बालक उस वस्तु या घटना के बारे में भी सोच सकते है। जिसे हमारे द्वारा कभी देखा तथा अनुभव न किया गया हो। विशेष बालक किसी ऐसी काल्पनिक घटना के बारे मे भी सोच सकता है जो उसके जीवन मे कभी घटित ही नही हुई हो। चिंतन को एक ठोस क्रियात्मक आधार प्रदान किया जाता है, उसे केवल मानसिक क्रियाओं तथा अनुभूतियां न मानकर एक ऐसी प्रक्रिया मानते है। जो बालकों को विभिन्न प्रकार के समस्या समाधान से संबन्धित व्यवहार की ओर दिशा प्रदान करता है। चिंतन से तात्पर्य हमारी उन व्यवहार क्रियाओं के प्रारूप से है। जिसमें हम वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं का समस्या विशेष के समाधान हेतु अपने–अपने ढंग से मानसिक चित्रण या योजना निर्माण (चिन्ह, प्रतीक आदि के रूप में) करते रहते हैं।

5.4.1 चिंतन की प्रकृति

1. चिंतन एक संज्ञानात्मक एवं मानसिक व्यवहार क्रिया है। दिवास्वप्न या मिथ्या कल्पना आदि चिंतन की परिधि में नहीं आती।
2. चिंतन किसी विशेष उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति की ओर रहता है। चिंतन समस्या के समाधान सम्बन्धी व्यवहार होता है, विशेष बालक के सामने समस्या उत्पन्न होने पर 'चिंतन' उत्पन्न होता हैं और 'चिंतन' के द्वारा ही समस्या समाधान में सहायता भी मिलती है।
3. चिंतन में मानसिक प्रक्रिया होती है। जैसे–कार्यालय से घर जाकर चाय बनानी है तो पहले मानसिक रूप से चाय बनाने की पूरी प्रक्रिया को मार्ग में ही सोच लेगा, तो यह मानसिक क्रिया होगी। जिसे घर जाकर क्रियान्वित करेगा।

4. चिंतन, जैसा कि गैरट ने कहा है, एक प्रतीकात्मक क्रिया है। चिंतन में समस्या का मानसिक समाधान सोचा जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि चिंतन एक ऐसी आन्तरिक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जिसका कोई निश्चित उद्देश्य होता है। इसमें किसी समस्या का समाधान अवश्य होता है।

5.4.2 चिंतन के साधन

चिंतन की प्रक्रिया से जुड़े हुए साधनों को निम्न रूप से समझा जा सकता है–

1. मानसिक प्रतिमा– जब विशेष बालक किसी समस्या का समाधान करता है तो पुराने अनुभव प्रतिमा के रूप में आकर समस्या समाधान में सहायक होते है या बाधा उत्पन्न करते है। ये अनुभव पूर्व में घटित घटनाओं, मानसिक चित्रों, दृश्यों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित व्यक्तिगत अनुभवों के रूप में सम्मिलित होते है। जिन्हें वास्तविक रूप में देखा, सुना या अनुभव किया हो।

2. संप्रत्यय– संप्रत्यय भी 'चिंतन' का एक महत्वूपर्ण साधन है। 'संप्रत्यय' ऐसे प्रतीक को कहा जाता है, जिसमे वस्तुओं की सामान्य विशेषताओं का पता चलता है। जब विशेष बालक एक परिचित या अपरिचित वस्तु या घटना को देखता या महसूस करता है। तब वस्तु या घटना की कुछ विशेषताओं को अपने पूर्व की अनुभूतियों के आधार पर दूसरी वस्तुओं और घटनाओं की विशेषताओं से मिलान करके देखता है। यदि मिलान हो जाता है तो विशेष बालक उसे एक संप्रत्यय मान लेता है।

5.4.3 चिंतन शक्तियों का विकास

चितंन सीखने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। विशेष बालक के सीखने की योग्यता, उसके चिंतन की योग्यता पर आधारित होती है। विशेष बालकों में चिंतन शक्तियों के विकास से सम्बन्धित साधनों का उल्लेख निम्नलिखित है–

1. ज्ञान एवं अनुभूतियों की पर्याप्तता – विशेष बालको में चिंतन की प्रवृति का विकास करने के लिए उन्हें विषय से संबन्धित ज्ञान देना आवश्यक होता है। विशेष बालकों में विभिन्न प्रकार के अनुभवों का संचयन भी विशेष बालक की चिंतन प्रक्रिया को बढाता है।

2. विशेष बालकों को कक्षा में चिंतन के लिए उचित अवसर व समय प्रदान करना चाहिए जिससे वह स्वयं को व्यक्त कर सके।

3. अभिप्रेरणा तथा लक्ष्य की निश्चितता– चिंतन उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। विशेष बालकों को एक सुनिश्चित लक्ष्य प्रदान करके चिंतन को बढ़ावा दिया जा सकता है। प्रत्येक चिंतन के पीछे कोई न कोई लक्ष्य होना आवश्यक है। इससे कारण चिंतन शक्ति संगठित करने में सहायता मिलती है, और विशेष बालक को चिंतन में रूचि उत्पन्न होती है व चिंतन प्रक्रिया में कुशलता भी आती है।

4. पर्याप्त लचीलापन–चिंतन के क्षेत्र के संकीर्ण व सीमित हो जाने से 'चिंतन प्रक्रिया' में बाधा पड़ती है। अतः विशेष बालक के विचारों को स्वतंत्रता प्रदान करना चाहिए जिससे वह नवीन सोच तथा नई संभावनाओं की ओर बढ़ सके।

5. इन्क्यूबेशन– चिंतन प्रक्रिया में प्रगति के लिए इनक्यूबेशन की क्रिया अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है। जब विशेष बालक बहुत कोशिश करने पर भी किसी समस्या के समाधान में सफल नहीं होते तो उसे कुछ समय के लिए वह किसी अन्य क्रिया में लग जाता है। इस दौरान उसका अवचेतन मन उस समस्या पर विचार करता रहता है। जिस प्रकार इन्क्यूबेशन से अण्डे सेने का काम होता है, उसी प्रकार अवचेतन मन में प्रयासों द्वारा समस्याओं का समाधान निकल आता है।

6. बुद्धि एवं विवेक – उचित चिंतन की योग्यता बुद्धि में निहित है। उचित चिंतन के लिए बुद्धि का उचित विकास अत्यन्त आवश्यक है। 'विवेक' चिंतन प्रक्रिया को जारी करने का प्रभावशाली साधन है। यह समस्या समाधान के लिए अंतःर्दृष्टि प्रदान करता है। उचित चिंतन का विकास करने हेतु हमें सदैव बुद्धि और विवेक को इस कार्य हेतु एक आवश्यक साधन के रूप में अपनाना चाहिए।

7. संप्रत्ययों तथा भाषा का उचित विकास– संप्रत्यय, चिन्ह, भाषा आदि चिंतन के महत्वपूर्ण साधन हैं। उनके उचित विकास के बिना 'चिंतन' प्रभावशाली नहीं हो सकता। इन साधनों के विकास से चिंतन–प्रक्रिया को प्रेरणा मिलती है। विशेष बालक के भाषा विकास में उचित संप्रत्ययों तथा भाषात्मक योग्यताओं के निर्माण की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा इन्हें चिंतन हेतु समुचित उपयोग में लाने का अभ्यास भी करवाना चाहिए।

8. उचित तर्क प्रक्रिया– तर्क प्रक्रिया का भी चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 'तर्क' शुद्ध चिंतन का विज्ञान है। विशेष बालक को सदैव तर्कपूर्ण चिंतन करने का अभ्यास करवाना चाहिए।

उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान देने के अतिरिक्त विशेष बालक को ऐसे तत्वों से बचाने का भी प्रयास करना चाहिए जो स्वस्थ चिंतन मे बाधा डालते हैं। उनमें विशेष बालक का स्वास्थ्य, तनाव, भावात्मक उत्तेजना, भ्रम तथा अन्धविश्वास आदि हैं। जिनके प्रभाव में विशेष बालक उचित चिंतन नही कर पाता है। जिससे चिंतन की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। सही चिंतन के लिए इन सभी बाधक तत्वों पर नियंत्रण रखना अत्यन्त आवश्यक है। तभी विशेष बालक को हम उचित चिंतन की ओर प्रेरित कर सकते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान मे अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त मे दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 7. चिंतन एक .... एवं मानसिक व्यवहार क्रिया है।

प्रश्न 8. .... चिंतन प्रक्रिया को जारी करने का प्रभावशाली साधन है।

प्रश्न 9. चिंतन एक .... क्रिया है। चिंतन में .... का मानसिक समाधान सोचा जाता है।

5.5 समस्या समाधान– अर्थ एवं प्रकृति

समस्या समाधान एक प्रमुख संज्ञात्मक व्यवहार है। जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट हो रहा है कि विशेष बालक को लक्ष्य प्राप्ति के लिए समस्या का समाधान करना होता है। जो उसके लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग मे आती है। विशेष बालकों को अपनी कई आवश्यकताएँ पूरी करनी होती है। इन आवश्यकताओं के आधार पर कई लक्ष्य भी निर्धारित किये जाते है। उन लक्ष्यों की पूर्ति के लिये बालक कई बाधाओं/कठिनाई को अनुभव करता है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विशेष बालक को कई समस्याओ का सामना करना होता है। इस उद्देश्य के लिये वह समस्या का चिंतन करता है। और उसे हल करने के तरीके भी ढूँढने का प्रयास करता है। समस्या समाधान की प्रकृति तथा अर्थ को निम्नलिखित परिभाषाओ से स्पष्ट किया जा सकता है–

वुडवर्थ एण्ड मार्क्विस– **''समस्या समाधान सम्बंधी व्यवहार तभी घटित होता है। जब किसी ऐसी नई या कठिन स्थिति का सामना हो, जिसमे लगभग इसी प्रकार की स्थिति से प्राप्त पूर्व अनुभूतियों पर आधारित धारणाओं को पुराने तरीको में लागू करने से समस्या का समाधान न हो सके।''**

स्किनर– **''समस्या समाधान एक ऐसी प्रक्रिया है जो उन कठिनाइयों को दूर करती है। जो लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बनती प्रतीत होती है। यह बाधाओं के बावजूद समायोजन कर सकने की प्रक्रिया है।''**

उपरोक्त परिभाषाओ के आधार पर समस्या समाधान के अर्थ एवं प्रकृति से सम्बन्धित निम्न बातें उपयोगी है–

1. विशेष बालक अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समस्या–समाधान व्यवहार की ओर तभी अग्रसर होता है। जब वह उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उद्धत होगा।

2. विशेष बालक द्वारा समस्या समाधान के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों तथा बाधाओं को दूर करने हेतु समस्या के लिए गहन चिंतन करना होता है। तथा विभिन्न समाधानों मे से उचित समाधान का भी चयन करना होता है।

3. समस्या समाधान व्यवहार में विशेष बालक के द्वारा उपलब्ध संसाधनों व समयानुसार उचित निर्णय लेना होता है।

4. विशेष बालक को समस्या समाधान में आने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए सूझ–बूझ से काम लेना होता है।

5. समस्या समाधान व्यवहार विशेष बालक के सर्वांगीण विकास में उचित सहायता करता है। यह उसे समायोजन की कला भी सिखाता है। जिससे विशेष बालक अधिक विवेकशील बनता है।

इस प्रकार समस्या समाधान से तात्पर्य विशेष बालक के द्वारा अपनाई गई उन प्रयोजनपूर्ण क्रियाओ से है। जो लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओ को पराजित करने के लिए की जाती है। इन सभी बाधाओं को पार करके विशेष बालक निश्चित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान के तीन महत्वपूर्ण पहलू बताए हैं–

1. **मौलिक अवस्था**

2. **लक्ष्य अवस्था**

3. **नियम**

1. **मौलिक अवस्था**– से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या समस्या के सामने आने पर प्रारंभ में उत्पन्न होती है।

2. **लक्ष्य अवस्था**– से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या समाधान के बाद या लक्ष्य पर पहुंचने पर उत्पन्न होती है।

3. **नियम**– नियम उन सभी प्रक्रियाओं से संबंधित होते हैं जिससे विशेष बालक समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अपनाता है।

5.5.1 समस्या समाधान की विधियाँ

समस्या समाधान की कई विधियाँ है। जिन्हें विशेष बालक समस्या में निहित कठिनाई को हल करने के लिए अपनाता है। सरल समस्याओं का समाधान पूर्व व्यवहार के द्वारा कर सकते है। अधिक कठिन समस्याओ के लिये प्रयास एवं भूल विधि को अपनाया जाता है। समस्याओ के समाधान में प्रयोग वैज्ञानिक विधि में निम्न चरणों का अनुसरण किया जाता है–

1. समस्या समाधान के प्रति चेतना या जागरूकता समस्या समाधान की दिशा में पहला कदम होता है। विशेष बालक जब लक्ष्य प्राप्ति मे कठिनाई का अनुभव करेगा तब ही उसे दूर करने का प्रयास भी करेगा। बालक को कठिनाई के संदर्भ में पूरी तरह सचेत एवं जागरूक होना चाहिये।

2. समस्या को समझना समाधान करने के लिए अति आवश्यक होता है। जब तक ठीक ढंग से यह मालूम नही होगा कि समस्या वास्तव में क्या है। इसलिये विशेष बालक के द्वारा समस्या को गहराई से समझने के सभी संभव प्रयास किये जाने चाहिये।

3. विशेष बालक के द्वारा समस्या के समाधान हेतु सभी उपयुक्त सूचनाएँ तथा आंकड़े एकत्रित करने चाहिये। इस कार्य हेतु वह अपने शिक्षकों की मदद ले सकता है। इस तरह समस्या समाधान की दिशा में विशेष बालक विभिन्न स्त्रोत एवं साधन से भी जरूरी सूचना, सहायता, परामर्श, तथा सुझाव भी प्राप्त कर सकता है।

4. समस्या के बारे में संभावित समाधानों की सूची तैयार करना, जिन्हें परिकल्पनाएँ कहा जाता है। कोई भी परिकल्पना समस्या समाधान के लिये किसी हल का प्रतिनिधित्व करती है। सम्भावित समाधानों मे से उचित परिकल्पना या समाधान का चयन करना इस बात का पूर्ण निश्चय किया जाना चाहिये कि किस समाधान से समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

चयनित समाधान उपयुक्त है या नही जांच करने के पश्चात अगर इसमें सफलता मिलती है तो फिर उस समाधान को आदर्श समाधान मानकर आगे की समस्याओ के समाधान में उसका प्रयोग भी किया जाता है।

5.5.2 समस्या समाधान संबंधी व्यूह रचनाएँ

समस्याओं का समाधान, समस्या की प्रकृति, समस्या हल करने हेतु प्राप्त संसाधन, सामग्री तथा स्त्रोत एवं समस्या हल करने वाले विशेष बालक की योग्यता, क्षमता तथा समस्या समाधान सम्बंधी एवं अभ्यास आदि पर निर्भर करता है। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण व्यूह रचनाओं तथा युक्तियों का वर्णन नीचे किया जा रहा है–

- **आकस्मिक अन्वेषण विधि**– इस विधि में विशेष बालक समस्या के समाधान के लिए किसी निश्चित क्रमानुसार समस्या का समाधान नहीं करता बल्कि बिना किसी क्रमानुसार समस्या का समाधान कर सकता है। वह किसी वैज्ञानिक पद्धति का पालन नहीं करता बल्कि स्वयं से ही अपनी सुविधा अनुसार किसी भी समस्या का समाधान करता है।

- **एल्गोरिदम**– इस विधि में विशेष बालक समस्या का समाधान तलाश करने के लिए सभी संभावित समाधान को एक–एक कर सकता रहता है। जब तक उसे सही समाधान ना मिल जाए इसमें समस्या समाधान करने में समय तो अधिक लगता है। परंतु समस्या का समाधान निश्चित प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में समस्या समाधान के लिए परिकल्पना पर अधिक समय दिया जाता है। जिससे समस्या का समाधान जरूर मिलता है।

- **स्वतः शोध अन्वेषण**– समस्या समाधान की इस विधि में विशेष बालक समस्या का समाधान करने के लिए सभी विकल्पों को नहीं ढूंढता बल्कि सिर्फ उन्हीं विकल्पों का चयन करके समस्या समाधान की कोशिश करता है, जो उसे संगत प्रतीत होते हैं इसे 'RULE OF THUMB' भी कहा जाता है। बालक अपने पूर्व अनुभव के आधार पर बहुत कम समय में समाधान करने की कोशिश करता है

- **यांत्रिक समाधान**– सीखने की प्रक्रिया की ही भांति प्रयत्न और त्रुटि के माध्यम से विशेष बालक किसी भी समस्या का समाधान आसानी से कर सकता है। समस्या के सामने आने पर बालक उसके समाधान के लिए बहुत बार प्रयत्न करता रहता है। वह कई प्रयासों में त्रुटि भी करता है। धीरे–धीरे वह समस्या का समाधान प्राप्त कर लेता है।

समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हो सकते है। विभिन्न मनोवज्ञानिको के अनुसार समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारको को हम मुख्य रूप से दो वर्गो में विभाजित कर सकते है। प्रथम वर्ग में समस्या विशेष की प्रकृति से संबन्धित तथा दूसरे वर्ग में समाधानकर्ता की प्रकृति तथा उसके समस्या समाधान सम्बंधी व्यवहार से होता है।

5.5.3 समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारक

समस्या विशेष की प्रकृति से सम्बंधित कारको मे प्रमुख हैं –

(i) समस्या का सरल या जटिल होना।

(ii) समस्या का आकार में छोटा या बड़ा होना।

(iii) समस्या का उपयुक्त रूप से परिभाषित होना या ना होना।

(iv) पूर्व में हल की गई समस्याओं से उसकी समानता होना या ना होना।

(v) समस्या के हल में वर्तमान उपलब्ध संसाधन।

समाधानकर्ता से सम्बंधित कारक—इस वर्ग में ऐसे कारक आते है। जिनका सम्बन्ध समाधानकर्ता की मानसिक क्षमता, अधिगम एवं प्रशिक्षण स्तर तथा उसके समस्या समाधान व्यवहार से होता है। इसी प्रकार कुछ प्रमुख कारक जैसे—विशेष बालक का बौद्धिक तथा मानसिक स्तर समस्या समाधान को सीधे प्रभावित करता है, क्योंकि समस्या समाधान के लिए बालक को चिंतन करना पड़ता है। यदि बालक का मानसिक स्तर समस्या को समझने और उसके लिए समाधान ढूंढने के लिए उपयुक्त है। तो वह बालक समस्या के लिए उचित समाधान को आसानी से ढूंढ सकता है।

(i) विशेष बालक के जीवन में घटित हुई घटनाओं के अंतर्गत समस्या से संबंधित बालक को कितने पूर्व अनुभव है। यह भी विशेष बालक को समस्या के समाधान के लिए विकल्पों के चयन में मदद करता है। इसके साथ—साथ विशेष बालक के प्रशिक्षण का स्तर क्या है। वह भी विशेष बालक की समस्या समाधान कौशलों को प्रभावित करता है।

(ii) सामान्य तथा विशेष सभी बालकों के संदर्भ में समस्या समाधान में रुचि लेना एक मौलिक तत्व होता है। यदि विशेष बालक को समस्या के प्रति रुचि नहीं है तो वह कभी भी किसी भी समस्या के समाधान के लिए चिंतन नहीं करेगा अर्थात् समस्या के समाधान के लिए विशेष बालक में समस्या के प्रति रुचि का होना आवश्यक है। जिससे वह समस्या के समाधान के लिए जिज्ञासु होगा और वह लगातार समस्या के समाधान के लिए विकल्पों के बारे में चिंतन भी करेगा। विशेष बालक की लक्ष्य विशेष के प्रति आवश्यकता भी महत्वपूर्ण तथ्य है। यदि बालक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उद्धत है तो वह समस्या समाधान के लिए भी प्रेरित होगा। यदि विशेष बालक समस्या का समाधान नहीं करना चाहता तो वह विकल्पों के बारे में चिंता नहीं करेगा।

(iii) विशेष बालकों को किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए समस्या को समझना सबसे पहले आवश्यक होता है। समस्या को समझने के लिए जरूरी हो जाता है कि वह उस समय की सारी परिस्थितियों का अध्ययन करे कि यह लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में समस्या क्यों आ रही है। और इसके क्या—क्या कारण हैं तथा किस प्रकार इस समस्या के हल को ढूंढ सकते हैं। यह सभी तथ्य आवश्यक है। दूसरे शब्दों में यदि समस्या के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं होगी तो किसी भी समस्या का समाधान संभव नहीं है।

(iv) मानसिक विन्यास के अंतर्गत समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों में कार्यात्मक अटलता अर्थात् सभी चीजों का कार्य निश्चित होता है। जैसे—कैची के द्वारा काटना आदि। इसके अलावा बालक की मानसिक विचारधारा भी समस्या समाधान की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

समस्या का समाधान करने के लिए समस्या के बारे में चिंतन करना। उससे संबंधित परिकल्पनाओं अर्थात् उसके संभावित उत्तरों का निर्माण करना तथा उपयुक्त उत्तर का चयन करना आदि सभी संप्रत्यय के लिए, विशेष बालक को सामान्य की अपेक्षा अधिक समय की आवश्यकता होती है। जैसे—विशेष बालकों में बौद्धिक अक्षम बालकों को समस्या को समझने में अन्य बालकों की अपेक्षा बहुत अधिक समय लग सकता है, इसके साथ—साथ यदि दृष्टि विकलांग बालक को समस्या स्पर्शी रूप में प्राप्त नहीं होगी तो वह इस समस्या को समझ नहीं सकेंगे और श्रवण बाधित बालक भी समस्या को चित्रित रूप में देख कर ही समझ सकेंगे और समस्या के लिए उपलब्ध संसाधनों को पहचानना तथा उनका चयन करना तथा परिकल्पनाओं का निर्माण करना—यह सभी संप्रत्यय विशेष बालकों के संदर्भ में अधिक कठिन होते हैं। जिसके लिए उन्हें सामान्य की अपेक्षा अधिक समय की आवश्यकता होती है।

समस्या समाधान समाधानकर्ता की अपनी मानसिक और शारीरिक दशा के अनुसार समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास करता है और उसकी संकल्प शक्ति तथा आत्मविश्वास आदि सभी बातें समस्या के समाधान में उचित सहायता करते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 10. .... से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारम्भ में उत्पन्न होती है।

प्रश्न 11. विशेष बालक को समस्या समाधान में आने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए .... से काम लेना होता है।

प्रश्न 12. मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान के ....महत्वपूर्ण पहलू बताए हैं।

5.6 निष्कर्ष

प्रत्यक्षीकरण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। विशेष बालक मे उद्दीपक के प्रति ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता ही प्रत्यक्षीकरण का कारण होती है। विशेष बालकों के शैक्षणिक विकास की दृष्टि से भ्रमण, पिकनिक, पर्यटन आदि उपयोगी हैं, जो बालक को प्रत्यक्षीकरण के लिए सहायता प्रदान करते है। विशेष शिक्षण प्रशिक्षण सामग्री जैसे—दृष्टि अक्षम बालक के लिए ब्रेल– लिपि व स्पर्शीय शिक्षण अधिगम सामग्री तथा श्रवण अक्षम बालक के लिए सांकेतिक भाषा व दृष्टीय शिक्षण अधिगम सामग्री, बौद्धिक अक्षम बालक के लिए विशेष अनुदेशन व शिक्षण अधिगम सामग्री जो विशेष बालक की क्षमता के अनुसार होती है। यह विशेष बालक के शिक्षण अधिगम को सरल एवं अनुकूल बनाती है।

5.7 इकाई सारांश

- अपने अनुभवों को संचित रखने और उनको प्राप्त करने के कुछ समय बाद चेतना के क्षेत्र में पुनः वापस लाने की शक्ति को स्मृति कहते हैं।
- जब कोई व्यक्ति स्मृति में संचित सूचनाओं को पुनः प्राप्त करता है तो इस अवस्था को स्मरण/पुनरुद्धार स्मृति कहते हैं।
- भंडारण उस प्रक्रिया को कहते हैं। जिसके द्वारा सूचना को कुछ अधिक समय तक धारण किया जा सकता है।
- कूट संकेतन से तात्पर्य स्मृति में पहली बार आई सूचना से होता है।
- जो सूचनाएं हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण होती है। वह हमारे द्वितीय स्मृति भंडारण तंत्र में प्रवेश करती हैं। इसीलिए इसे हम अल्पकालिक स्मृति भी कहते हैं।

- दीर्घकालिक स्मृति क्षमता एक ऐसी स्मृति की क्षमता है जहां पर सूचनाओं का स्थाई भंडारण होता है।
- **स्मृति मापन का सूत्र**–स्मृति में धारण की गयी विषय सामग्री की मात्रा = याद की गयी विषय सामग्री की मात्रा – विस्मृति सामग्री की मात्रा
- जब विशेष बालक पूर्व के सीखे गए अनुभवों को किसी कारणवश भूल जाता है तो इसे विस्मरण कहा जाता है।
- चिंतन से तात्पर्य हमारी उन व्यवहार क्रियाओं के प्रारूप से है जिसमें हम वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं का समस्या विशेष के समाधान हेतु अपने–अपने ढंग से मानसिक चित्रण या योजना निर्माण (चिन्ह, प्रतीक आदि के रूप में) करते रहते हैं।
- चिंतन प्रक्रिया में प्रगति के लिए इनक्यूबेशन की क्रिया अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है।
- समस्या समाधान एक प्रमुख संज्ञात्मक व्यवहार है।
- मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारंभ में उत्पन्न होती है।
- लक्ष्य अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या समाधान के बाद या लक्ष्य पर पहुंचने पर उत्पन्न होती है।
- नियम उन सभी प्रक्रियाओं से संबंधित होते हैं जिससे विशेष बालक समस्या की मौलिक अवस्था से लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अपनाता है।
- समस्या समाधान के प्रति चेतना या जागरूकता समस्या समाधान की दिशा में पहला कदम होता है।
- आकस्मिक अन्वेषण विधि में बालक किसी वैज्ञानिक पद्धति का पालन नहीं करता बल्कि स्वयं से ही अपनी सुविधानुसार किसी भी समस्या का समाधान करता है।

5.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1. धारण करने तथा पुनः प्रस्तुत करने की क्षमता को स्मृति कहते है।
2. भंडारण प्रक्रिया में सूचना को कुछ अधिक समय तक धारण किया जा सकता है।
3. संवेदी स्मृति को तत्कालिक स्मृति भी कहा जाता है
4. अल्पकालिक स्मृति को लघु कालिक, सक्रिय स्मृति भी कहते है।
5. स्मृति में धारण की गयी विषय सामग्री की मात्रा = याद की गयी विषय सामग्री की मात्रा – विस्मृति सामग्री की मात्रा
6. विशेष बालकों को विषय वस्तु सिखाते समय क्रिया विश्लेषण करना आवश्यक होता है।
7. चिंतन एक संज्ञानात्मक एवं मानसिक व्यवहार क्रिया है।
8. 'विवेक' चिंतन प्रक्रिया को जारी करने का प्रभावशाली साधन है।

9. चिंतन एक प्रतीकात्मक क्रिया है। चिंतन में समस्या का मानसिक समाधान सोचा जाता है।

10. मौलिक अवस्था से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो समस्या के सामने आने पर प्रारंभ में उत्पन्न होती है।

11. विशेष बालक को समस्या समाधान में आने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए सूझ–बूझ से काम लेना होता है।

12. मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान के तीन महत्वपूर्ण पहलू बताए हैं।

5.9 अपनी प्रगति जाँचे

1. समस्या समाधान के प्रति .... समस्या समाधान की दिशा में पहला कदम होता है?

2. ''कूट संकेतन (Incoding)'' से आप क्या समझते हैं?

3. चिंतन प्रक्रिया में प्रगति के लिए .... की क्रिया अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है।

4. संवेदी स्मृति क्या हैं?

5. मनोवैज्ञानिकों ने समस्या समाधान के .... पहलू बताए हैं।

6. चिंतन एक ....प्रक्रिया है?

5.10 अधिन्यास/क्रियाकलाप

1. स्मृति का स्वरूप क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?

2. स्मृति के विभिन्न प्रकारों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?

3. समस्या समाधान को प्रभावित करने वाले कारकों का क्या महत्व है ?

4. समस्या समाधान की विधियों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?

5.11 विचार विमर्श के बिन्दु/स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

5.11.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....
....
....

5.11.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियो के साथ समस्या समाधान प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली प्रविधियों पर चर्चा करेंगे।

5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Adams, J.A., (1976), Learning and Memory: An Introduction, Homewood, Illinois: Dorsey Press.
- Bartlett, F., (1958), Thinking, New York: Basic Books.
- Bhatia, H.R., (1968), Elements of Educational Psychology (3rd Indian reprint) Calcutta: Orient Longman.
- Boring, E.C., Langfield, H.S., and Weld, H.P., (Ed.), (1961), Foundation of Psychology, New York: John Wiley.
- Bransford, J.D., and Stein, B.S., (1984), The Ideal Problem Solver: A Guide for Improving Thinking, Learning and Creativity, New York: Freeman.
- Broune, L.E., Dominowski, R.L., and Loftus, E.F., (1979), Cognitive Processes, Englewood Cliffs, N.J., Prentice-Hall.
- Burner, J.S., Goodnow, J.J., and Austina, G.A., (1956), A Study of Thinking, New York: John Wiley.
- Campione, J. C., Brown, A. L., & Ferrara, R. (1982).Mental retardation and intelligence. In R. J. Sternberg (Ed.), Handbook of human intelligence (pp.392–490).New York: Cambridge University Press.
- Cermak, L.S., (1972), Human Memory-Research and Theory, New York: Ronald Press.
- Davis, G.A., (1973), Psychology of Problem Solving, New York: Basic Books.
- Drever, James, (1952), A Dictionary of Psychology, Middlesex, Penguin Books.
- Ebbinghaus, H., (1964), On Memory, New York: Dover.
- Fantino, E., and Reynolds, G., (1975), Introduction to Contemporary Psychology, San Francisco: W.H. Freeman Co..
- Gardner, H. (1993). Multiple intelligences: The theory in practice.New York: BasicBooks.
- Herr, E. L., Moore, G. D., & Hasen, J. S. (1965).Creativity, intelligence, and values:Astudy of relationships. Exceptional Children, 32, 114–115.
- Hunter, Ian M.R., (1964), Memory, London: Penguin Books.
- Klatsky, R.L., (1976), Human Memory, San Francisco: Freeman.

- Levin, M.J., (1978), Psychology: A Biographical Approach, New York: McGraw-Hill.
- Mangal, S.K. (2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Learning Private Limited.
- Mangal, S.K., (1993), Advanced Educational Psychology, New Delhi: Prentice-Hall of India.
- Mohsin, S.M., (1967), Elementary Psychology, Calcutta: Asia Publishing House.
- Munn, J.L., (1967), An Introduction to Psychology, New Delhi: Oxford & I.B.H.
- Munn, N.L., (1967), An Introduction to Psychology (2nd ed.), Delhi: Oxford & IBH.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Roediger, H.L., Rushton, J.P. et al., (1987), Psychology (2nd ed.), Boston: Little Brown Company.
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.

इकाई–6

अभिप्रेरणा (Motivation) का अर्थ, प्रकृति एवं सिद्धान्त

संरचना–

6.1 परिचय

6.2 उद्देश्य

6.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा

6.3.1 अभिप्रेरणा के स्त्रोत

6.3.2 प्रेरकों का वर्गीकरण

6.4 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त

6.5 अभिप्रेरणा प्रदान करने की विधियां

6.5.1 अभिप्रेरणा का महत्व

6.6 निष्कर्ष

6.7 इकाई सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 अपनी प्रगति जाँचे

6.10 अधिन्यास / क्रियाकलाप

6.11 चर्चा के बिन्दु / स्पष्टीकरण

6.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 परिचय

विशेष बालक प्रारंभिक अवस्था से ही अधिगम की प्रक्रिया में संलग्न रहता है। विशेष बालक अपनी दैनिक तथा अन्य शारीरिक आवश्यकताओं के लिए, क्रियाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को सीखता जाता है। अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो विशेष बालक को किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है। प्रेरणा में प्रेरक का अधिक महत्व होता है। जिसके कारण विशेष बालक किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित होता है। कभी–कभी विशेष बालक को अंदर से किसी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरणा होती है, तथा कभी–कभी विशेष बालक को कक्षा में शिक्षक के द्वारा किसी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी/अधिगमकर्त्ता :–

- ➢ अभिप्रेरणा (Motivation) का अर्थ एवं परिभाषा समझ सकेंगे।
- ➢ अभिप्रेरणा के स्त्रोत के बारे में जान सकेंगे।
- ➢ अभिप्रेरकों के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।
- ➢ अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- ➢ अभिप्रेरणा प्रदान करने की विधियां।
- ➢ विशेष शिक्षा में अभिप्रेरणा के महत्व को समझ सकेंगे।

6.3 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं प्रकृति

व्यवहारों को सीखने की प्रक्रिया मुख्यतः विशेष बालक की आवश्यकताओं से संबंधित होती है। जैसे– विशेष बालक को प्यास लगने पर वह पानी ढूंढता है तथा उसे पाने के लिए प्रयास भी करता है। विशेष बालक की आवश्यकताओं की तीव्रता ही बालक को कार्य के लिए प्रेरित करती है। विशेष बालक किसी आवश्यकता विशेष की पूर्ति के लिए कार्य करता है। आवश्यकता की तीव्रता ही विशेष बालक को कार्य के लिए प्रेरित करती है। विशेष बालक की आवश्यकता में जितनी तीव्रता होगी वह उतनी तेजी से उस कार्य को करेगा, विशेष बालक उतना ज्यादा अभिप्रेरित होकर उस कार्य को करेगा जैसे–प्यास लगने पर वह पानी ढूंढता है। इस प्राथमिक आवश्यकता की तीव्रता अधिक है। अतः विशेष बालक प्यास लगने पर पानी को पाने के लिए प्रयास भी करता है। परंतु विशेष बालक का व्यवहार किसी उद्देश्य के अनुरूप ही होता हैं। बिना किसी प्रयोजन या लक्ष्य के कोई भी बालक, किसी भी प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित नहीं करता।

क्रेच एवं क्रचफील्ड (Krech & Krachfield) ने भी कहा है कि ''प्रेरणा का प्रश्न 'क्यों' का प्रश्न है।'' आवश्यकतायें (Needs), चालक (Driver), उद्दीपन (Incentive) तथा प्रेरक (Motive) अभिप्रेरणा के प्रमुख स्रोत होते हैं। हिलगार्ड (Hilgard) ने लिखा है **''आवश्यकता चालक को जन्म देती है। चालक बढ़े हुए तनाव की दशा है, जो कार्य और प्रारंभिक व्यवहार की ओर अग्रसर करता है। उद्दीपन बाह्य वातावरण की कोई वस्तु होती है, जो आवश्यकता को संतुष्ट करती है और इस प्रकार क्रिया द्वारा चालक को कम करती है।''** संक्षेप में अभिप्रेरणा उपयुक्त चार पदों–**आवश्यकता, चालक, उद्दीपन, तथा प्रेरक** से मिलकर बनती है।

<u>अभिप्रेरणा शब्द की उत्पत्ति मोटिवेशन **(Motivation),** लैटिन भाषा</u> के **Motum** शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है **Move**, **Motor** तथा **Motion** अर्थात् अभिप्रेरणा के शाब्दिक अर्थ के अनुसार किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते हैं। जो विशेष बालक के व्यवहार को प्रभावित करती है, या जिसके कारण विशेष बालक कोई प्रतिक्रिया या व्यवहार का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार की उत्तेजना आंतरिक व बाह्य दोनों प्रकार की हो सकती है। अतः प्रेरणा एक मानसिक प्रक्रिया है। प्रेरणा दोनों प्रकार की हो सकती है आंतरिक तथा बाह्य प्रेरणा। आंतरिक प्रेरणा जो विशेष बालक के अंतर्मन से उसे किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है, और बाह्य प्रेरणा वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों में छुपी होती है। जो विशेष बालक को विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने के लिए प्रेरित करती रहती है। कभी–कभी प्रेरणा दोनों प्रकार से भी कार्य करती है। विशेष बालक

के अंतर्मन से भी उस कार्य को करने की इच्छा होती है एवं बाहर से भी उसी प्रकार का वातावरण मिलता है। जिसके कारण विशेष बालक आंतरिक तथा बाह्य दोनों रूपों से प्रेरित होकर किसी कार्य को करता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा के लिए निम्नलिखित परिभाषाएं प्रस्तुत की है–

वुडवर्थ के अनुसार, **''निष्पत्ति (Achievement) = योग्यता** (Ability) **+ अभिप्रेरणा (Motivation) अर्थात् योग्यता+अभिप्रेरणा से निष्पत्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति की योग्यता, प्रेरणा पाकर ही विकसित होती है। इस प्रकार की योग्यता और प्रेरणा द्वारा ही निष्पत्ति (Achievement) संभव है।''**

लावेल के अनुसार, **''अभिप्रेरणा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक यांत्रिक प्रक्रिया है, जो किसी आवश्यकता की उपस्थिति में उत्पन्न होती है। यह ऐसी क्रिया की ओर गतिशील होती है जो उस आवश्यकता को संतुष्ट करेगी।''**

गुड के अनुसार, **''प्रेरणा कार्य को आरंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।''**

ब्लेयर, जोंस और सिम्पसन के अनुसार, **''प्रेरणा एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाले की आंतरिक शक्तियां या आवश्यकताएं उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है।''**

पी0 टी0 यंग के अनुसार, **''प्रेरणा व्यवहार को जागृत करने, क्रिया के विकास को संपोषित करने और क्रिया के तरीकों को नियमित करने की प्रक्रिया है।''**

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने के बाद हम कह सकते हैं–

1. **अभिप्रेरणा एक मानसिक या आंतरिक प्रक्रिया या अवस्था है।**
2. **अभिप्रेरणा प्रक्रिया किसी विशेष आवश्यकता के कारण उत्पन्न होती है।**
3. **अभिप्रेरणा प्रक्रिया किसी खास क्रिया को करने की दिशा की ओर ले जाती है।**
4. **यह क्रिया उद्देश्य की प्राप्ति तक जारी रहती है।**
5. **विशेष बालक को अभिप्रेरणा बाह्य वातावरण से भी मिलती है।**

मनोवैज्ञानिक अर्थ में अभिप्रेरणा का अर्थ आंतरिक प्रक्रिया से होता है। जिसके फलस्वरूप विशेष बालक किसी कार्य या व्यवहार के प्रति अभिप्रेरित होता है। जैसे– भूख/प्यास एक आंतरिक उत्तेजना है, जिसके लिए बालक खाना/पानी के लिए प्रेरित होता है। अतः भूख/प्यास को प्रेरणा कहा जा सकता है। जिसमें विशेष बालक भोजन/पानी पाने के लिए प्रयत्न करता है। आंतरिक उत्तेजना किसी विशेष बालक को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है, यह स्थिति अभिप्रेरणा कहलाती है।

6.3.1 अभिप्रेरणा के स्त्रोत

विशेष बालक की आवश्यकताएं ही उसके भीतर का तनाव होती है। जिसके कारण वह किसी क्रिया को करने के लिए अभिप्रेरित होता है। इसके प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित है–

1. **आवश्यकता** – भूख, प्यास जैसी प्राथमिक अनेक आवश्यकताएं विशेष बालक में तनाव उत्पन्न करती है। इन्हें विशेष बालक की जैविक आवश्यकताएं कहते हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष बालक क्रिया करता है। लक्ष्य की पूर्ति होने

पर पुनः सामान्य स्थिति में आ जाता है। आवश्यकताएं प्रेरणा की जननी होती है। इसी प्रकार अन्य मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता को एक ऐसी दशा कहा है, जिसकी कमी को पूरा करने के लिए ही मनुष्य क्रियाशील रहता है।

2. **चालक या अंतर्नोद** – चालक की उत्पत्ति आवश्यकता से होती है। उदाहरणार्थ–किसी भी विशेष बालक को 'भूख' लगने के कारण 'भोजन की आवश्यकता' होती है। यह 'भूख लगना' एक अंतर्नोद है। चालक विशेष बालक के व्यवहार को लक्ष्य की ओर ले जाते है। इस प्रकार चालक, की तीव्रता के अनुसार ही विशेष बालक कार्य करता हैं।

3. **उद्दीपन या प्रलोभन** – जो वस्तु विशेष बालक की आवश्यकता को संतुष्ट करती है उसे प्रलोभन/उद्दीपन कहते हैं उदाहरणार्थ– भोजन भूख के लिए प्रलोभन है। बोरिंग के अनुसार, **''प्रलोभन या उद्दीपन की परिभाषा उस वस्तु या क्रिया के रूप में की जाती है। जो व्यवहार को उद्दीपित एवं उत्साहित करती है।''**

प्रेरणा तीनों स्त्रोतों से मिलकर बनती है। हिलगार्ड ने प्रेरणा को आवश्यकता, अंतर्नोद एवं प्रलोभन द्वारा स्पष्ट किया है। हिलगार्ड के अनुसार, **''आवश्यकता चालक को जन्म देती है। चालक प्रबल तनाव की आंतरिक दशा है। जो व्यवहार को जन्म देती है। प्रलोभन बाह्य वातावरण की ऐसी वस्तु है। जो आवश्यकता को संतुष्ट करती है। और प्राणी तनावमुक्त हो जाता है।''** उपर्युक्त तीनों स्त्रोत परस्पर जुड़े रहते हैं।

6.3.2 प्रेरकों का वर्गीकरण

प्रेरक अभिप्रेरणा के मूल स्रोत होते है। प्रेरक के द्वारा ही विशेष बालक किसी कार्य को सीखने के प्रति आकर्षित होता है। इसमें आवश्यकता, चालक एवं प्रलोभन तीनों रहते हैं। ये विशेष बालक की मानसिक व शारीरिक दशा से संबन्धित होते है। जो उसे लक्ष्य की ओर ले जाती है। प्रेरक विशेष बालक मे जन्मजात एवं अर्जित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। प्रेरक विशेष बालक के व्यवहार को नियंत्रित एवं समायोजित भी करते हैं।

प्रेरकों का वर्गीकरण– प्रेरकों का सभी मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानित सामान्य वर्गीकरण निम्नलिखित है–

1. **जन्मजात या आंतरिक प्रेरक,**
2. **अर्जित प्रेरक**

1. **जन्मजात प्रेरक या आंतरिक प्रेरक**– जन्मजात प्रेरक जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। ये सभी विशेष बालकों में जन्मजात पाए जाते हैं। ये आंतरिक प्रेरक हैं। जिन्हे विशेष बालक को सीखने की आवश्यकता नहीं होती है। जन्मजात प्रेरकों का संबंध विशेष बालक की दैनिक आवश्यकताओं से होता है। इन प्रेरकों को जैविकीय प्रेरक, प्राथमिक प्रेरक, शारीरिक प्रेरक आदि नाम दिए गए। जन्मजात प्रेरक निम्न प्रकार के होते हैं–

   (i) **भूख व प्यास** – जीवित रहने के लिए विशेष बालक को भोजन की आवश्यकता होती है। भूख प्यास अतितीव्र प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। जिनसे प्रेरित होकर विशेष बालक अपनी प्राथमिक आवश्यकता के लिए अनुक्रिया करता है।

   (ii) **काम** – सभी व्यक्तियों में काम भावना भी पाई जाती है। किशोरों में काम के प्रेरक अधिक तीव्र होते हैं, तथा ये भावना उनके व्यवहार को भी प्रेरित करती हैं।

(iii) **निद्रा** – पूरे दिन काम करने के बाद विशेष बालक को विश्राम की अत्यधिक आवश्यकता होती है। नींद का प्रेरक विश्राम की प्रेरणा देता है।

(iv) **प्रेम** – प्रेम भी एक जन्मजात प्रेरक है। प्रेम की आवश्यकता का अनुभव के कारण विशेष बालक प्रेम प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करता है।

(v) **क्रोध** – क्रोध एक जन्मजात प्रेरक है। जो इच्छा या रुचिकर कार्य में बाधा आने के पर विशेष बालक प्रकट करता है। क्रोध से विशेष बालक तनावग्रस्त बनता है। इस प्रेरक को विशेष बालक आत्मरक्षा में भी प्रयोग करता है।

(vi) **मल–मूत्र त्याग** – मल मूत्र त्याग एक जन्मजात अभिप्रेरक है एवं तत्काल प्रतिक्रिया द्वारा वह इसे संतुष्ट भी करता है। अति गंभीर बौद्धिक अक्षम बालकों में इन आवश्यकताओं से संबंधित संज्ञान की कमी पाई जाती है। अतः बौद्धिक अक्षम बालकों को इस प्रेरक के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(vii) **संतुलन स्थैर्य** – सभी शारीरिक क्रियाओं में आंतरिक संतुलन को संतुलन स्थैर्य कहते हैं। बौद्धिक अक्षम बालक व प्रमष्तिकीय पक्षाघात से ग्रस्त बालकों को इस प्रेरक के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(viii) **ताप नियंत्रण** –विशेष बालक के शरीर में निश्चित तापक्रम बनाएं रखने मे हायपोथैलेमस शरीर का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार तापक्रम विशेष बालक के व्यवहार को प्रेरित करता है।

2. **अर्जित प्रेरक**–अर्जित प्रेरक विशेष बालक प्रायः वातावरण से सीखता हैं। इन प्रेरकों का निर्माण विशेष बालक के घर, विद्यालय तथा समाजिक वातावरण से होता है। इन प्रेरकों को द्वितीय प्रेरक, मनोवैज्ञानिक प्रेरक या सामाजिक प्रेरक जैसे नाम हैं। अर्जित प्रेरक दो प्रकार के होते हैं – **व्यक्तिगत प्रेरक तथा सामाजिक प्रेरक।**

(i) **व्यक्तिगत प्रेरक** – व्यक्तिगत प्रेरकों का संबंध विशेष बालक की प्रवृत्ति, इच्छा, आकांक्षा एवं रुचि से होता है। व्यक्तिगत प्रेरकों के भेद निम्नलिखित हैं–

1. **अभिवृत्ति** –विशेष बालक जिस वातावरण मे रहता है। उस वातावरण के लिए कुछ धारणा भी बनाता है। इन धारणाओ को ही अभिवृत्ति कहते हैं। विशेष बालक की वस्तु एवं व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल अभिवृत्ति हो सकती है।
2. **रुचि**– कोई भी विशेष बालक रूचिकर कार्य को अधिक करना चाहता है। उदाहरणार्थ–यदि किसी बालक की कला में रूचि है तो वह कला में ही अधिक समय देने का प्रयास करेगा। अरूचिपूर्ण कार्य विशेष बालक नही करना चाहते है।
3. **जीवन लक्ष्य** –विशेष बालक जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयास करता है। इस प्रकार जीवन लक्ष्य विशेष बालक के व्यवहार को प्रेरित करता है।
4. **आदत** –विशेष बालक को दैनिक कार्यों को करने के लिए भी अभिप्रेरित करने की आवश्यकता होती है, ताकि अभ्यास हो जाने पर उसकी आदत प्रेरक के रूप में कार्य करती है।
5. **मद्य या व्यसन** – मद्य–व्यसन एक शक्तिशाली प्रेरक होता है। लगातार व्यसन करने से, व्यक्ति के लिए यह शारीरिक आवश्यकता बन जाती है।

6. **अचेतन मन** –विशेष बालक की अचेतन मन की इच्छाएं भी प्रेरक के रूप में कार्य करती हैं। अचेतन मन विशेष बालक को भय अवसादयुक्त व तनावग्रस्त बनाते हैं। इस प्रकार अचेतन मन की इच्छाएँ व्यवहार को प्रेरित करती है।

(ii) **सामाजिक प्रेरक** – समाज के नियम, प्रथाएँ व परंपरा आदि भी विशेष बालक के व्यवहार को प्रेरित करते हैं इन्हें सामाजिक प्रेरक कहते हैं। सामाजिक प्रेरकों मे मुख्यतः सामूहिकता, सहयोग, आत्मसम्मान, प्रशंसा एवं निंदा, अनुकरण आदि प्रमुख है।

ऑटिज्म/स्वालीन बालकों में सामाजिकता से संबंधित कौशलों में कमी पाई जाती है। ऐसे बालकों में संप्रेषण गंभीर रूप से प्रभावित होता है। इन बालकों को सामाजिकता व संप्रेषण के कौशल आदि के लिए विशेष प्रकार के वातावरण में प्रशिक्षण दिया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 1. अभिप्रेरणा कार्य को आरंभ करने, जारी रखने और .... करने की प्रक्रिया है।

प्रश्न 2. प्रेरक के द्वारा ही बालक किसी कार्य को .... के प्रति आकर्षित होता है।

प्रश्न 3. अभिप्रेरणा .... स्त्रोतों से मिलकर बनती है।

6.4 अभिप्रेरणा के सिद्धांत

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया मे भी अभिप्रेरणा का होना अति आवश्यक है। विशेष विद्यार्थियों को किसी भी शिक्षण अधिगम परिस्थिति में अभिप्रेरित किया जाता है। जिससे वह विषय वस्तु को ठीक से सीख सके। अनेकों अनुसंधानों तथा अनुभवों के आधार पर विशेष विद्यार्थियों को अभिप्रेरणा प्रदान करने हेतु कुछ निम्न सिद्धांतों का उल्लेख किया जा सकता है–

1. **अधिगम हेतु तत्परता का सिद्धांत**– विशेष बालकों को शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रिया मे, अभिप्रेरित करना अनिवार्य होता है। विशेष बालक को विषय वस्तु सीखने के लिए तैयार करना होता है। किसी भी क्रिया को सिखाने से पहले विशेष बालक का मानसिक रूप से तथा शारीरिक रूप से तैयार या तत्पर होना आवश्यक होता है। शिक्षक द्वारा अधिगम प्रक्रिया में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाए कि विशेष बालक विषय सीखने हेतु तत्पर हो जाये। जैसे–विशेष बालकों को भोजन खाना सीखने की प्रक्रिया मे रूचिपूर्ण भोजन देने पर बालक तत्पर होकर भोजन करना सीख सकता है।

2. **आवश्यकताओं और प्रेरकों से लाभ उठाने का सिद्धांत**– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे विशेष बालकों की वर्तमान आवश्यकता और प्रेरकों को ध्यान में रखा जाए तो अभिप्रेरकों में वृद्धि हो सकती है। विशेष विद्यार्थी अपनी दैनिक जीवन

कौशल व आवश्यकता और प्रेरकों की संतुष्टि के लिए सीखते हैं। उनमें से कुछ जैसे किसी विशेष कार्य को सीखने की आवश्यकता, नए अनुभव करने की आवश्यकता, किसी विशेष कौशल को अर्जित करने की आवश्यकता, दूसरे लोगों के साथ सामाजिकता आदि।

3. **सक्रिय भागीदारी का सिद्धांत**– विशेष विद्यार्थियों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाने के लिए उन्हें अच्छी तरह अभिप्रेरित रखा जा सकता है। विशेष विद्यार्थियों के सामने समस्या उत्पन्न होने पर ही वह उसके समाधान के लिए प्रेरित होते है। छोटे–छोटे समूहों में विद्यार्थियों को सीखने के अवसर देने चाहिए। इस तरह की सक्रिय साझीदारी विशेष विद्यार्थियों को अवश्य ही अभिप्रेरित करती है।

4. **रुचि उत्पन्न करने और बनाए रखने का सिद्धांत**– विशेष विद्यार्थियों मे विषय का रूचिपूर्ण होना उनकी अभिप्रेरणा को बढ़ता है। अभिप्रेरणा का केंद्रीय तत्व रुचि है। यदि विशेष बालक के लिए विषय वस्तु रूचिपूर्ण नही है। तो वह उससे सीख नही सकता, इसके विपरीत यदि विशेष बालक की रूचि के अनुसार विषय है तो वह इससे पूरी मेहनत व लगन के साथ सीखता है।

5. **ध्यान/अवधान को बनाए रखने का सिद्धांत**– विशेष विद्यार्थियों के ध्यान को शिक्षण अधिगम की ओर उचित रूप से आकर्षित किया जाए। जिससे वह विषय को पूरी तरह से सीख सकें। इसके लिए उचित प्रयास किए जाने चाहिए।

6. **लक्ष्य एवं उद्देश्यों का सिद्धांत**–विशेष बालक को यदि सीखने के लक्ष्य और उद्देश्यों का पूरा ज्ञान है तो वह उस कार्य के प्रति सजग व क्रियाशील रहेगा। यदि विशेष बालक को अपने अधिगम लक्ष्य के बारे में पूरी निश्चितता और स्पष्टता है तो उसको अधिगम में, रुचि लेने और लक्ष्य की ओर उत्साह एवं जोश से आगे बढ़ने में मदद मिलती है।

7. **अनुदेशन सामग्री के उचित संगठन का सिद्धांत**–विशेष बालक के लिए प्रयुक्त शिक्षण–अनुदेशन सामग्री, यदि उसकी क्षमता व आवश्यकता के अनुरूप होगी तो बालक को उसमें रुचि, व आकर्षण के साथ–साथ सीखने के प्रति अभिप्रेरणा भी उतनी ही अधिक होगी। जैसे– दृष्टिबाधित बालकों के लिए स्पर्शीय प्रशिक्षण सामग्री तथा बौद्धिक अक्षम बालकों के लिए बहुइंद्रिय प्रशिक्षण सामग्री आदि।

8. **उचित विधियों एवं प्रविधियों को प्रयोग में लाने का सिद्धांत**– विशेष विद्यार्थियों के लिए विशेष अनुदेशन व अनुकूलित शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग करना आवश्यक होता है। जिससे विशेष बालक कक्षा मे पठन प्रक्रिया मे सहभागी हो सके। विशेष बालकों के लिए उचित विधियों का चयन जिसमें उपयुक्त, विशेष प्रविधियों, विशेष शिक्षण सामग्री तथा विशेष सहायक साधन का उपयोग और आधुनिक तकनीकों का समावेश हो, जो दिव्याङ्ग विद्यार्थियों को अधिगम के लिए अभिप्रेरित करे।

9. **सकारात्मक एवं उपयुक्त वातावरण के निर्माण का सिद्धांत**– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे सभी विशेष बालकों के साथ समान व्यवहार, निष्पक्षता व समान सहभागिता बालकों को उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। विशेष बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए उन्हें पाठयसहगामी क्रिया मे सम्मिलित करना भी आवश्यक होता है। अतः कक्षा का बाह्य व आंतरिक दोनों वातावरण का सहयोगी व सकारात्मक होना आवश्यक है।

10. **परिवर्तन एवं विविधता का सिद्धांत**– शिक्षण अधिगम को रोचक बनाने के लिए यथासंभव वातावरण, अनुदेशन विधियों, तकनीकों, शिक्षण साधनों और शिक्षण परिस्थितियों में परिवर्तन और विविधता लाना जरूरी होता है। जिससे की प्रत्येक विशेष बालक कक्षा में क्रिया सीखने के लिए अभिप्रेरित रहे। वातावरण में आवश्यक नवीनता विशेष बालकों में जिज्ञासा, कौतूहल आदि जाग्रत करता है, जो विशेष बालक को विषय सीखने को भी प्रेरित करता है।

11. **उचित प्रतिपुष्टि करने का सिद्धांत**– विशेष बालक के अधिगम व्यवहार को आकार प्रदान करने के लिए उचित प्रतिपुष्टि देना भी निश्चित रूप से विशेष विद्यार्थियों को अपने अधिगम पथ पर अधिक स्पूर्ति और उत्साह से आगे बढ़ने के लिए अभिप्रेरित करता है।

12. **उचित प्रोत्साहन तथा पुनर्बलन का सिद्धांत**– कोई भी व्यवहार प्रोत्साहनों व पुनर्बलनों के उचित आयोजन के द्वारा विशेष बालक को सिखाया जा सकता है। अधिगम की प्रक्रिया में पुनर्बलन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पुनर्बलन के उपयुक्त आयोजन के द्वारा हम बालक में अधिगम की प्रक्रिया को तीव्र कर सकते हैं, अर्थात् यदि बालक को उसकी क्रिया के बदले में पुनर्बलन या पुरस्कार की प्राप्ति होती है तो वह उस क्रिया को करने के लिए आतुर रहता है, बौद्धिक अक्षम बालकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में पुनर्बलन का प्रयोग अनिवार्य होता है। जो बालक को कार्य सीखने के लिए प्रेरित करता है। इसके साथ–साथ विशेष बालकों के व्यवहार परिमार्जन की प्रक्रिया में भी यह उपयोगी होता है।

13. **आंतरिक अभिप्रेरणा प्रदान करने का सिद्धांत**–विशेष बालकों की शिक्षा में उनकी क्षमता एवं योग्यताओं के अनुसार उन्हें कार्य प्रदान किया जाना चाहिए तथा उस कार्य को करने के लिए, उनको प्रेरित या प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए। जिसके द्वारा बालक अपनी शेष क्षमताओं का अधिकतम प्रयोग कर सकता है। शिक्षक के द्वारा विशेष बालकों में आंतरिक अभिप्रेरणा उत्पन्न करने से बालक स्वानुशासी, जागरूक व अधिक सक्रिय भी होंगे।

14. **सफलता की निश्चितता का सिद्धांत**– विशेष बालकों के लिए अधिगम प्रक्रिया सरल से कठिन तथा स्थूल से सूक्ष्म जैसे सूत्रों पर आधारित होनी चाहिए। अधिगमकर्ता को उनकी योग्यता तथा क्षमताओं के अनुरूप ही शिक्षण अधिगम सामग्री तथा शिक्षण विधियों से अधिगम अनुभव प्रदान किए जाने चाहिए। जिससे प्रत्येक विशेष बालक अधिगम प्रक्रिया से लाभान्वित हो सके।

15. **चिंता का मंद स्तर बनाए रखने का सिद्धांत**– कुछ सीखने को तत्परता के रूप में चिंतित होना स्वाभाविक है, और इस प्रकार की चिंता विशेष बालक को लक्ष्य के प्रति सजग रहकर अधिगम में रत रहने को प्रेरित करती रहती है। परंतु चिंता का मंद रहना ही आवश्यक है, अन्यथा अधिक बढ़ कर यह सीखने वाले के व्यवहार तथा सीखने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल असर डाल सकती है।

16. **संबद्धता एवं मान्यता का सिद्धांत**– संबद्धता एवं मान्यता दोनों ही शक्तिशाली अभिप्रेरक है। इसलिए विशेष बालकों को सामूहिक और मिल जुलकर किए जाने वाले अधिगम सामाजिकता, सम्प्रेषण आदि के विकास में भी सहायक होते है। इन विशेष बालकों को छोटे –छोटे समूह अध्ययन तथा समूह क्रियाएँ, अधिगम में रुचि, ध्यान एवं तत्परता को बढ़ाने में सहयोग देते है।

17. **अध्यापक और विशेष विद्यार्थी के बीच तालमेल का सिद्धांत**– शिक्षक व विशेष विद्यार्थी के बीच सही तालमेल होना आवश्यक होता है। जिससे शिक्षण

अधिगम प्रक्रिया सफलतापूर्वक संपन्न हो सकेगी। पारस्परिक सहयोग तथा सौहार्द के द्वारा कक्षा का वातावरण भी स्वस्थ व सकारात्मक रहेगा तथा विशेष विद्यार्थियों को भी सीखने के उचित अवसर प्राप्त होंगे।

18. **विशेष विद्यार्थियों से उचित रूप में आशान्वित होने का सिद्धांत**—अधिगम की प्रक्रिया में विशेष बालकों की भागीदारी को महत्व प्रदान करना चाहिए। विशेष बालक को विषय संबंधी ज्ञान के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए, जिससे शिक्षक व अभिभावक दोनों विशेष बालक की योग्यतानुसार ही आशान्वित हों कम या अधिक आशान्वित न हों।

19. **विद्यार्थियों का अत्यधिक प्रतिस्पर्धा से दूर रखने का सिद्धांत**—विशेष शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बालक की क्षमता के अनुसार इस तरह संगठित करें कि विशेष बालक स्वस्थ स्पर्धा का प्रदर्शन करते हुए समूह के बीच ही अपनी योग्यताओं के आधार पर अधिगम करते रहे।

20. **उचित उदाहरण और आदर्श प्रस्तुत करने का सिद्धांत**— अगर विशेष विद्यार्थियों के सामने उचित उदाहरण प्रस्तुत किए जाएं तो इनके माध्यम से वे भली—भांति प्रेरित होंगे। इस कार्य में महान व्यक्तियों की जीवन गाथाएं, अच्छी आदतों से संबन्धित कथाएँ, चर्चाएं अच्छी भूमिका निभा सकती है। विभिन्न प्रकार के दृश्य, श्रव्य सहायक साधन तथा आधुनिक तकनीकी का उपयोग भी इस कार्य हेतु किया जा सकता है।

21. **अध्यापक के प्रयास और उत्साह का सिद्धांत**— शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विशेष अध्यापक द्वारा शिक्षण में ली जाने वाली रुचि, किए जाने वाले परिश्रम तथा जोश और उमंग विशेष विद्यार्थियों को भी कक्षा में सक्रिय व सजीव बनाए रखता है। शिक्षक का विषय पर अधिकार, प्रस्तुत करने का तरीका आदि भी इसे प्रभावित करता है।

6.5 अभिप्रेरणा प्रदान करने की विधियां

विशेष शिक्षा में अभिप्रेरणा प्रदान करने हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है—

1. **विशेष बालकों में विषय सीखने की इच्छा उत्पन्न करना**— यदि शिक्षक बालको में सीखने की इच्छा को विकसित कर देते हैं तो सीखने की प्रक्रिया सरल, शीघ्र तथा स्थाई होती है। अतः विशेष बालको को पढ़ाने से पूर्व शिक्षकों को उनकी रुचिओं का अध्ययन करना चाहिए और उन्हीं रुचि के अनुकूल उन्हें विषयों को पढ़ाना चाहिए।

2. **सीखने में तल्लीनता**— विशेष शिक्षक को बालकों को शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया में यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि सभी बालक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में पूर्णतयः लिप्त हों, जिससे कोई भी दिव्याङ्ग बालक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छूटे नहीं बल्कि वह कक्षा की प्रत्येक प्रक्रिया में सहभागी हो।

3. **आकांक्षा स्तर**— विशेष शिक्षक बालको के आकांक्षा स्तर को ऊंचा करके उन्हें अधिक सीखने करने के लिए अभिप्रेरित कर सकते हैं।

4. **प्रतियोगिता की भावना**— अभिप्रेरणा के विकास के लिए विशेष बालकों में स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करना आवश्यक होता है। जिसके फलस्वरूप विशेष बालक कठिन कार्यों को भी करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं तथा सफलता प्राप्त

करते हैं। वागन एवं डिसरेन के अनुसार, **''शिक्षा शास्त्र के संपूर्ण इतिहास में प्रतियोगिता को प्रेरणा प्रदान करने के लिए प्रयोग किया गया है।''**

5. **प्रगति का ज्ञान**– प्रगति का ज्ञान भी एक महत्वपूर्ण प्रेरणा के रूप में कार्य करता है, अतः शिक्षक को बीच–बीच में मूल्यांकन भी करते रहना चाहिए तथा इसके तुरंत बाद विशेष बालकों को परिणामों का ज्ञान भी करा देना चाहिए, इस प्रकार विशेष बालक अपनी सफलता असफलताओं से अभिप्रेरित होता है एवं कार्य को ठीक प्रकार से सीखता है।

6. **पुरस्कार**– पुरस्कार या पुनर्बलन एक ऐसी प्रेरणा है जो विशेष बालकों को अंक, खाने पीने की वस्तुओं या किसी कार्य से छूट के रूप में दिया जाता है, जो उनकी प्रेरणा में वृद्धि करता है। अतः शिक्षक को पुरस्कार या पुनर्बलन का यथोचित प्रयोग शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में करना चाहिए।

7. **प्रतिष्ठा**–विशेष बालक कक्षा में प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त करने हेतु उत्सुक रहता है। अतः यह भी एक प्रभावी प्रेरक है।

8. **प्रशंसा व निंदा**– प्रशंसा एक सकारात्मक प्रेरणा है, जो बालकों के उत्तम कार्यों की प्रशंसा करने पर उन कार्यों की पुनरावृत्ति करने के लिए प्रेरित करती है। प्रशंसा के फलस्वरूप विशेष बालक अपने व्यवहार में सुधार ला सकते हैं। निंदा व दण्ड एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है। विशेष बालकों में व्यवहार प्रबंधन, परिमार्जन एवं अवांछनीय व्यवहारों के लिए प्रयोग किया जाता है। निंदा व दंड अभिप्रेरक का उपयोग करते समय विशेष शिक्षक को आवश्यक सावधानी बरतनी चाहिए।

9. **स्पष्ट एवं आकर्षक लक्ष्य**– विशेष बालकों को सीखने के लिए प्रेरित करने हेतु, उनके समक्ष शिक्षा के लक्ष्यों को स्पष्ट एवं आकर्षक बनाकर प्रदर्शित करना चाहिए।

10. **परिणामों का ज्ञान**– पढ़ने से पूर्व लाभों या परिणामों को स्पष्ट कर देने से, बालकों को विशेष प्रकार की प्रेरणा प्राप्त होती है। वुडवर्थ के अनुसार, **''प्रेरणाएं परिणामों के तात्कालिक ज्ञान से प्राप्त होती है।''**

11. **सामूहिक कार्य**– विशेष बालकों में सामाजिकता के गुणों का अभाव पाया जाता है, अतः उन्हे सामूहिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्रदान करने से भी बालको को प्रेरणा प्राप्त होती है। कक्षा शिक्षण, खेल आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

12. **कक्षा का वातावरण**– पाठ्य विषयों के अनुकूल विशेष शिक्षण सामग्री, उपयुक्त फर्नीचर तथा पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था होने पर कक्षा का वातावरण बालकों के अनुकूल बनता है और यह वातावरण बालकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

उपर्युक्त बातों के साथ–साथ विशेष शिक्षक का व्यवहार, उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग, निष्पक्षता व समान अवसर आदि विधियां भी बालकों को अभिप्रेरणा प्रदान करती है। फ्रेंडसन के अनुसार, **''एक उत्तम शिक्षक प्रभावी प्रेरणा हेतु उपयुक्त शिक्षण सामग्री तथा सार्थक एवं सतत् परिवर्तनशील कक्षा के वातावरण पर निर्भर रहता है।''**

6.5.1 अभिप्रेरणा का महत्व

शिक्षा में अभिप्रेरणा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार निम्न प्रकार प्रकट किए हैं–

एण्डर्सन के अनुसार, **''सीखना प्रेरणा पाकर सर्वोत्तम ढंग से होता है।''**

थॉमसन के अनुसार, **''प्रेरणा छात्र में रुचि उत्पन्न करने की कला है।''**

केली के अनुसार, **''प्रेरणा अधिगम प्रक्रिया के उचित व्यवस्थापन में केंद्रीय कारक होती है। किसी प्रकार की भी प्रेरणा अधिगम में अवश्य उपस्थित होनी चाहिए।'**

विशेष शिक्षा में प्रेरणा बालक के व्यवहार का संचालन व निर्देशन करती है। विशेष शिक्षक शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार का संचालन करता है, व्यवहार पर नियंत्रण रखता है। तथा बालक को शैक्षिक लक्ष्य की ओर निर्देशित करता है। इस प्रकार प्रेरणा शिक्षा की आधारशिला है। विशेष शिक्षा में प्रेरणा का निम्नलिखित महत्व है–

1. **मानसिक विकास**– प्रेरणा विशेष बालक के मानसिक विकास में सहायता करती है। प्रेरणा बालक में सीखने, तर्क करने एवं स्मृति जैसी योग्यताओं में निखार लाती है। क्रो एवं क्रो के अनुसार, **''प्रेरणा बालक में सीखने की क्रियाओं को प्रोत्साहित करती है।''** इस प्रकार बालक को सीखने के लिए प्रेरित करके उसका मानसिक विकास किया जा सकता है।

2. **रुचि एवं अवधान**– प्रेरणा विशेष बालक की रुचि को मजबूत बनाती है। बालक रुचिपूर्ण कार्यों को करने के लिए अधिक प्रेरित रहते हैं।

3. **अनुशासन**– प्रेरणा विशेष बालक में अनुशासन की आदतों का विकास करती है, जिससे बालक स्व–अनुशासित होकर सीखता है।

4. **व्यवहार परिमार्जन**– विशेष बालक के व्यवहार प्रबंधन व परिमार्जन करने के लिए इन प्रेरकों का प्रयोग किया जाता है। जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सुचारू रूप से चल सके।

5. **उद्देश्य प्राप्ति**– प्रेरणा उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। जो विशेष बालक के व्यवहार को उद्देश्य प्राप्त होने तक अभिप्रेरित बनाए रखती है।

6. **चरित्र निर्माण**– विशेष शिक्षा द्वारा बालक को उत्तम गुणों के विकास हेतु प्रेरित किया जाता है। प्रेरणा विशेष बालक के चरित्र निर्माण में बहुत योगदान देती है।

7. **शिक्षा की प्रक्रिया**– विशेष बालक को जब ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरणा मिलती है तो उसमें अध्ययन के प्रति रुचि जागृत होती है, फलस्वरूप वह सुचारू रूप से अध्ययन करता है।

8. **सीखने के नियम एवं प्रेरणा**– सीखने के विभिन्न नियम एक प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। जिसके कारण विशेष बालक किसी तथ्य का अभ्यास करता है और इससे उसे सीखने की प्रेरणा प्राप्त होती है। सीखने के प्रेरक रूप में इन नियमों का प्रयोग किया जाता है।

विशेष बालकों की शिक्षण प्रशिक्षण प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का अत्यधिक महत्व होता है। जिससे हम विशेष बालक को कार्य सीखने के प्रति प्रेरित कर सकते हैं, अभिप्रेरणा आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की होती है। कुछ विशेष बालक स्वयं से किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित होते हैं, उनके अंदर सीखने के प्रति कौतूहल एवं जिज्ञासा होती है, ऐसे बालक अपने शिक्षकों तथा विशेषज्ञों से विभिन्न कौशलों को सीखने के लिए लगातार प्रयासरत रहते हैं। किंतु इसके अलावा कुछ अन्य विशेष बालक बाह्य वातावरण से भी प्रेरणा प्राप्त करते हैं। जैसे–किसी शिक्षक के द्वारा बालक को क्रिया विशेष सीखने के लिए प्रेरित किया जाना।

शिक्षकों के द्वारा कक्षा में समय–समय पर विशेष बालकों को सीखने के लिए प्रेरित किया जाता है, अतः हम कह सकते हैं कि बालकों की जिज्ञासा एवं रुचि के अनुसार वह किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित होते हैं। परंतु किसी शिक्षक की अभिप्रेरणा भी उन्हें किसी विषय को सीखने के लिए प्रेरित कर सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

प्रश्न 4. कोई भी व्यवहार .... के उचित आयोजन के द्वारा विशेष बालक को सिखाया जा सकता है।

प्रश्न 5. शिक्षक के द्वारा बालकों में अभिप्रेरणा उत्पन्न करने से बालक..... ...., जागरूक व अधिक सक्रिय भी होंगे।

प्रश्न 6. .... में भाग लेने का अवसर प्रदान करने से भी बालको को प्रेरणा प्राप्त होती है।

6.6 निष्कर्ष

शिशु प्रारम्भिक अवस्था से ही अधिगम के प्रति सक्रिय होता है। धीरे–धीरे विशेष बालक के बड़े होने पर वह दैनिक जीवन के किसी न किसी कार्य में संलग्न रहता है और कोई न कोई व्यवहार प्रदर्शित भी करता रहता है। इसी प्रकार अन्य जरूरी आवश्यकताएं भी विशेष बालकों को विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए प्रेरित करती हैं जैसे–जैसे बालक बड़ा होता जाता है, उसकी आवश्यकताएं भी बदलती जाती हैं। छोटे बालक प्रायः प्राथमिक आवश्यकताएं जैसे भोजन, पानी आदि के लिए लगातार प्रयास करते रहते हैं। इसके विपरीत जब बालक किशोर या वयस्क हो जाते हैं तो उनकी आवश्यकताएं/महत्वाकांक्षाएं आदि भी बदल जाती हैं, वह दैनिक जीवन से संबंधित सभी कार्यों को सीख चुके होते हैं अतः उनके कार्य उनकी शिक्षा, व्यवसाय तथा अन्य आवश्यकताओं से संबंधित हो जाते हैं। जैसे– विद्यार्थी परीक्षा में अधिक अंक लाने के लिए अधिक मेहनत करता है अथवा किसी प्रतियोगिता या परीक्षा की तैयारी करना आदि।

विशेष बालकों की शिक्षा में अभिप्रेरणा का प्रमुख स्थान होता है। यह बालक स्वयं से किसी कार्य या विषय सीखने के लिए प्रेरित नहीं होते अतः इन्हें सीखने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। ऐसे बालकों में ज्यादातर आत्मविश्वास की कमी होती है। यह अपने आपको विषय सीखने के लिए योग्य नहीं समझते। इन्हें अधिगम के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। इन बालकों को विशेष प्रशिक्षण के द्वारा सिखाया जाता है।

6.7 इकाई सारांश

- अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो विशेष बालक को किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है।

- अभिप्रेरणा शब्द की उत्पत्ति मोटिवेशन (Motivation), लैटिन भाषा के Motum शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है Move, Motor तथा Motion अर्थात् अभिप्रेरणा के शाब्दिक अर्थ के अनुसार किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते हैं।
- आंतरिक प्रेरणा जो विशेष बालक के अंतर्मन से उसे किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है।
- बाह्य प्रेरणा वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों में छुपी होती है जो विशेष बालक को विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने के लिए प्रेरित करती रहती है।
- प्रेरक अभिप्रेरणा के मूल स्रोत होते है। प्रेरक के द्वारा ही विशेष बालक किसी कार्य को सीखने के प्रति आकर्षित होता है।
- प्रेरक जन्मजात एवं अर्जित दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
- जन्मजात प्रेरकों का संबंध विशेष बालक की दैनिक आवश्यकताओं से होता है। इन प्रेरकों को जैविकीय प्रेरक, प्राथमिक प्रेरक, शारीरिक प्रेरक आदि नाम दिए गए हैं।
- व्यक्तिगत प्रेरकों का संबंध विशेष बालक की प्रवृत्ति, इच्छा, आकांक्षा एवं रुचि से होता है।
- किसी भी क्रिया को सिखाने से पहले विशेष बालक का मानसिक, शारीरिक रूप से तैयार या तत्पर होना आवश्यक होता है।
- विशेष बालक के लिए प्रयुक्त शिक्षण–अनुदेशन सामग्री, यदि उसकी क्षमता व आवश्यकता के अनुरूप होगी तो बालक को उसमें रुचि, व आकर्षण के साथ–साथ सीखने के प्रति अभिप्रेरणा भी उतनी ही अधिक होगी।
- शिक्षण अधिगम को रोचक बनाने के लिए यथासंभव वातावरण, अनुदेशन विधियों, तकनीको, शिक्षण साधनों और शिक्षण परिस्थितियों में परिवर्तन और विविधता लाना जरूरी होता है।
- पुनर्बलन के उपयुक्त आयोजन के द्वारा हम बालक में अधिगम की प्रक्रिया को तीव्र कर सकते हैं।

6.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1. अभिप्रेरणा कार्य को आरंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।
2. प्रेरक के द्वारा ही बालक किसी कार्य को सीखने के प्रति आकर्षित होता है।
3. अभिप्रेरणा तीनों स्त्रोतों से मिलकर बनती है।
4. कोई भी व्यवहार प्रोत्साहनों व पुनर्बलनों के उचित आयोजन के द्वारा विशेष बालक को सिखाया जा सकता है।
5. शिक्षक के द्वारा बालकों में आंतरिक अभिप्रेरणा उत्पन्न करने से बालक स्वानुशासी, जागरूक व अधिक सक्रिय भी होंगे।
6. सामूहिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्रदान करने से भी बालको को प्रेरणा प्राप्त होती है।

6.9 अपनी प्रगति जाँचे

7. आंतरिक प्रेरक से आप क्या समझते हैं?
8. संवेदना में .... चिन्ह की भी विशेषता पाई जाती है।
9. अंतर्नोद क्या हैं?
10. भूख प्यास .... के रूप में कार्य करते हैं।
11. सीखना .... पाकर सर्वोत्तम ढंग से होता है।
12. विशेष शिक्षा द्वारा बालक को .... के विकास हेतु प्रेरित किया जाता है।

6.10 अधिन्यास / क्रियाकलाप

1. अभिप्रेरणा का स्वरूप क्या है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?
2. अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें ?
3. विशेष बालकों शिक्षा में अभिप्रेरणा प्रदान करने की विधियों का क्या महत्व है ?
4. ''प्रेरक जन्मजात एवं अर्जित दोनों प्रकार के हो सकते हैं।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

6.11 विचार विमर्श के बिन्दु / स्पष्टीकरण

- इस इकाई के बाद आप विचार–विमर्श करें तथा कुछ बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करें।
- उन बिन्दुओं को लिखें

6.11.1 विचार विमर्श के बिन्दु

....

....

6.11.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

अपने सहपाठियो के साथ विशेष शिक्षा में अभिप्रेरणा की प्रविधियों पर चर्चा करेंगे।

6.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Arkes, H.R., and Garske, J.P., (1977), Psychological Theories of Motivation, Monterey Calif: Brooks/Cole.
- Atkinson, J.W., and Feather, N.T., (Ed.), (1966), Theory of Achievement Motivation, New York: John Wiley.

- Ayllon, T. and Azrin, N.H. (1968) The Token Economy: A Motivational System for Therapy and Rehabilitation, New York, Appleton-Century Crofts. 143
- Brown, J.S., (1961), The Motivation of Behaviour, New York: McGraw-Hill.
- Caroll, H.A., (1969), Mental Hygiene- The Dynamics of Adjustment, Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice-Hall.
- Fisher, V.E., (1971), An Introduction in Abnormal Psychology cited by Labh Singh & G.P. Tiwari in Essentials of Abnormal Psychology, Agra: Vinod Pustak Mandir.
- Hokason, J.E., (1969), The Physiological Bases of Motivation, New York: John Wiley.
- Irving Sarnoff, (1983), Personality Dynamics and Development cited by Mangal S.K. in Educational Psychology (IV ed.) Ludhiana: Prakash Brothers.
- Mangal, S.K. (2013), Shiksha Manovigyan, New Delhi: PHI Learning Private Limited.
- Maslow, A., (1954), Motivation and Personality, New York: Harper & Row.
- McClelland, D.C., Atkinson, J.W., Clark, R.A., & Lowell, E.C., (1953), The Achievement Motive, New York: Appleton.
- McDougall, W., (1921), Social Psychology, Boston: John Luice.
- Petri, H.L., (1985), Motivation: Theory and Research (2nd ed.), Bolment, C.A.: Wardsworth.
- Prasad, M. and Mittal, P., (2011), Shiksha Manovigyan, Agra: M. H. Publications.
- Rosen, E., Fox, Ronald & Gregory, Ean, (1972), Abnormal Psychology (3rd ed.), Philadelphia: Saunders.
- Saraswat, M. & Singh, M., (2015), Shiksha Manovigyan Ki Rooprekha, Lucknow: Alok Prakashan.
- Stacey, C.L., and De Martino, M.E., (Ed.), (1963), Understandimg Human Motivation (Rev. ed.), Cleveland: Howard Allen.
- Stain, R.E., Educational Psychology (3rd ed.), (1986), Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice-Hall.
- Stipek, D.J., (1988), Motivation to learn from Theory to Practice, Englewood Cliff, New Jersey: Prentive Hall.
- Valley, F.P., (1975), Motivation Theories and Issues, Monterey: Califf, Brooks/Cole.
- Weiner, B., (1980), Human Motivation, New York: Holt Renehart & Winston.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड – 3

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

इकाई – 7 127

शिक्षण–सूत्र एवं शिक्षण प्रविधियाँ

इकाई – 8 143

शिक्षण की अवस्थायें एवं प्रतिमान

इकाई – 9 157

नेतृत्व एवं शिक्षक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. के. एन. सिंह.	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 पी0 के0 पाण्डेय	प्रभारी निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 सीमा सिंह	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो0 सुषमा पाण्डेय	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग डी0डी0यू0 विश्वविद्यालय, गोरखपुर
प्रो0 रजनी रंजन सिंह	आचार्य, विशेष शिक्षा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ
डॉ0 जी0 के0 द्विवेदी	सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 दिनेश सिंह	सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ नीलम बंसल	प्रवक्ता, विशेष शिक्षा कम्पोजिटिंग रिजनल सेन्टर (CRC), लखनउफ (इकाई 1,2,3,4,5,6)
डॉ नीता मिश्रा	शैक्षणिक परामर्शदाता विशेष शिक्षा, शिक्षा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 7,8,9,10,11,12,13,14,15)

सम्पादक

प्रो0. योगेन्द्र पाण्डेय	एसोसियएट प्रोफेसर, (विशेष शिक्षा), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

परिमापक

प्रो0 सीमा सिंह	आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

समन्वयक

डॉ. नीता मिश्रा	शैक्षणिक परामर्शदाता, (विशेष शिक्षा), शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज.

सितम्बर, 2019 (मुद्रित)
© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020
ISBN-
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।
प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड परिचय

यह खण्ड आपको शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की प्रकृति, उसकी विशेषताओं एवं उनके प्रकारों के बारे में बतायेगा। जैसे–जैसे आप इस खण्ड का अध्ययन करेंगे, आप पाएगे कि दिव्यांग छात्रों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, सामान्य बालकों से कितनी भिन्न है। इस खण्ड में तीन इकाइयाँ है।

इकाई–7 में शिक्षण–सूत्रों को स्पष्ट करने के साथ प्रमुख शिक्षण– सूत्रों एवं शिक्षण पद्धतियों की प्रकृति को उजागर किया गया है।

इकाई–8 में शिक्षण की अवस्थायें स्पष्ट करने के साथ प्रमुख शिक्षण– सूत्रों एवं शिक्षण प्रतिमानों का वर्णन किया गया है।

इकाई–9 में आप शैक्षिक नेतृत्व की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित होंगे। साथ ही अध्यापक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका को भी पहचान पायेंगे।

इकाई–7

शिक्षण–सूत्र एवं शिक्षण प्रविधियाँ

संरचना–

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शिक्षण–सूत्र की अवधारणा

7.4 प्रमुख शिक्षण–सूत्र

7.5 शिक्षण प्रविधियाँ

7.6 शिक्षण प्रविधियों का वर्गीकरण

7.6.1 वैयक्तिक निर्देशन प्रविधियाँ

7.6.2 सामूहिक निर्देशन प्रविधियाँ

7.6.3 निर्देशन सामग्री पर आधारित प्रविधियाँ

7.7 चर्चा के बिन्दु

7.8 अभ्यास के प्रश्न

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप शिक्षण–सूत्र की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित होंगे। ये शिक्षण–सूत्र विशिष्ट शिक्षा सिद्धान्तों पर आधारित न होकर सामान्य ज्ञान और शिक्षण अनुभवों के आधार पर बनाये गये हैं।इसके साथ–साथ एक प्रभावी शिक्षण पद्धति उतनी ही आवश्यक हैं जितना कि विषय का पर्याप्त ज्ञान। प्रभावी शिक्षण की उचित प्रविधियों, विधियों द्वारा सरलता से, कम समय में व सुसंगठित रूप में, प्रदान किया जा सकता है। शिक्षण–सूत्रों को स्पष्ट करने के साथ प्रमुख शिक्षण– सूत्रों एवं शिक्षण पद्धतियों की प्रकृति को भी इस इकाई में उजागर किया गया है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- शिक्षण–सूत्रों की अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन्न शिक्षण पद्धतियों को पहचान सकेंगे।
- शिक्षण प्रविधियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- शिक्षण–सूत्रों और शिक्षण पद्धतियों में विभेद कर सकेंगे।

7.3 शिक्षण–सूत्र की अवधारणा

शिक्षण–सूत्र (Maxims of Teaching)-शिक्षक को योग्यता तथा ज्ञान को वितरण करना ये दोनों अलग–अलग बाते हैं। शिक्षक, महान गुणों से युक्त तथा कितना भी विषय का ज्ञाता भले ही हो किन्तु वह शिक्षा–कार्य में असफल ही माना जायेगा, यदि वह ज्ञान को विद्यार्थियों तक पहुचाने में असमर्थ है। अब सवाल यह उठता है कि बालकों को किस प्रकार का ज्ञान दिया जाये। ज्ञान देने की कौन–सी विधि अपनायी जाये कि शिक्षक अपने कार्य में सफल हो सके। अतः ज्ञान देने के लिए कोई विधि या कला अवश्य होनी चाहिए जिससे कम और अधिक हर प्रकार की बुद्धि वाले सीख सकें। शिक्षार्थियों ने इसके लिए कुछ शिक्षण सिद्धान्त और सूत्र बनाये। इन सूत्रों को परिस्थितियॉ प्रभावित नहीं करती और न ही ये समय के परिवर्तन साथ परिवर्तित होती है। अतः ये सूत्र सर्वकालिक, सार्वभौम तथा विश्वसनीय होते है। इनकी उपयोगिता अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुकी है। अतः प्रत्येक अध्यापक और विशेषकर नये अध्यापकों के लिये, यह जरूरी है कि वे इन सभी सूत्रों का शिक्षण में अनुसरण करें और शिक्षण कार्य को सफल बनाकर अपने शिक्षण–विश्वास को विकसित करें।

अतः उन सभी शिक्षकों को जो अपना शिक्षण कार्य उन्नत करना चाहें, इन सिद्धान्तों तथा सूत्रों के अनुसार अपने शिक्षण कार्य में वांछित सुधार करना चाहिए।”

शिक्षण एक कला है और इस कला में दक्षता प्राप्त करने के लिए दो बातें मुख्य हैं–

(i) अध्यापक को विषय–वस्तु का पूर्ण ज्ञान होना, तथा

(ii) ज्ञान को प्रेषित करने की शैली।

मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने सीखने के नियम तथा आवश्यक तत्वों का अपने प्रयोगों द्वारा पता लगाया है। शिक्षाशास्त्रियों ने अपने अनुभवों एवं निर्णयों को शिक्षण सूत्रों का नाम दिया है। इन शिक्षण सूत्रों के निर्धारण में हरबर्ट स्पेन्सर, कमेनियस आदि शिक्षाशास्त्रियों ने अमूल्य योगदान दिया है। इन शिक्षण सूत्रों के प्रयोग से अध्यापक को अपने शिक्षण कार्य में सरलता होती है तथा शिक्षण प्रभावी बन पड़ता है।

7.4 प्रमुख शिक्षण सूत्र

प्रमुख शिक्षण सूत्र निम्नलिखित है–

1. सरल से जटिल की ओर (From Simple to Complex)
2. ज्ञात से अज्ञात की ओर (From known to Unknown)

3. स्थूल से सूक्ष्म की ओर (From Concrete to Abstract)

4. अनिश्चित से निश्चित की ओर (From Indefinite to Definite)

5. प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर (From Seen to Unseen)

6. विशिष्ट से सामान्य की ओर (From Particular to General)

7. पूर्ण से अंश की ओर (From Whole to Part)

8. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर (From Analysis to Synthesis)

9. मनोवैज्ञानिक से तर्कात्मक क्रम की ओर (From Psychological to Logical)

10. अनुभूत से युक्ति की ओर (From Empirical to Rational)

(1) **सरल से जटिल की ओर**—विद्यार्थियों में नवीन ज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करके आत्मविश्वास विकसित करना सफल शिक्षण की कुन्जी है। इस दृष्टि से यदि शिक्षण का सफल बनाना है तो सरल से जटिल की ओर नामक सूत्र का प्रयोग करना परम आवश्यक है। इस नियम का अर्थ है कि सबसे पहले छात्र के सम्मुख सरल तथ्यों का ज्ञान प्रदान करना है, बाद में क्रमानुसार जटिल तथ्यों का। अतः ज्ञान का विकास बालक के मानसिक विकास के अनुरूप होना चाहिए। इससे छात्र की रूचि बनी रहेगी और ज्ञान काविकास सफलता से होता चला जायेगा।

(2) **ज्ञात से अज्ञात की ओर**— मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि नवीन ज्ञान का आधार बालक का पूर्व ज्ञान होता है। इसलिए सबसे अच्छी स्वाभाविक विधि यही है जो बालक जानता है उसका ही आधार लेकर नये ज्ञान को समझाया जाय। इस सूत्र का महत्व प्रकट करते हुए स्पेन्सर ने कहा है, "मस्तिष्क को ज्ञात बातें रोचक लगती है और इस तथ्य के आधार पर वे बातें भी रोचक लगती है जिनका सम्बन्ध ज्ञात बातों से स्थापित किया जाता है। शिक्षण में इसलिए पूर्वज्ञान पर ही नये ज्ञान की आधारित करना चाहिए।"

(3) **स्थूल से सूक्ष्म की ओर**—प्रारम्भ में बालक तथ्यों को केवल मूर्त या स्थूल में ही समझता है। धीरे–धीरे सूक्ष्म बातों को सामझने की शक्ति का विकास होता जाता है। अतः छोटे बच्चों को पढ़ाते समय शुरू में केवल स्थूल वस्तुओं/अनुभवों का प्रयोग करना चाहिए बाद में सूक्ष्म बातों का। पेस्टॉलाजी का मत है कि— "ऐसी वस्तुओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जो बालकों के सम्पर्क में आती हो तथा जिनका बालकों की रूचि, भावना और विचारों के साथ तात्कालिक सम्बन्ध हो। बालकों की शिक्षा सदा स्थूल वस्तुओं तथा तथ्यों से होनी चाहिए। सूक्ष्म शब्दों नियमों या परिभाषाओं से नही। पैस्टॉलाजी के ये विचार "स्थूल से सूक्ष्म की ओर" सूत्र के मनोवैज्ञानिक आधार को ही इंगित करते हैं।"

(4) **अनिश्चित से निश्चित की ओर**—शुरू में बालक का ज्ञान अस्पष्ट तथा अनिश्चित होता है। अतः इसी को आधार बनाकर ज्ञान को निश्चित रूप में प्रकट करना चाहिए। शिक्षक का उत्तरदायित्व है कि वह स्थूल वस्तुओं, चित्रों व उदाहरणों द्वारा अनिश्चित ज्ञान को निश्चयात्मकता प्रदान करें। Raymont ने कहा था कि— "बच्चे के अविकसित मस्तिष्क में निश्चित विचारों को भरने के प्रयास का परिणाम

केवल शाब्दिक बातों से उनके विचार व धारणा को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है उनके अनिश्चित ज्ञान को निश्चित रूप देना वांछनीय है।"

(5) **प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर**–मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चे जिनकी आयु 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान के स्तर पर ही कार्य करते हैं। इस दृष्टिकोण से बालक को वर्तमान का ज्ञान दिया जाये बाद में भूत व भविष्य का। परिणामस्वरूप छात्रों को अप्रत्यक्ष बातों का ज्ञान सरलता से हो जायेगा।

(6) **विशिष्ट से सामान्य की ओर**–इस सूत्र का अर्थ है कि पहले अध्यापक छात्रों के सामने कुछ विशिष्ट उदहारण प्रस्तुत करे, फिर उन्हीं उदाहरणों की परीक्षा करके सामान्य सिद्धान्त निकलवाये। अतः इसमें आगमन–विधि का प्रयोग सम्मिलित है। रायर्बन के अनुसार– "इस सूत्र का वही अर्थ है जो स्थूल से सूक्ष्म की ओर नियम का है। अन्तर केवल यह है कि इसमें आगमन विधि का प्रयोग किया जाता है इस सूत्र के अनुसार छात्र विशिष्ट उदाहरण के आधार पर सामान्यीकरण की ओर अग्रसर किया जाता है तो उनको ऐसा लगता है जैसे वे स्वयं अन्वेषक की तरह विचार करना प्रारम्भ करते है।"

(7) **पूर्ण से अंश की ओर**–इसका अर्थ है बालकों को पूरी बात बताने के बाद ही उसके भागों को बताना। यह सूत्र गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पर आधारित है। इसके अनुसार बालक के विचार वस्तुओं के बारे में खण्डों में नहीं होते हैं। बालक शुरू में पूर्ण वस्तुओं को ही जानता है। वह अंगों के बारे में सोचता ही नहीं है। अतः ज्ञान देने के लिए शिक्षक को तथ्यों का पहले समवेत रूप में दिग्दर्शन कराना चाहिए फिर अंगों के बारे में जगदीश पुरोहित के शब्दों में– "यह सूत्र सिद्धान्त भी शिक्षण का एक प्रबल एवं आधारभूत सूत्र है। इसके अनुसार शिक्षण सम्पूर्ण से अंश की ओर (दिशा में) आयोजित किया जाना चाहिए। क्योंकि अंश सम्पूर्ण के परिप्रेक्ष्य में ही समझ में आ सकता है।"

(8) **विश्लेषण से संश्लेषण की ओर**–प्रारम्भ में बालक का ज्ञान अव्यवस्थित, अनिश्चित व अस्पष्ट होता है। उसके ज्ञान को व्यवस्थित, निश्चित व स्पष्ट करने के लिए विश्लेषण से संश्लेषण सूत्र का प्रयोग किया जाता है। विश्लेषण में समस्या को भिन्न–भिन्न भागों में विभक्त कर स्पष्ट किया जाता है। इसके बाद संश्लेषण किया जाता है जिसमें विभाजित अंगों द्वारा प्राप्त ज्ञान को जोड़ा जाता है। केवल विश्लेषण से ही काम नहीं चलता है वरन् संश्लेषण भी आवश्यक है। इस सूत्र का प्रयोग प्रायः भूगोल, विज्ञान, गणित आदि विषयों में किया जाता है।

(9) **मनोवैज्ञानिक से तर्कात्मक क्रम की ओर**–इस सूत्र का आशय यह है कि अध्यापन में मनोवैज्ञानिक को तर्कात्मक क्रम को अपनाना चाहिए। मनोवैज्ञानिक क्रम में बालक की रूचि, जिज्ञासा, आयु, क्षमता आदि के अनुसार विषय–वस्तु को प्रस्तुत किया जता है। यह क्रम उत्तम है क्योंकि इसके द्वारा छात्र ज्ञानार्जन सुगमता से कर लेता है। इसलिए छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए उपयुक्त है। लेकिन जैसे–जैसे उनका ज्ञान बढ़ता जाये, उसी क्रम से तर्कात्मक क्रम को अपनाते जाना चाहिए। इससे तर्क–शक्तियों का विकास होगा और बालक समस्या समाधान की ओर स्वतः अग्रसर होगा।

(10) **अनुभूति से युक्ति की ओर**–इस सूत्र का अर्थ है कि छात्र में अनुभूत ज्ञान को तर्क–युक्त बनाया जाये और अनुभूत ज्ञान वे है जो बालक को अपने निरीक्षण से मिलते है। अतः अनुभूति ज्ञान को युक्ति संगत बनाया जाना चाहिए। इससे बालक का ज्ञान स्पष्ट तथा स्थायी हो जायेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

1. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर शिक्षण सूत्र का प्रयोग किन–किन विषयों को पढ़ाने के लिए किया जा सकता है?

   ....

   ....

2. स्थूल से सूक्ष्म की ओर शिक्षण सूत्र से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

7.5 शिक्षण प्रविधियाँ

कक्षा शिक्षण की तैयारी करते समय शिक्षक के मस्तिष्क में जो दो महत्वपूर्ण प्रश्न गूँजते है, वह हैं–

1. क्या पढ़ाया जाय ? और
2. कैसे पढ़ाया जाय ?

इन पर प्रभावी निर्णय के लिए, अध्ययन के क्षेत्र में प्रशिक्षण व तैयारी के विगत कई वर्षों के अनुभवों की आवश्यकता होगी। एक प्रभावी शिक्षण पद्धति (Methods of Teaching) उतनी ही आवश्यक है जितना कि विषय का पर्याप्त ज्ञान। प्रभावी शिक्षण की उचित प्रविधियों, विधियों द्वारा सरलता से, कम समय में व सुंसगठित रूप में, प्रदान किया जा सकता है। प्रमुख प्रविधियाँ, जो सामान्य रूप से शिक्षण जगत में प्रचलित हैं, उनका उनके सिद्धान्तों के क्रियान्वयन के अनुसार वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

7.6 शिक्षण प्रविधियों का वर्गीकरण

7.6.1 वैयक्तिक निर्देशन प्रविधियाँ–(Methods of Individual Instruction)

7.6.1.1 योजना पद्धति (Project Method)

योजना शब्द प्रयोग का श्री गणेश सन् 1900 ई0 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रो0 रिचर्ड्स में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। इस शब्द का प्रयोग उस स्थान पर किया गया जहाँ बालक एक वास्तविक समस्या की स्वयं ही अपनी योजना बनाता है। प्रोजेक्ट स्वयं सीखने का एक कार्य है। यह वास्तविक जीवन की समस्याओं के समाधान पर बल देता है।

प्रोजेक्ट पद्धति के सिद्धान्त (Principles of Project Method)**-** योजना पद्धति में निम्नलिखित सिद्धान्तों का समावेश है–

1. **स्पष्ट उद्देश्य (Clear Aims or Purpose)-**क्योंकि बच्चे सप्रयोजन क्रियाओं में अधिक रूचि लेते है। अतः प्रोजेक्ट में स्पष्ट उद्देश्यों को रखा जाता है।

2. **क्रियाशीलता (Activity)-** बालक वैसे भी स्वयं सक्रिय होते है। स्वयं करके सीखने से ज्ञान अर्जन वास्तविक होता है। प्रोजेक्ट में क्रियाशीलता को प्रधानता दी जाती है।

3. **समन्वय (Correlation)-** ज्ञान अपने में पूर्ण इकाई है। अतः समस्त विषयों के ज्ञान क्रियाओं के प्रशिक्षण को एक इकाई के रूप में देने की व्यवस्था प्रोजेक्ट में की जाती है।

4. **स्वतंत्रता (Freedom)-** प्रोजेक्ट में बालक को अपनी रूचि के कार्य करने की स्वतंत्रता होती हैं। वह स्वयं प्रोजेक्ट का चयन करता है। इसके कार्यान्वयन में समय व विधि का कोई बन्धन नहीं है।

5. **वास्तविकता (Reality)-** इसमें कार्य वास्तविक होता है और उसे वास्तविक परिस्थितियों में सम्पन्न किया जाता है।

6. **सामाजिक (Sociality)-** इसके अन्तर्गत कार्य करने से बालक में आत्मविश्वास, सहयोग, भातृत्व आदि गुणों का विकास होता है क्योंकि प्रोजेक्ट में सामाजिक जीवन में ही समस्या लेते हैं तथा अन्य छात्रों के साथ–साथ ही कार्य करना पड़ता है।

7. **मितव्ययिता (Economy)-** इसमें इस बात का प्रयास करता है कि छात्र अल्प समय में अधिक से अधिक ज्ञान को प्राप्त कर ले तथा अधिक समय व धन न खर्च होने पाये।

7.6.1.2 प्रयोगशाला–पद्धति (Laboratory Method)

यह वह विधि है जिसमें बालक ज्ञान को प्रयोगों द्वारा स्वयं प्राप्त करते हैं। इसमें करके सीखने (Learning by doing) के सिद्धान्त पर बल देते हैं। इस विधि को प्रयोगशाला विधि भी कहते है क्योंकि प्रयोग प्रयोगशाला में किये जाते हैं यहाँ पर अध्यापक का कार्य, प्रयोग की संरचनापर पथ प्रदर्शन करना है जिससे छात्र की जिज्ञासा जागृत हो और वह नवीन ज्ञान को स्वयं ढूँढ़े।इसका प्रयोग विज्ञान विषयों में किया जाता है।इसमें निम्न पद प्रयुक्त होते हैं –

1. **निरीक्षण (Observation)-** परिस्थितियों का अवलोकन करना।
2. **नियंत्रण (Control)-** प्रयोग में आने वाले परिस्थितियों के अलावा अन्य तत्वों पर नियंत्रण रखना।
3. **मापन (Measurement)-** प्रयोग के परिणामों का मापन करना।

गुण–

1. इसके प्रयोग से बालक शारीरिक व मानसिक रूप से क्रियाशील ही जाता है।
2. इसमें ज्ञान स्थायी होता है क्योंकि यह करके सीखने (Learning by doing) के सिद्धान्त पर आधारित है।
3. इसमें छात्रों में रूचि जागृत होती है।

4. इसमें छात्रों में वैज्ञानिक चिन्तन का विकास होता है।

5. इसके द्वारा ज्ञान की सत्यता का मूल्यांकन आसानी से हो जाता है।

दोष–

1. यह छोटे बालकों के लिए उचित नहीं है।
2. इस विधि में उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है जिसके कारण यह मंहगी हे।
3. इसमें समय व शक्ति दोनों ही अधिक लगते हैं।
4. इसका प्रयोग सभी विषयों के पढ़ाने में नहीं किया जा सकता ।

7.6.1.3 अन्वेषण पद्धति (Heuristic Method)

यह विधि आगमन विधि का ही परिमार्जित रूप है। आर्मस्ट्रॉंग (Armstrong) ने आगमन विधि को आधार मानकर विज्ञान के शिक्षण के लिए इस विधि को प्रतिपादित किया, लेकिन इसका प्रयोग पाठ्यक्रम के अन्य विषिय गणित, भूगोल व व्याकरण आदि सभी विषयों में सफलतापर्वूक किया जाता है। वास्तव में ह्यूरिस्टिक (Heuristic) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के ह्यूरिस्को (Heurisco) शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है मैं खोजता हूँ (I Discover) अतः इस विधि में बालक शारीरिक व मानसिक रूप से सक्रिय रहते हुए ज्ञान की खोज स्वयं करते हैं। दूसरे शब्दों में अपने आप सीखते है। इसमें शिक्षक का कार्य उस वातावरण का सृजन करना होता है जिसमें बालक के सामने कोई समस्या उत्पन्न हो जाये।

विधि स्पष्टीकरण–शिक्षक छात्रों के सामने समस्या उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त समाधान हेतु उपयुक्त व आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करता है तथा समय–समय पर आवश्यक पथ–प्रदर्शन द्वारा प्रोत्साहन भी देता है, जिससे छात्र अपनी जिज्ञासा व रूचि के अनुकूल अन्वेषक के रूप में यंत्रों व अन्य साधनों द्वारा समस्या का निराकरण कर नवीन ज्ञान की खोज अपने आप कर सकें। इस विधि का मुख्य उद्देश्य छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करता है।

सिद्धान्त–इस विधि के निम्न आधारभूत सिद्धान्त है–

1. स्वयं करके सीखना–अपने आप अनुभव प्राप्त करना।
2. क्रियाशीलता– नियमों की खोजने में संलग्न रहना।
3. वैज्ञानिकता –वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास।
4. मनोवैज्ञानिकता स्व अनुभव का विकास।

गुण–

1. यह विधि मनोवैज्ञानिक है। इसमें छात्र बालक स्वयं क्रिया करके सीखता है।
2. इस विधि से छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता हे। उनमें चिन्तन, निरीक्षण व निर्णय शक्ति उत्पन्न होती हे।
3. इस विधि से छात्रों में आत्म–विश्वास, बौद्धिक आत्म–निर्भरता के गुण आते हैं।
4. इस विधि से छात्रों की शारीरिक व मानसिक क्रियाओं का समन्वय हो जाता है।

5. इससे गृह कार्य की समस्या स्वयं अपने आप ही हल हो जाती हैं क्योंकि सभी कार्य प्रयोगशाला में ही समाप्त हो जाते हैं।

6. यह विधि छात्रों को कठिन से कठिन कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

7. इसमें शिक्षण के विभिन्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है जो शिक्षा की दृष्टि से हितकर है।

8. इसमें बालक रटने से बच जाता है।

9. इसमें अध्यापक का कार्य पथ–प्रदर्शक का होता है। छात्र उसे अपना मित्र व सहयोगी मानते हैं।

दोष–

1. यह विधि प्राथमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. इस विधि का प्रयोग केवल प्रतिभाशाली बालक ही कर सकते हैं।
3. इसके द्वारा सभी विषयों का ज्ञान नहीं दिया जा सकता है।
4. इसमें विशेष, पुस्तकों, उपकरणों व प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है।
5. यह विधि उन कक्षाओं के लिए अधिक उपयुक्त नही जहाँ छात्र अधिक है।

7.6.1.4 डाल्टन पद्धति (Dalton Method)

सन् 1913 में अमेरिका निवासी कुमारी हेलेन पार्कहर्स्ट (Miss Helen Parkhurst) ने इस शिक्षण पद्धति का आविष्कार किया था।इन पर डॉ0 मारिया मॉन्टेसरी (Dr. Maria Montessori) व जॉन डीवी (John Dewey) के विचारों का प्रभाव पड़ा।सन् 1919 में अमेरिका के मेसेच्यूसेट्स (Massachusetts) राज्य के डाल्टन (Dalton) नगर में कुमारी हेलेन पार्कहर्स्ट ने कार्य प्रारम्भ किया। इसी कारण इसे डाल्टन विधि कहा जाता है। इन्होंने अपनी योजना को सन् 1920 में निश्चित रूप प्रदान किया।इस योजना को डाल्टन पद्धति के अतिरिक्त– (i) डाल्टन लैब प्लान (Dalton Lab, Plan), (ii) लेबोरेट्री स्कूल प्लान (Laboratory School Plan) भी कह सकते है।

डाल्टन पद्धति बालक/छात्र से एक प्रकार का समझौता (Contract) है। इस समझौते के अनुसार छात्र को निश्चित समय मं निश्चित कार्य करना पड़ता है। कार्य करने में यह पूर्ण स्वतंत्र है, उसे सब प्रकार की सुविधायें प्रदान की जाती है, यह कार्य करने के लिए स्वयं या अध्यापक का परामर्श लेकर, विभिन्न साधनों व विधियों की खोज करके, प्रयोग करता है।

इस प्रकार डाल्टन पद्धति शिक्षण की विधि नहीं है, वरन् विद्यालय कार्य को इस प्रकार से संगठित करने की विधि है जिससे बालक स्वयं उद्देश्यपूर्ण स्वंय क्रिया में संलग्न हो।

डाल्टन प्रविधि के आधारभूत सिद्धान्त (Principles)-

1. बालक केन्द्रित शिक्षा (Child Centered Education)

2. रूचि (Interest)

3. स्व–अनुभव अधिगम (Learning by Self Expereince)

4. वैयक्तिक व सामाजिक शिक्षा को एक समान स्थान (Equal place for Individual and Social Education)

5. शिक्षकः पथ प्रदर्शक (Teacher's role as a Guide)

6. स्वतंत्रता (Freedom)

7. सहयोग (Cooperation)

8. चरित्र निर्माण (Character Building)

9. आत्म–अनुशासन (Self-Discipline)

डाल्टन प्रविधि के गुण

1. यह पद्धति बाल–केन्द्रित है।

2. यह पद्धति छात्रों को अपनी क्षमताओं के अनुसार प्रगति करने में सहायक है।

3. यह पद्धति वैयक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित है।

4. यह पद्धति छात्रों को अपनी रूचि अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करती है।

5. यह पद्धति छात्रों को निश्चित रूप से प्रेरणा देती है।

6. इसमें अध्यापक–छात्र सम्बन्ध अच्छे रहते हैं।

7. इस पद्धति में अध्यापक का कार्य मार्ग दर्शन देना है।

8. इसमें अनुशसनहीनता की समस्या नहीं आती। छात्र स्वयं ही आत्मानुशासित हो जाते है।

9. परीक्षा की समस्या उत्पन्न ही नहीं होती।

10. गृह कार्य की समस्या ही नहीं, क्योंकि सभी कार्य विद्यालय में प्रयोगशालाओं में करने होते है। घर के लिये कोई कार्य नहीं।

11. छात्र स्व–अनुभव से सीखता है। अतः अधिगम में स्थायित्व रहता है।

12. छात्रों के कार्य में किसी प्रकार की बाधा– समयचक्र, समयावधि, विषय आदि की नहीं रहती है। जब तक चाहे एक विषय पर कार्य कर सकते हैं।

डाल्टन प्रविधि के दोष

1. यह पद्धति छोटी आयु के बालकों के लिए उपयुक्त नहीं है।

2. यह कमजोर व सामान्य बुद्धि वाले छात्रों के लिए अधिक उपयोगी नहीं है।

3. यह पद्धति केवल मानसिक विकास पर बल देती है।

4. इसमें लेखन कार्य (Written Work) पर अधिक बल है।

5. इस पद्धति से विभिन्न विषयों में सह–सम्बन्ध (Correlation) कठिन है।

6. यह पद्धति अनैतिकता को जन्म देती है क्योंकि इसमें पूर्ण स्वतंत्रता है।

7. यह पद्धति सामाजिक शिक्षा के लिए अधिक उपयोगी नहीं है।

8. इसमें वैयक्तिक शिक्षण पर अधिक बल है जिससे सामूहिक कार्यों की अवहेलना होती है। परिणामस्वरूप बालक असामाजिक व व्यक्तिवादी हो जाता है।

9. इसमें अध्यापक को अल्प समय में बहुत से छात्रों का पथ–प्रदर्शन करना होता है जो एक कठिन कार्य है।

10. इस पद्धति से शिक्षण देने हेतु प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है।

11. उपयुक्त स्तर की प्रयोगशालायें उपलब्ध नहीं है।

12. उपयुक्त स्तर की पुस्तकें व उपकरणों को जुटाना दुष्कर कार्य है।

7.6.2 सामूहिक निर्देशन प्रविधियाँ– (Collective-Instruction Methods)

7.6.2.1 व्याख्यान–पद्धति (Lecture Method)

यह सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली पद्धति है। इस पद्धति का अगर सही ढंग से उपयोग किया जाये है तो यह छात्र के प्रारंभिक विचारों या अवधारणाओं को सीखने में मदद करेगी। इस पद्धति में एक से अधिक शिक्षण अधिगम सामग्रियों का प्रयोग करके ज्यादा से ज्यादा विषय–वस्तु को कक्षा में छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है। एक कुशल शिक्षक को स्वंय पहले से अच्छी तरह से तैयारी करनी चाहिए और इस तैयारी में उसे उद्देश्यों और इच्छित परिणामों का पूर्वानुमान, विषय वस्तु का आयोजन, और उत्पादक कक्षा गतिविधियों की योजना बनाना शामिल करना चाहिए। विषय को स्पष्ट करने में मदद करने के लिए प्रशिक्षक को व्यक्तिगत कहानियों और उदाहरणों का उपयोग करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

लाभ

- कम समय में कई विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं।
- एक विषय वस्तु प्रस्तुत करने के लिए अच्छा है।
- सिद्धांतों या तथ्यों की एक सामान्य समझ स्थापित की जा सकती है।

हानि

- छात्रों की भागीदारी का अभाव है।
- छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

7.6.3 निर्देशन सामग्री पर आधारित प्रविधियाँ–(Methods Based on Instructinoal Material)

7.6.3.1 इकाई योजना पद्धति (Unit Plan of Teaching)

यह पद्धति 20वीं शताब्दी की देन है। अमेरिका के प्रोफेसर एच0डी0 मोरिसन (Prof. H.D. Marrison) ने इसे एक निश्चित रूप प्रदान किया है। अतः उन्हें इसका प्रतिपादक भी कहा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में इस पद्धति का प्रयोग सन् 1920 ई0 से हुआ है। थॉमस एम0 रिस्क के अनुसार– "इकाई किसी समस्या या योजना से सम्बन्धित सीखने वाली क्रियाओं की समग्रता या एकता को प्रकट करती है।"एस0पी0 मोरिसन के अनुसार–"इकाई, वातावरण, संगठित विज्ञान, कला या आचरण का एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण अंग होती है जिसे सीखने के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व में सामंजस्य आ जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि–

(i) इकाई कार्य का पूर्ण अनुभव है।

(ii) इकाई किसी विषय का एक बड़ा उपभाग होता है।

(iii) इकाई किसी रूचि पर आधारित कार्य का एक बड़ा भाग है।

(iv) इकाई ज्ञान की किसी शाखा का तार्किक विभाजन है।

(v) इसमें छात्र एक निश्चित व उपयोगी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्यनशील रहते है।

(vi) इसमें छात्रों की क्रियाओं को प्रकरण के अनुसार इस प्रकार से नियोजित करते है कि उन्हें विषय के आवश्यक तत्वों का पूरा ज्ञान हो जाये।

(vii) इसमें क्रियाओं व इन्द्रियानुभवों की आवश्यकता के दृष्टिकोण से सम्मिलित किया जाता है।

इकाई के प्रकार (Types of Unit)- सामान्यतः इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया है–

(अ) पाठ्यवस्तु सम्बन्धित इकाइयाँ (Subject Matter Units)

(ब) अनुभव सम्बन्धित इकाइयाँ (Experience Units)

(अ) पाठ्यवस्तु सम्बन्धित इकाइयाँ– ये वे इकाइयाँ हैं जो पाठ्यवस्तु के एक रूप व पूर्ण अंशों को संगठित करने से बनती है। इस इकाई के तीन उपवर्ग (Sub-group) है–

(i) प्रकरण आधारित इकाई (Topic Unit)

(ii) नियम/सिद्धान्त पर आधारित इकाई (Generalisation Unit)

(iii) संस्कृति / पर्यावरण पहलू सम्बन्धित इकाई (Units based on significant aspect of environment or culture).

अन्तर वर्णन

प्रकरण इकाई	**नियम / सिद्धान्त आधारित इकाई**	**संस्कृति / पर्यावरण पहलू सम्बन्धित इकाई**
अर्थ– ये वे इकाइयाँ है जो पाठ्यवस्तु के प्रकरणों को अलग–अलग या समवेत, स्वीकार करने से बनती है।	ये वे इकाइयाँ है जिनका आधार कोई सूत्र, नियम या सिद्धान्त होता है।	ये वे इकाइयाँ है जो पर्यावरण के महत्वपूर्ण पहलू तथा संस्कृति पर आधारित होती हैं। इन्हें Morrison Unit भी कहा जाता है।
महत्व– इसमें विषयवस्तु को अधिक महत्व दिया जाता है।	इसमें नियम/सूत्र को महत्व दिया जाता है।	इसमें भौतिक या सामाजिक वातावरण, आचरण विज्ञान, कला आदि को वास्तविकता के रूप में महत्व दिया जाता है।
प्रस्तुतीकरण– इसमें प्रस्तुतीकरण को कौतहूलता से जगाने हेतु प्रस्तावना द्वारा आगे बढ़ाया जाता है।	इसमें– (1) सबसे पहले बच्चों के सहयोग से किसी सूत्र / नियम आदि को निकाला जाता है। (2) बाद में इन्हें केन्द्र मानकर सम्पूर्ण ज्ञान को विकसित करते हैं	इस प्रकार की इकाइयाँ जीवित इकाइयाँ होती है। इसमें बच्चों को वास्तविक जीवन से सम्बन्धित पक्ष की सभी विषयों से सम्बन्धित करके ज्ञान प्रदान करते हैं।
उपयोगिता–ये भाषाशिक्षण में उपयोगी है।	इस प्रकार की इकाइयाँ व्याकरण, विज्ञान व गणित शिक्षण में विशेष उपयोगी है।	इनसे छात्रों को जीवन की वास्तविकता का ज्ञान होता है और वे परिस्थितियों में व्यवस्थित होना सीखते है।

(ब) अनुभव सम्बन्धित इकाइयाँ–ये वे इकाइयाँ है जो छात्रों के अनुभवों पर आधारित होती है। इस प्रकार की इकाइयों को भी तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. रूचि आधारित इकाई (Units based on pupil's interest)
2. छात्र उद्देश्य आधारित इकाई (Units based on pupil's purpose)
3. छात्र आवश्यकता आधारित इकाई (Units based on pupil's need)

अन्तर वर्णन

रूचि आधरित इकाई	छात्र उद्देश्य आधारित इकाई	छात्र आवश्यकता आधारित इकाई
अर्थ– (1) ये इकाइयाँ छात्रों की विभिन्न रूचियों पर आधारित होती है।	ये वे इकाइयाँ है जिनका संगठन छात्रों के उद्देश्यों को सामने रख कर दिया जाता है।	ये वे इकाइयाँ है जिनमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो छात्रों की रूचि के अनुकूल है, क्रियायें संगठित होती है।
(2) इसमें बच्चों की रूचियों के अनुकूल ही क्रियाओं का चुनाव होता है।	इसमें उन सभी ज्ञान, अनुभव व क्रियाओं का समावेश किया जाता है जो उद्देश्य प्राप्ति हेतु आवश्यक है।	
(3) रूचि क्रियाओं के माध्यम से ज्ञान व प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।	ये इकाइयाँ सिद्धान्ततः बहुत अच्छी होती है।	ये अपने में अच्छी होती है।
विशेषता– इस प्रकार की इकाइयाँ बहुत अच्छी होती है। **दोष**– (1) इस प्रकार की इकाइयों द्वारा सब कुछ नहीं पढ़ाया जा सकता। (2) समस्त ज्ञान को बालकों की रूचियों से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता।	इन इकाईयों का निर्माण करना सरल कार्य नहीं है।	इस प्रकार की इकाइयाँ द्वारा छात्रों को वह सब नहीं सिखाया जा सकता जो उन्हें जानना आवश्यक व अपेक्षित होता है।

इकाई निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Unit) - इकाई निर्माण में निम्नलिखित सिद्धान्त समाहित होते है–

1. उपयोगिता (Utility)
2. लचीलापन (Flexibility)
3. विषयवस्तु व क्रियाओं में तार्किक सम्बन्ध (Logical relationship between subject matter and activities)
4. रूचि (Interest)
5. आवश्यकता भौतिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक (Need-Physical, Social and Cultural)
6. ज्ञान, क्रिया व अनुभवों में संतुलित सम्बन्ध (Balanced relationship between knowledge, activities and expereinces)

7. विद्यालय स्थिति, उपलब्ध समय, साधन व उपकरणों की उपलब्धता (Avaliability of time, position of school, means and instruments)

इकाई पद्धति के शिक्षण पद (Teaching Steps of Unit Method)- शिक्षण पदों के निर्धारण में विशेष रूप से मॉरिसन व रिस्क के नाम उल्लेखनीय है। मॉरिसन ने इकाई योजनाा को कक्षा–शिक्षण के लिए उपयोगी बनाने हेतु पाँच पदों का उल्लेख किया है, जबकि रिस्क ने तीन पदों का समर्थन किया है। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है–

मॉरीसन (H.C. Morrison)- द्वारा प्रतिपादित शिक्षण पद पद्धति प्रारूप– यह निरीक्षण, अध्ययन व प्रयोगशाला पद्धति का मिश्रित रूप है।इसमें पाँच पद है– 1. खोज (Exploration), 2. प्रस्तुतीकरण (Presentation), 3. आत्मीकरण (Assimilation), 4. संगठन (Organisation), 5. वाचन (Recitation).

(1) खोज– सबसे पहले अध्यापक इकाई के सन्दर्भ में छात्रों के पूर्व ज्ञान की खोज करता है। इसके लिए वह–लिखित परीक्षा (Written Examination),मौखिक परीक्षा (Oral Examination), विचार विमर्श (Discussions) का सहारा लेता है।

(2) प्रस्तुतीकरण– इसके अन्तर्गत अध्यापक

- (i) इकाई की विषयवस्तु को छात्रों के समझ रखता है।
- (ii) प्रश्नों के द्वारा यह छात्रों के आत्मसात ज्ञान की परख करता है कि किस सीमा तक छात्र समझते है।
- (iii) यदि समझे कि छात्र ज्ञान को आत्मसात करने में असमर्थ रहे है, तो वह पुनः प्रस्तुत करेगा।
- (iv) छात्रों के समझने पर ही आगे बढ़ेगा।

(3) आत्मीकरण– इस पद के अन्तर्गत छात्रों को विषय–वस्तु को आत्मसात करने के अवसर दिये जाते है जैसे छात्र द्वारा–

- (i) स्वयं अध्ययन करके,
- (ii) ज्ञान को लिखकर,
- (iii) एक दूसरे के साथ विचार विमर्श करके
- (iv) शिक्षक से परामर्श व स्पष्टीकरण करके

(4) संगठन– यहाँ छात्र ज्ञान को व्यवस्थित करके उसे लिखते है। अगर छात्र इस कार्य में सफल हो जाते है तो उसके अर्थ हक छात्र विषयवस्तु को समझ गये है।

(5) वाचन –इस स्तर पर वाचन की दो विधियों का अनुसरण किया जाता है–

- (i) आदर्श विधि (Ideal practice)– इसमें छात्र को इकाई की विषयवस्तु की हुबहू उसी प्रकार से जिस प्रकार से शिक्षक ने कक्षा में प्रस्तुत की है, सम्पूर्ण कक्षा के सामने प्रस्तुत करनी पड़ती है।

दोष– इस विधि के निम्नलिखित दोष भी है–

1. इसमें समय बहुत लगता है।
2. बार–बार की पुनरावृत्ति कक्षा में अनावश्यक नीरसता भर देती है।

(ii) वास्तविक विधि (Actual Practice)- इसके अन्तर्गत कुछ छात्र वाचन करते है, तो हुबहू उसी प्रकार से जिस प्रकार से शिक्षक ने कक्षा में प्रस्तुत की है, सम्पूर्ण कक्षा के सामने प्रस्तुत करनी पड़ती है।

इकाई–योजना पद्धति के गुण (Merits)-

1. यह भिन्न–भिन्न क्रियाओं, अनुभवों व समस्याओं का समावेश करके क्रियाशीलता के सिद्धान्त बल देती है।
2. यह कक्षा अधिगम को रोचक एवं सक्रिय बनाती है।
3. यह विषय में रूचि उत्पन्न करती है।
4. यह छात्रों को वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता प्रदान करती है।
5. यह छात्रों में योजना निर्माण व गुण उत्पन्न करती है।
6. यह विधि छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना का निर्वाह करने की क्षमता पैदा करती है।
7. यह छात्रों में सहयोग, विनम्रता, सहकारिता, सहनशीलता, धैर्य, नेतृत्व आदि गुणों का विकास करती है।
8. यह विधि वैयाक्तिक विभिन्नताओं की संतुष्टि करती है।
9. यह विधि छात्रों में स्वयं अध्ययन की आदत को विकसित करती है।
10. यह छात्रों की कुशलताओं का विकास करती है।
11. यह ज्ञानार्जन की अधिक प्रभावी पद्धति है।

इकाई योजना पद्धति के दोष (Demerits)-

1. यह विधि सभी प्रकार के ज्ञानार्जन के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है।
2. इस विधि द्वारा प्रशंसा (Appreciation) का पाठ नहीं दिया जा सकता।
3. इसमें समय बहुत लगता है।
4. इसमें शिक्षण पद निश्चित नहीं है।
5. इकाई का निर्माण करना सरल कार्य नहीं है।
6. इकाई के शिक्षण पदों का सभी विषयों के प्रयोग नहीं किया जा सकता।।
7. इसमें क्रियाओं का बाहुल्य है, जिसके कारण विद्यालयों में इसका चलना दुष्कर है।

7.7 चर्चा के बिन्दु

विभिन्न शिक्षण पद्धतियों की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।

7.8 अभ्यास के प्रश्न

शिक्षण पद्धतियों एवं शिक्षण सूत्रों में विभेद कीजिए।

7.9 सारांश

शिक्षक, शिक्षण, आयोजित करने के लिए उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण–परिस्थितियाँ का निर्माण करता है। शिक्षण परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए वह उपयुक्त विधियों तथा युक्तियों का प्रयोग करता है। इन विधियों तथा युक्तियों के पीछे सामान्य सिद्धान्त एवं शिक्षण–सूत्र होते हैं जिनका विधियों तथा युक्तियों के अध्ययन के पूर्व स्पष्टीकरण करना समीचीन होगा। अनुभवी शिक्षक इनके अनुसार शिक्षण आयोजित करते है तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में समर्थ होते हैं। अतः उन सभी शिक्षकों को जो अपना शिक्षण कार्य उन्नत करना चाहें, इन विधियों तथा सूत्रों के अनुसार अपने शिक्षण कार्य में वांछित सुधार करना चाहिए।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर शिक्षण सूत्र का प्रयोगप्रायः भूगोल, विज्ञान, गणित आदि विषयों में किया जाता है।
2. प्रारम्भ में बालक तथ्यों को केवल मूर्त या स्थूल में ही समझता है। धीरे–धीरे सूक्ष्म बातों को समझने की शक्ति का विकास होता जाता है। अतः छोटे बच्चों को पढ़ाते समय शुरू में केवल स्थूल वस्तुओं / अनुभवों का प्रयोग करना चाहिए बाद में सूक्ष्म बातों का।

7.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Batten, T.R. (1999). Training for Community Development: A Critical Study of Method, London: Oxford University Press.
- Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.
- Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.
- Mishra, D.C. (2008). Essentials of Educational Technology & Management,Sahitya Publication, Agra.
- Mishra, R.M. (2007). Essentials of Educational Technology & Management, Alok Publication, Lko.
- Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
- Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

इकाई–8

शिक्षण की अवस्थायें एवं प्रतिमान

संरचना–

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्‌देश्य

8.3 शिक्षण की अवस्थाएँ

8.3.1 प्रथम अवस्था (Stage I)– पूर्व क्रिया अवस्था (Pre-active stage)

8.3.2 द्वितीय अवस्था (Stage II)– अन्तर्क्रिया अवस्था (Interactive stage)

8.3.3 तृतीय अवस्था (Stage III)– क्रिया पश्चात् अवस्था (Post active stage)

8.4 शिक्षण प्रतिमान का अर्थ एवं विशेषताएँ

8.4 शिक्षण प्रतिमान के तत्व (Elements)

8.5 शिक्षण प्रतिमानों के परिवार (Families of Teaching Model)

8.6 कुछ प्रमुख शिक्षण प्रतिमान

8.7 चर्चा के बिन्दु

8.8 अभ्यास के प्रश्न

8.9 सारांश

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

शिक्षण ज्ञान को अभिप्रेरित करने वाली संक्रियाओं की एक व्यवस्था है।यह एक प्रकार का अन्तःव्यक्तिगत प्रभाव है जो दूसरे व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन करने के उद्‌देश्य से किया जाता है। शिक्षण में निहित क्रियायें महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि ये ही अधिगम के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। शिक्षा सिद्धान्तों के विकास प्रक्रम में ही शिक्षण प्रतिमानों का भी विकास हुआ है। ये प्रतिमान शिक्षण योजना के प्रारुप हैं। इस इकाई में आप शिक्षण की अवस्थायें एवं उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में अध्ययनकर सकेंगे। शिक्षण की अवस्थायें स्पष्ट करने के साथ प्रमुख शिक्षण– सूत्रों एवं शिक्षण प्रतिमानों की प्रकृति को भी इस इकाई में उजागर किया गया है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- शिक्षण की अवस्थाएँ स्पष्ट कर सकेंगे
- शिक्षण प्रतिमान का अर्थ एवं विशेषताए बता सकेंगे
- शिक्षण प्रतिमानों के परिवारों का वर्णन कर सकेंगे

8.3 शिक्षण की अवस्थाएँ

शिक्षण की अवस्थायें एवं उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में अध्ययन से पूर्व शिक्षण के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। शिक्षण के सम्बन्ध में मौरीसन का विचार है– "शिक्षण एक अधिक परिपक्व व्यक्तित्व (शिक्षक) तथा अपेक्षाकृत कम परिपक्व व्यक्ति (शिक्षार्थी) के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क होता है जिससे शिक्षार्थी की शिक्षा अग्रसर होती है।" शिक्षण के सम्बन्ध में बी0 यू0 स्मिथ ने कहा है– "शिक्षण ज्ञान को अभिप्रेरित करने वाली संक्रियाओं की एक व्यवस्था है। अमेरिकन एजूकेशन रिसर्च एसोसिएशन द्वारा दी गई शिक्षण की निम्नांकित परिभाषा इसी मन्तव्य को प्रकट करती है–"शिक्षण एक प्रकार का अन्तःव्यक्तिगत प्रभाव है जो दूसरे व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन करने के उद्देश्य से किया जाता है।"

शिक्षण में निहित क्रियायें महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि ये ही अधिगम के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। जैक्सन (Philip W.Jakson) ने शिक्षण को तीन अवस्थाओं में विश्लेषित किया है–

8.3.1 प्रथम अवस्था (Stage I)– पूर्व क्रिया अवस्था (Pre-active stage)

यह शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था है, जब शिक्षण की योजना बनाई जाती है। कक्षा में जाने के पूर्व अध्यापक जो कुछ भी योजना छात्रों को पढ़ाने के लिए बनाता है वह सब पूर्व क्रिया अवस्था है। फिलिप्स डब्ल्यू जैक्सन ने इस अवस्था का महत्व बतलाते हुए यह कहा है कि "शिक्षक छात्रों को अनेक मौखिक उद्दीपन प्रदान करता हैं, व्याख्या करता है, प्रश्न करता है, उनकी अनुक्रियाओं को ध्यानपूर्वक सुनता है और उनका मार्गदर्शन करता है।"

अन्तर्निहित क्रियायें–संक्रियायें शिक्षक के वे क्रिया–कलाप हैं जो वह शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं में शिक्षण प्रक्रियाओं में शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी रुप से सम्पन्न करने हेतु करता है। इसमें निम्नलिखित क्रियायें सन्निहित होती हैं–

(i) उद्देश्यों का निर्धारण करना।

(ii) पाठ्यवस्तु के संदर्भ में निर्णय लेना।

(iii) पाठ प्रस्तुतीकरण की रीति विधि चयन।

(iv) शिक्षण की व्यूह रचना व अन्य युक्तियों का निर्णय करना।

(v) शिक्षण व्यूह रचनाओं का विकास करना।

8.3.2 द्वितीय अवस्था (Stage II)– अन्तर्क्रिया अवस्था (Interactive stage)

यह वह अवस्था है जब अध्यापक कक्षा में प्रवेश करता है और शिक्षार्थियों के मुखाभिमुख होता है और विषयवस्तु प्रस्तुतीकरण हेतु तत्पर होता हैं। अन्तःक्रिया एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य विषयवस्तु के स्तर पर सहकालिक एवं परस्पर अन्तःक्रिया होती है। इसमें वह व्यवहार सम्मिलित है जो शिक्षण के लिए अध्यापक करता है अर्थात् प्रश्न पूछना, व्याख्या करना, छात्रों के उत्तरों को सुनना आदि।

अन्तः क्रिया में ये तीनों तत्व इस प्रकार कार्यशील होते है, कक्षा में प्रवेश करते ही शिक्षक कक्षा व शिक्षार्थियों का प्रत्यक्षण करता है। उनकी अभिरुचियों या अभिप्रेरणात्मक स्वभाव का निदान अथवा कक्षा के आकार की अनुभूति करता है तथा तदनुकूल अनुक्रिया करता है। उसी प्रकार शिक्षार्थी भी शिक्षक का प्रत्यक्षण करता है उसके विषय पर अधिकार व उसकी शिक्षण योग्यता का निदान करता है तथा अनुक्रिया करता है। अन्तःक्रिया की प्रक्रिया में शिक्षक व शिक्षार्थी द्वारा व्यक्त भावनाएँ व संवेदनाएँ ही कक्षा का वातावरण सृजित करती हैं। यह वातावरण सकारात्मक या नकारात्मक दानों प्रकार का हो सकता है। अधिगम उद्देश्यों की सम्प्राप्ति या अप्राप्ति कक्षा–वातावरण से घनिष्ठतः सम्बन्धित है।

अन्तर्निहित क्रियायें– इसमें निमनलिखित क्रियायें सम्मिलित हैं–

(i) कक्षा का निरीक्षण करना।

(ii) छात्रों की उपलब्धियों का आंकलन–परीक्षण करना।

(iii) क्रिया एवं अनुक्रिया

8.3.3 तृतीय अवस्था (Stage III)– क्रिया पश्चात् अवस्था (Post active stage)

शिक्षण प्रक्रिया की तीसरी व अन्तिम अवस्था शिक्षणोत्तर अवस्था है जब शिक्षणोपरान्त शिक्षक कक्षा या शिक्षार्थियों के मुखाभिमुख नहीं होता, अर्थात् जब वह शिक्षण कर चुकता है और शिक्षण अधिगम क्रिया की प्रभावोत्पादकता की जाँच हेतु शिक्षार्थियों का मूल्यांकन करता है। इस अवस्था में शिक्षक पश्चावलोकन (Retropective) और अन्तर्निरीक्षण (Introspection) की मानसिक स्थिति में होता है जिसमें वह स्वयं द्वारा प्रयुक्त शिक्षण व्यूह रचना के प्रति शिक्षार्थियों की प्रतिक्रियाओं का मूल्यांकन करता है। इस हेतु वह अन्तःक्रियात्मक अवस्था में प्रकट घटनाओं या अनुक्रियाओं का प्रत्यास्मरण कर, उनके आधार पर औपचारिक या अनौपचारिक मूल्यांकन करता है जो उसकी भावी शिक्षण–प्रक्रिया में शिक्षार्थियों के वांछित व्यवहारगत परिवर्तन के उद्देश्यों के निष्पत्ति में रही कमियों के निराकरण एवं भावी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक संशोधन एवं सुधार करता है। मूल्यांकन से ज्ञात तथ्यों के आधार पर वह शिक्षार्थियों का निदान कर उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था भी करता है। शिक्षक की संवेदनशीलता इस अवस्था को बहुत प्रभावित करती है। यदि शिक्षक मानसिक दृष्टि से शिक्षण परिस्थिति के प्रति संवेदनशील नहीं है तो वह उन घटनाओं एवं प्रतिक्रियाओं की सूची नहीं बना सकता जो अधिगम लक्ष्यों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।"

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यह अवस्था पाठ की समाप्ति के बाद की है। इसे मूल्यांकन अवस्था कहा जा सकता है। कक्षा शिक्षण पर आधारित ज्ञान का आंकलन इसमें

किया जाता है। इसके लिए या तो मौखिक प्रश्न या लिखित प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

अन्तर्निहित क्रियायें—इसमें निम्नलिखित क्रियायें सम्मिलित हैं—

(i) व्यवहार परिवर्तन में निश्चित परिमाप का परिभाषीकरण

(ii) उपयुक्त परीक्षण प्रविधियों का चुनाव

(iii) शिक्षण नीतियों में परिवर्द्धन

8.4 शिक्षण प्रतिमान का अर्थ एवं विशेषताएँ

शिक्षण का मुख्य उद्देश्य अधिगम स्तर को उन्नत बनाना है। अधिगम स्तर को उन्नत बनाने के लिए ही अधिगम सिद्धान्तों का विकास किया गया, लेकिन सफलता नहीं मिली। अतः इनके स्थान पर शिक्षण सिद्धान्तों का विकास किया गया है, जो छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं। शिक्षा सिद्धान्तों के विकास प्रक्रम में ही शिक्षण प्रतिमानों का भी विकास हुआ है। ये प्रतिमान शिक्षण योजना के प्रारुप हैं।

शिक्षाशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण के सिद्धान्तों को विकसित करने के प्रयास किये हैं, लेकिन अभी तक कोई प्रारुप शिक्षण सिद्धान्तों का निकलकर नहीं आ पाया है। इसी विकास के क्रम में कुछ शिक्षण प्रतिमान अवश्य विकसित किये गये हैं।

बी0 आर0 ज्यॉसी का मत है— "शिक्षण प्रतिमान अनुदेशन प्रारुप है। इनमें विशेष उद्देश्य प्राप्ति के लिए विशिष्ट परिस्थिति का उल्लेख किया जाता है, जिसमें छात्र व शिक्षक मिलकर इस प्रकार कार्य करते हैं कि उनके व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके।"

"Teaching Model are just instructional designs, they describe the process of specifying and producing particular. Environmental situation which cause the student to interact in such a way that specific change occurs in his behaviour."

Brouce R.Joyce

हीमैन के अनुसार है— "शिक्षण प्रतिमान शिक्षण के बारे में सोचने—विचारने की एक रीति है जो वस्तु के अन्तर्निहित गुणों को परखने के लिए आधार प्रदान करती है। प्रतिमान किसी वस्तु को विभाजित एवं व्यवस्थित करके तार्किक रुप में प्रस्तुत करने की विधि है।"

"The model is a way to talk and think about instruction in which certain facts be organized, classified and interpreted."

Hyman

विल्ड के अनुसार— "किसी विशेष आदर्श या प्रारुप के अनुरुप व्यवहार तथा क्रिया को रुप प्रदान करने की प्रक्रिया ही प्रतिमान कहलाती है।"

"Teching model is a process to conform in behaviour and to direct ones action according to some particular design or ideals."

Wyld

डी0 सेक्को व क्रोफोर्ड का अभिमत— "शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण सिद्धान्त की सर्वोच्च प्रतिस्थापना है। शिक्षण प्रतिमान बताते हैं कि किस प्रकार अधिगम व शिक्षण परिस्थितियाँ परस्पर सम्बन्धित हैं।"

"The best substitute for a theory of teaching is a model of teaching. Teaching Model merely suggest how various teaching and learning conditions are inter-related."

John De Cecco Crawford

अतः स्पष्ट है कि–

1. प्रतिमान निर्देशात्मक प्रारुप है।
2. प्रतिमानों के द्वारा अधिगम सम्बन्धी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं।
3. प्रतिमान व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन लाने में सहायक हैं।
4. प्रतिमान ही कक्षा की क्रियाओं का निर्धारण करते हैं।

शिक्षण प्रतिमान की विशेषताएँ (Characteristics of Teaching Model)

1. इनका स्वरुप मनोवैज्ञानिक है क्योंकि ये वैयक्तिक विभिन्नताओं पर आधारित हैं।
2. ये छात्रों की रुचि का ध्यान रखते हैं।
3. ये शिक्षक को उपयुक्त अनुभव प्रदान करते हैं।
4. इससे शिक्षक की सामाजिक क्षमता में वृद्धि होती हैं।
5. इनका आधार चिन्तन है।
6. ये मानव की योग्यता के विकास में सहायक हैं।
7. ये आधारभूत प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में सहायक हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

1. शिक्षण की प्रथम अवस्था से आपका क्या अभिप्रायः है?

   ....

   ....

2. बी0 आर0 ज्यॉसी के अनुसार शिक्षण प्रतिमान को परिभाषित कीजिए।

   ....

   ....

8.5 शिक्षण प्रतिमान के तत्व (Elements)

शिक्षण प्रतिमान के निम्नलिखित चार तत्व होते हैं–

1. उद्देश्य (Focus)– शिक्षण प्रतिमान का उद्देश्य ही केन्द्र बिन्दु माना जाता हैं।

2. संरचना (Syntax)– इसके अन्तर्गत शिक्षण क्रियाओं एवं युक्तियों की व्यवस्था का क्रम निर्धारित किया जाता है जिससे सीखने की परिस्थितियाँ उत्पन्न होकर उद्देश्य की प्राप्ति की जा सके।

3. सामाजिक व्यवस्था (Social System)– चूँकि शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है, अतः इसके अन्तर्गत छात्र व शिक्षक की क्रियाओं और उनके आपसी सम्बन्धों का निर्धारण इसमें किया जाता है तथा अभिप्रेरण की विधियों पर भी मनन होता है।

4. संभरण व्यवस्था (Support System)–प्रतिमान में वे सभी सुविधायें व व्यवस्थायें होनी चाहिए जिनसे उपयुक्त प्रकार का कक्षा परिवेश सृजित हो सके।

8.6 शिक्षण प्रतिमानों के परिवार (Families of Teaching Model)

सम्पूर्ण शिक्षण प्रतिमानों को मुख्य रुप से पाँच वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

शिक्षण प्रतिमान

(1) ऐतिहासिक प्रतिमान (2) दर्शन प्रतिमान (3) मनोवैज्ञानिक प्रतिमान (4) अध्यापक शिक्षा (5) आधुनिक प्रतिमान

(1) ऐतिहासिक प्रतिमान (Socratis Model)

(i) सुकरात प्रतिमान (Socrates Model)

(ii) परम्परागत मानवीय प्रतिमान (Classical Humanistic Model)

(iii) व्यक्तिगत विकास प्रतिमान (Personal Development Model)

(2) दर्शन प्रतिमान (Philosophical Model)

(i) प्रभाव प्रतिमान (Impression Model)

(ii) अन्तर्दृष्टि प्रतिमान (Insight Model)

(iii) नियम प्रतिमान (Rule Model)

(3) मनोवैज्ञानिक प्रतिमान (Philosophical Model)

(i) मौलिक शिक्षण प्रतिमान (Basic Teaching Model)

(ii) कम्प्यूटर आधारित प्रतिमान (Computer Assisted Model)

(iii) विद्यालय अधिगम प्रतिमान (School Learning Model)

(iv) अन्तःप्रक्रिया प्रतिमान (Inter-action Model)

(4) अध्यापक शिक्षण प्रतिमान (Teacher Educational Model)

(i) तोबा का प्रतिमान (Toba's Model)

(ii) टर्नर का प्रतिमान (Turner's Model)

(iii) शिक्षक अभिविन्यास प्रतिमान (Teacher Orientation Model)

(iv) फॉक्स लिपिट प्रतिमान (Fox-Lippitt Model)

(5) आधुनिक प्रतिमान (Modern Model)– इसका वर्गीकरण इस प्रकार से है–

(अ) सामाजिक अन्तःक्रिया (Interaction) स्त्रोत :

(i) सामूहिक अन्वेषण प्रतिमान (Group Investigation Model)

(ii) जूरिस पोटेन्शियल प्रतिमान (Juris Potential Model)

(iii) सामाजिक अन्वेषण प्रतिमान (Social Inquiry Model)

(iv) प्रयोगशाला विधि प्रतिमान (Laboratory Method Model)

(ब) सूचना प्रक्रिया (Information Process) स्त्रोत :

(i) उपलब्धि प्रत्यय प्रतिमान (Concept Attainment Model)

(ii) आगमन प्रतिमान (Inductive Model)

(iii) पृच्छा प्रशिक्षण प्रतिमान (Inquiry Teaching Model)

(iv) जैविक विज्ञान पृच्छा प्रतिमान (Biological Science Inquiry Model)

(v) अग्रिम व्यवस्थापक प्रतिमान (Advance Organizer Model)

(vi) विकासात्मक प्रतिमान (Developmental Model)

(स) व्यक्तिगत (Personal) स्त्रोत :

(i) दिशा विहीन शिक्षण प्रतिमान (Non-directive Model)

(ii) कक्षा–प्रतिमान (Class-room Model)

(iii) सृजनात्मक शिक्षण प्रतिमान (Creative System Model)

(iv) जागरुकता प्रतिमान (Awareness Model)

(v) प्रत्यय व्यवस्था प्रतिमान (Conceptual System Model)

(द) व्यवहार परिवर्तन (Behavioural Modification) स्त्रोत :

अनुबन्ध प्रतिमान (Operant Conditioning Model)

(य) चार पदीय शिक्षण प्रतिमान (Four Stage Model of Instruction)

(i) पोषम एवं बेकर प्रतिमान (Posam and Backer Model)

(ii) सामान्य शिक्षण प्रतिमान (General Teaching Model)

(iii) तार्किक शिक्षण प्रतिमान (Logical Teaching Model)

8.7 कुछ प्रमुख शिक्षण प्रतिमान

(1) बुनियादी शिक्षण प्रतिमान (Basic Teaching Model)

(अ) कक्षा–कक्ष सम्मेलन शिक्षण–प्रतिमान (Class-room meeting teaching model)- इस प्रतिमान का विकास राबर्ट ग्लेसर (Robert Glasser) ने किया। इस प्रतिमान को बुनियादी शिक्षण प्रतिमान के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि यह शिक्षण क्रिया को बड़े ही सरल रूप से उपस्थित करता है। यह प्रत्यक्षीकरण के लिए भी पर्याप्त मात्रा में अवसर देता है।इसमें चार सोपान होते हैं –

1. अनुदेशन उद्देश्य (Intructional Objectives)
2. प्रदेशित व्यवहार (Entering behaviour)
3. अनुदेशन प्रक्रिया (Instructional Process)
4. निष्पत्ति मूल्यांकन (Porformance Evaluation)

1. **अनुदेशन उद्देश्य**– ये वे उद्देश्य हैं जिन्हें शिक्षण के द्वारा प्राप्त किया जाता है।
2. **प्रदेशित व्यवहार**– ये वे व्यवहार है जो अनुदेशन प्रारम्भ करने से पूर्व छात्र में विद्यमान होते हैं। इसके अन्तर्गत छात्र के पूर्व अनुभव, शैक्षिक स्तर, रूचियों, अभिवृत्तियाँ, आँकाक्षायें आदि आते है।
3. **अनुदेशन प्रक्रिया**–यह वह सोपान है जब अध्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न शैक्षणिक प्रविधियों का प्रयोग करता है तथा अधिगम को बोधगम्य व सरल बनाने का प्रयास करता है। यहाँ यह उद्देश्यों के अनुसार शिक्षण प्रारूप को अपनाता है, जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।
4. **निष्पत्ति मूल्यांकन**– इसके अन्तर्गत यह परीक्षण तथा निरीक्षण सम्मिलित होते है जिनका प्रयोग यह मानने के लिए किया जाता है कि छात्र ने किस सीमा तक उद्देश्यों की प्राप्ति की।

तत्व–

(1) **उद्देश्य/केन्द्र बिन्दु (Focus)-**इस प्रतिमान का उद्देश्य है–

(i) शैक्षिक उद्देश्यों को अनुदेशन उद्देश्यों में परिवर्तित करना।

(ii) व्यवहार में परिमार्जन करना।

(2) **संरचना (Syntax)-**इस प्रतिमान में 6 पद है–

(i) सक्रिय परिवेश का निर्माण करना (भय व बन्धन विहीन)

(ii) समस्या प्रस्तुतीकरण करना (छात्र या शिक्षण द्वारा)

(iii) मूल्यों का निर्माण करना (छात्र, अन्य छात्रों के व्यवहार के सम्बन्ध में निर्णय प्रस्तुत करना है।)

(iv) विकल्प चयन (समस्या समाधान के विकल्पों का निश्चित करना)

(v) निर्णय प्रक्रिया (छात्रों द्वारा समस्या समाधान हेतु निर्णय लेना)

(vi) अनुगमन कार्य (लिए गये निर्णय का अनुसरण (Follow up)करना।

(3) **सामाजिक व्यवस्था (Social System)-**

(i) यहाँ छात्र आपस में मिलकर सहयोग से समस्या का सृजन करते हैं तथा समाधान की खोज भी करते हैं।

(ii) इसमें छात्रों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(iii) इसमें छात्रों के आपसी सम्बन्ध अर्थ रखते हैं।

(iv) इसमें शिक्षक का कार्य केवल अनुकूल वातावरण की रचना करनी होती है।

(4) **संभरण व्यवस्था (Support System)-** इस प्रतिमान की सफलता के लिए–

(i) अध्यापक का व्यक्तित्व प्रेरणा प्रदान करने वाला होना चाहिए।

(ii) अध्यापक में आपसी समन्वय अच्छे बनाने की क्षमता का होना।

(iii) अध्यापक में कुशल नेतृत्व प्रदान करने की योग्यता का होना।

(5) **मूल्यांकन (Evaluation)-** इसमें ज्ञान व कौशल के मापन के लिए सभी उपयुक्त प्रविधियाँ का प्रयोग किया जाता है–

(6) **अनुप्रयोग (Application)-**

(i) यह छात्रों के व्यवहारों को समझने में संलग्न है।

(ii) यह छात्रों के आपसी व्यवहारों को समझाने में सहायक है।

(iii) इसके द्वारा व्यवहार परिवर्तन सरलता से प्राप्त किये जा सकते है।

(iv) इसके द्वारा छात्रों में उत्तरदायित्व निर्वाह की योग्यता का विकास होता है।

(2) अन्तःक्रिया शिक्षण का प्रतिमान (An Interaction Model of Teaching)

इसका विकास नेड ए0 फ्लेन्डर (Ned A Flander) ने किया था।इस प्रतिमान को सामाजिक अन्तःक्रिया प्रतिमान भी कहते हैं।

मान्यता–

(i) इस प्रतिमान की मान्यता है कि शिक्षण एक अन्तःप्रक्रिया है।

(ii) कक्षा का शाब्दिक व्यवहार सम्पूर्ण कक्षा व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् कक्षा में शिक्षक व छात्र के बीच ही अधिकांश व्यवहार होता है।

तत्व–

(1) उद्देश्य/केन्द्र बिन्दु (Focus)-इस प्रतिमान के उद्देश्य है–

(i) बोध स्तर के व्यवहारिक स्वरूप का अध्ययन करना।

(ii) कक्षा–व्यवहार का विश्लेषण करना।

(iii) सामाजिक, संवेगात्मक परिवेश में शिक्षक की अन्तःक्रिया का विश्लेषण करना।

(2) **संरचना (Syntax)- फ्लेन्डर (Flander) ने कक्षा व्यवहार को दो भागों में विभक्त किया है–**

(i) शाब्दिक (Verbal) सम्प्रेषण

(ii) अशाब्दिक (Non-Verbal) सम्प्रेषण

(3) व्यक्तिगत स्रोत प्रतिमान

(अ) अनिर्देशित शिक्षण (Non-Directive) प्रतिमान– इस प्रतिमान का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक कार्ल आर0 रोजर्स (Carl R. Rogers) द्वारा छात्र केन्द्रित चिकित्सा (Client Centered Therapy) के आधार पर किया गया है।

उद्देश्य (Focus)- यह छात्र केन्द्रित है।

(i) इसका उद्देश्य छात्र में आत्म–बोध, आत्म–चिन्तन, आत्म–खोज तथा स्वास्थ्य आदि विशेषताओं का विकास करना है।

(ii) छात्रों में ऐसी योग्यता उत्पन्न करना जिससे वे समस्या का समाधान स्वयं करें।

संरचना (Syntax)- इस प्रतिमान की संरचना के प्रमुख दो सोपान है–

(i) अध्यापक द्वारा अपेक्षित वातावरण सृजित करना।

(ii) समूह अथवा व्यक्तिगत उद्देश्यों का विकास करना।

उपरोक्त दोनों सोपानों के कार्यान्वयन हेतु प्रत्येक छात्र की भागेदारी महत्वपूर्ण है जिससे उसमें आत्मविश्वास जगे तथा विचारों की अन्तःक्रिया कर सकें।

सामाजिक व्यवस्था (Social System)-

(i) इसमें छात्र अपना उत्तरदायित्व स्वयं समझते हैं।

(ii) शिक्षा एक परामर्शदाता के रुप में कार्य करता है।

(iii) छात्र अधिगम क्रियाओं में भाग लेकर अनुभवों से स्वयं सीखते हैं।

संभरण व्यवस्था (Support System)– इसमें शिक्षक का कोई निर्देशन नहीं होता है। छात्र स्वयं अपने अधिगम की योजना बनाते हैं।

मूल्यांकन (Evaluation)– जीवन की समस्याओं के समाधान की भी जाँच निबन्धात्मक परीक्षाओं द्वारा की जाती है।

अनुप्रयोग (Application)– यह छात्रों में आत्मविश्वास, आत्म–चिन्तन, आत्म–निर्णय आदि योग्यताओं को विकसित करने में सहायक होती है।

1. यह पुनर्बलन व पृष्ठ पोषण पर बल देता है।
2. छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।
3. छात्र अपने मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकासों में समन्वय स्थापित कर सकता है।

(4) सूचना प्रक्रिया प्रतिमान (Information Process Model)

(अ) प्रत्यय निष्पत्ति प्रतिमान (Concept Attainment Model)–इसका विकास जे0 ब्रूनर ने किया था।इसे सूचना प्रक्रिया प्रतिमान भी कहा जाता है।

तत्व–

(1) उद्देश्य (Focus)–इस प्रतिमान के उद्देश्य है–

(i) भाषा का बोध करना।

(ii) कौशल का विकास करना।

(iii) आगमन–तर्क (Inductive Reasoning) का विकास करना।

संरचना (Syntax)– इसमें चार पद होते है–

(i) प्रथम पद–इसमें प्रदत्तों (Inductive Reasoning) का विकास करना।

(ii) द्वितीय पद–इस पद के अन्तर्गत छात्र प्रत्यय का विश्लेषण करता है।

(iii) तृतीय पद–इसमें प्रत्ययों के विश्लेषण को लिखित रुप में प्रस्तुत करता है। इससे ज्ञान में वृद्धि होती है।

(iv) चतुर्थ पद–इस पद के अन्तर्गत छात्र प्रत्यय विकास के लिए अभ्यास करता है।

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)– प्रारम्भ में अध्यापक, छात्रों को प्रोत्साहित (Motivate) करता है। इससे छात्र अपने प्रत्ययों व व्यूह विश्लेषण करना शुरु कर देते है। विश्लेषण के परिणामस्वरुप छात्र प्रभावशाली एवं ब्यूह रचना को चुन लेता है।

(4) मूल्यांकलन (Support System)– (i) इस प्रतिमान की विशेषता यह है कि पाठ्यवस्तु को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है कि प्रत्ययों का बोध सरलता से हो जाए। इसमें लिए ब्यूह रचना (Strategy) इस प्रकार की बनाई जाती है कि नये प्रत्ययों का ज्ञान हो सके।

(ii) इसमें लिखित परीक्षाएँ अधिक उपयोगी होती है। इस संदर्भ में निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं

(5) अनुप्रयोग (Support System)–(i) जब अध्यापक किसी तथ्य का अपने शिक्षण द्वारा सही–सही ज्ञान नहीं करा पात हैं तब इस प्रतिमान का प्रयोग करते हैं।

(ii) इसका भाषा सीखने में प्रयोग होता है।

(iii) इसका प्रयोग प्रत्यय–निष्पत्ति के लिए भी प्रायः किया जाता है।

(iv) इसका प्रयोग दूरदर्शन पर भी किया जाता है।

(5) वर्ग–सूचना प्रक्रिया प्रतिमान

(अ) अग्रिम संगठन (Advance Organizer) प्रतिमान– इस प्रतिमान का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक डेविड ऑसुबेल (David Aasubel) ने किया था। इसका विकास सार्थक मौखिक अधिगम सिद्धान्त के आधार पर किया। इसमें उसने विषयवस्तु तथा मानसिक प्रक्रिया दानों को मिलाया।

(1) लक्ष्य (Focus)–इस प्रतिमान का मुख्य उद्‌देश्य छात्रों के ज्ञानात्मक पक्ष को विकसित कर संप्रत्ययों एवं तथ्यों का बोध कराना है।

(2) संरचना (Syntax)– इसमें दो पद (सोपान) अपनाये जाते हैं––

(i) सामान्य रुप में।

(ii) विशिष्ट रुप में।

(3) सामाजिक प्रणाली (Social System)– (i) अमूर्त विचारों को प्रभावशाली रीति से प्रस्तुत किया जाता है।

(ii) छात्रों द्वारा जिस पाठ्‌यवस्तु का विश्लेषण पहले किया होता है, उससे सम्बन्ध स्थापित कर नवीन ज्ञान प्रदान किया जाता है।

(iii) इससे शिक्षक–छात्र के मध्य अन्तःक्रिया होती है।

(iv) इसमें छात्र की तुलना में शिक्षक अधिक क्रियाशील रहता है।

(4) संभरण (Support System)–सुसंगठित विषयवस्तु जटिल होती है। इस प्रतिमान की विशेषता यह रहती है कि संगठक तथा कक्षा–कक्ष परिस्थितियों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, जिसमें अध्यापक व छात्र आमने–सामने रहकर शिक्षण कार्य करते है।

(5) मूल्यांकन प्रणाली (Evaluation)–अनुदेशन के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए मौखिक, वस्तुनिष्ठ तथा निबन्धात्मक परीक्षाओं का उपयों किया जाता है।

(6) अनुप्रयोग (Application)–

(i) किसी भी विषय के शिक्षण में सहायक।

(ii) मौखिक अभिव्यक्ति के विकास जैसे भाषा शिक्षण में विशेष रुप से सहायक।

(iii) अधिगम स्थानान्तरण (Transfer of Training) में सहायक।

(iv) छात्रों में समस्या समाधान की योग्यता विकसित करने में सहायक।

(v) ज्ञानात्मक पक्ष के उच्च स्तर के उद्‌देश्यों की प्राप्ति में सहायक।

(vi) अमूर्त विषयवस्तु के शिक्षण में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(vii) इसके द्वारा अध्यापक ज्ञान के विश्लेषण के उच्चतम शिखर तक व्याख्यान प्रणाली का प्रयोग करते हुए पहुँच सकता है।

8.8 चर्चा के बिन्दु

शिक्षण की अवस्थाओं पर प्रकाश डालिए।

8.9 अभ्यास के प्रश्न

विभिन्न शिक्षण सूत्रों को स्पष्ट कीजिए।

8.10 सारांश

शिक्षण की अवस्थायें एवं उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में अध्ययन से पूर्व शिक्षण के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। शिक्षण ज्ञान को अभिप्रेरित करने वाली संक्रियाओं की एक व्यवस्था है।शिक्षण में निहित क्रियायें महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि ये ही अधिगम के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। शिक्षण को तीन अवस्थायें होती हैं।शिक्षण का मुख्य उद्देश्य अधिगम स्तर को उन्नत बनाना है। अधिगम स्तर को उन्नत बनाने के लिए ही अधिगम सिद्धान्तों का विकास किया गया, लेकिन सफलता नहीं मिली। अतः इनके स्थान पर शिक्षण सिद्धान्तों का विकास किया गया है, जो छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं। शिक्षा सिद्धान्तों के विकास प्रक्रम में ही शिक्षण प्रतिमानों का भी विकास हुआ है। ये प्रतिमान शिक्षण योजना के प्रारुप हैं।

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. यह शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था है, जब शिक्षण की योजना बनाई जाती है। कक्षा में जाने के पूर्व अध्यापक जो कुछ भी योजना छात्रों को पढ़ाने के लिए बनाता है वह सब पूर्व क्रिया अवस्था है।इसमें उद्देश्यों का निर्धारण करना,पाठ्यवस्तु के संदर्भ में निर्णय लेना,पाठ प्रस्तुतीकरण की रीति विधि चयन,शिक्षण की व्यूह रचना व अन्य युक्तियों का निर्णय करना, तथा शिक्षण व्यूह रचनाओं का विकास करना सन्निहित होती हैं।
2. बी0 आर0 ज्यॉसी का मत है– "शिक्षण प्रतिमान अनुदेशन प्रारुप है। इनमें विशेष उद्देश्य प्राप्ति के लिए विशिष्ट परिस्थिति का उल्लेख किया जाता है, जिसमें छात्र व शिक्षक मिलकर इस प्रकार कार्य करते हैं कि उनके व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके।"

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Batten, T.R. (1999). Training for Community Development: A Critical Study of Method, London: Oxford University Press.
- Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.
- Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.
- Mishra, D.C. (2008). Essentials of Educational Technology & Management,Sahitya Publication, Agra.
- Mishra, R.M. (2007). Essentials of Educational Technology & Management, Alok Publication, Lko.

- Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
- Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

इकाई—9

नेतृत्व एवं शिक्षक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका

संरचना—

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 नेतृत्व का अर्थ, महत्व एवं आवश्यकता

9.4 नेतृत्व का कार्य—क्षेत्र एवं विशेषताएँ

9.5 नेतृत्व के मार्ग में बाधाएँ

9.6 शिक्षक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका

9.7 चर्चा के बिन्दु

9.8 अभ्यास के प्रश्न

9.9 सारांश

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

आदिकाल से आज तक शिक्षक की भूमिकाएँ बदलती तथा बढ़ती रही हैं, क्योंकि शिक्षा के उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक समय में शिक्षक को अनेक भूमिकाओं को निभाना होता है। इन भूमिकाओं को निभाने के लिये अध्यापक में उन सभी गुणों का होना आवश्यक है जो शिक्षण कार्य की सफलता और बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायक होते है। विकासशील एवं लोकतन्त्रीय राष्ट्रों की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था हेतु मौलिकता एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शिक्षा पद्धति का होना परम आवश्यक है। शिक्षा जगत में सुधार करने हेतु शिक्षा पद्धति में परिवर्तन एवं संशोधन करने के साथ—साथ सुदृढ़ नेतृत्व की भी आवश्यकता होती है।इस इकाई में आप शैक्षिक नेतृत्व की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित होंगे। साथ ही अध्यापक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका को भी पहचान पायेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- नेतृत्व की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे
- नेतृत्व का अर्थ बता सकेंगे
- शिक्षक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका का उल्लेख कर सकेंगे।

9.3 नेतृत्व का अर्थ, महत्व एवं आवश्यकता

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व की आवश्यकता होती है क्योंकि नेतृत्व के अभाव में अनियन्त्रित एवं उच्छृंखल व्यवस्था ही बनी रहती है। अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा का क्षेत्र भी समाज कल्याण में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। शैक्षिक क्षेत्र में योग्य नेतृत्व प्राप्त होने पर शिक्षा का स्तर उच्च शिक्षा में विकसित होता चला जाता है।आधुनिक युग में शिक्षा का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन व्यापक होता जा रहा है। शैक्षिक क्षेत्र में निदेशक, उपनिदेशक, विद्यालय निरीक्षक, प्रधानाध्यापक, विभागाध्यक्ष एवं कुछ वरिष्ठ शिक्षकों को प्रशासन के रूप में अपने–अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। शैक्षिक क्षेत्र में प्रशासकों को ही नेता के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतः इन समस्त व्यक्तियों को शिक्षा एवं विद्यालय से सम्बन्धित समस्याओं की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। शिक्षण पद्धति, पाठ्य–पुस्तक, पाठ्यक्रम, अध्यापक व्यवहार इत्यादि को भी प्रशासकों को समुचित जानकारी होनी चाहिए। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उपर्युक्त समस्त बातों का पूर्ण ज्ञान होने पर एवं प्रख्यात होने पर कोई भी व्यक्ति एक सफल एवं उत्तम प्रशासक बनने हेतु शैक्षिक नेतृत्व की शक्ति को प्राप्त कर सकता है ? अन्य क्षेत्रों के समान शैक्षिक क्षेत्र में शैक्षिक नेतृत्व की परम आवश्यकता होती है। शैक्षिक नेतृत्व आकर्षक, प्रभावी एवं अनेक गुणों से युक्त होता है। शैक्षिक नेतृत्व का आधार व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न गुणों एवं अर्जित योग्यताओं को माना जाता है। व्यक्ति समाज में रहकर अनुकूल परिस्थितियों के प्राप्त होने पर और आन्तरिक अभिप्रेरणा से प्रोत्साहित होकर स्वयं में ऐसे गुणों को विकसित कर लेता है कि समाज के व्यक्ति उसे नेता स्वीकार करने हेतु विवश हो जाते हैं। शैक्षिक क्षेत्र में यही प्रक्रिया शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करती है।

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में किसी विशेष व्यक्ति का सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला व्यवहार जो व्यक्तिगत एवं प्राप्त गुणों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहलाता है। कार्यकुशलता, सद्भावना इत्यादि का शैक्षिक नेतृत्व में विशेष महत्व होता है। शैक्षिक नेतृत्व में बौद्धिक कुशाग्रता, कल्पना, नैतिक जागरूकता, आत्मनिर्भरता, आदर्श चरित्र, सन्तुलित स्वभाव, जनसम्पर्क, लोकप्रियता, प्रभावशीलता, शारीरिक गठन, उत्तरदायित्व निर्वाह, संयम, सेवा–भावना, सहयोग में विश्वास, भावात्मक स्थायित्व, नियमों और कानून का ज्ञान, सृजनात्मक योग्यता की अधिकता, समस्याओं से अवगत होना, व्यक्तियों की योग्यता की पहचान इत्यादि गुणों का होना आवश्यक है। शैक्षिक नेतृत्व पर ही विद्यालयों के प्रशासन एवं पर्यवेक्षण से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों की सफलता आधारित होती है।

नेतृत्व का महत्व (Importance of Leadership)-

व्यक्ति को समाज में यश प्राप्त करने हेतु कठोर परिश्रम करने के साथ ही स्वयं में अनेक गुणों को भी विकसित करना पड़ता है। शैक्षिक क्षेत्र एवं शिक्षण संस्थाओं में नेतृत्व कार्य का निर्वाह संयम, सेवा भावना, सहयोग में विश्वास, भावात्मक स्थायित्व, नियमों एवं कानूनों का ज्ञान होना आवश्यक है। शैक्षिक नेतृत्व करने वाले व्यक्ति अर्थात् शिक्षक को चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ आयें, वह उन सभी का सामना करते हुए भी अपना पद छोड़ने को तैयार नहीं होता है क्योंकि वह इस बात को भली–भाँति जानता है कि नेतृत्व पद के कारण शिक्षकों, शिक्षार्थियों एवं अभिभावकों के मध्य सम्मान में वृद्धि हुई है। शैक्षिक नेतृत्व का महत्व निम्नलिखित दृष्टियों से है–

(1) शैक्षिक नेतृत्व से व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

(2) नेता को आत्मिक सुख एवं सन्तोष की अनुभूति होती है।

(3) शैक्षिक नेतृत्व की उत्तमता से नेता की लोकप्रियता में वृद्धि होती है।

(4) नेतृत्व गौरव की अनुभूति में सहायक होता है।

(5) शैक्षिक नेतृत्व शिक्षण संस्थाओं की चहुँमुखी उन्नति में सहायक होता है।

(6) समाज की उन्नति के लिए भी नेतृत्व आवश्यक है।

नेतृत्व की आवश्यकता (Need of Leadership)

किसी देश की प्रगति का मूलाधार शिक्षा है और समाजोपयोगी एवं उत्तम शिक्षा का व्यवस्था शैक्षिक नेतृत्व के अभाव में असम्भव है। शिक्षकों, शिक्षार्थियों एवं अभिभावकों की कार्यक्षमता को समुचित दिशा प्रदान करने हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शैक्षिक नेतृत्व की आवश्यकता निम्न कारणों से है –

(1) सामूहिक कार्यक्रमों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु

(2) सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल का विकास करने हेतु

(3) नियोजन, व्यवस्था एवं संलग्नता की सफलता के लिए

(4) सामाजिकता और सामाजिक कार्य में पहल की प्रवृत्ति विकसित करने हेतु

9.4 नेतृत्व का कार्य–क्षेत्र एवं विशेषताएँ

नेतृत्व के कार्य–क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने शैक्षिक नेतृत्व का कार्य–क्षेत्र अलग–अलग बताया है। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा बताये गये शैक्षिक नेतृत्व के कार्य–क्षेत्र का उल्लेख अग्रानुसार है–

रेम्से एवं अन्य में शैक्षिक नेतृत्व को निम्न नौ क्षेत्रों में बाँटा है–(1) कार्यों हेतु उद्देश्यों को निर्धारित करना। (2) नीति निर्धारण करना। (3) कार्यों का निर्धारण करना। (4) प्रशासकीय प्रारूप एवं कार्यों में सम्बन्धी स्थापित करना। (5) प्रभाव का मूल्यांकन करना। (6) शिक्षा के विकास के लिए सामाजिक नेतृत्व के साथ मिलकर कार्य करना। (7) समाज के शैक्षिक साधनों का सदुपयोग करना। (8) समाज के व्यक्तियों का सहयोग अर्जित करना। (9) शैक्षिक कार्यों में सहायक व्यक्तियों के साथ विचार–विनिमय करना।

ग्रेग महोदय ने शैक्षिक नेतृत्व के निम्न कार्य बताये है–(1) निर्णय लेना, (2) योजना का निर्माण करना, (3) व्यवस्था करना, (4) विचार–विनिमय करना, (5) प्रभाव डालना, (6) समन्वय स्थापित करना, (7) मूल्यांकन करना।

नेतृत्व की विशेषताएँ

आज हमारे देश में शिक्षण संस्थाओं की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षा विभागों का उचित संचालन ही योग्य शिक्षक का नेतृत्व होना साबित करता है। शिक्षण संस्थाओं के समुचित संचालन के लिए शैक्षिक नेतृत्व में निम्न गुण होने चाहिए–

(1) प्रभावशाली व्यक्तित्व– प्रभावशाली व्यक्तित्व से आशय है कि अच्छा नेता दृढ़ इच्छा–शक्ति वाला, आत्म– विश्वासी, चरित्रवान, कर्तव्यनिष्ठ और निरोग होता है।

उसके गुणों एवं उत्तम आदतों का प्रभाव सहकर्मियों पर इतना गहन पड़ता है कि उसकी समस्त रूचियाँ तथा अभिरूचियाँ ही सहकर्मियों को रूचियाँ या अभिरूचियाँ बन जाती है। उत्तम आदतों के सम्बन्ध में रिस्क ने लिखा है, "जो नेता उत्तम वैवाहिक गुणों का परिश्रम, आत्म–नियन्त्रण, सन्तुलन आदि का उदाहरण प्रस्तुत करता है, वह सहकर्मियों को उत्तरदायित्व एवं आत्म नियन्त्रण एवं मूल्यवान आदर्शों का निर्माण करने में महत्वपूर्ण सहयोग देता है।" एक उत्तम व्यक्तित्व में निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है–निरीक्षण शक्ति, भाषण पटुता, चरित्र, श्रैर्य, सहानुभूति, प्रेम, प्रसन्नता, नैतिक बल एवं अध्ययन में रूचि रखना।

(2) आदर्श चरित्र– आदर्श चरित्र शैक्षिक नेतृत्व की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। मानव जीवन में चरित्र के महत्व को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि चरित्र के कारण ही मनुष्य पशु से उच्च माना जाता है। अरस्तू के अनुसार, "हमारा चरित्र हमारे आचरण का प्रतिफल है।" इस्माइल के शब्दों, "कर्त्तव्यपरायणता की भावना ही चरित्र को सुशोभित करने वाला मुकुट है।" बरट्रेण्ड रसेल ने, "चरित्र के अन्तर्गत निम्नलिखित गुणों को समाविष्ट किया है– साहस, संवेदनशीलता, बुद्धि व पौरूष। सामान्यतः चरित्र में सत्यवादिता, ईमानदारी, निष्पक्षता, न्यायप्रियता, शिष्ठता, सामाजिकता आदि गुणों को सम्मिलित किया जाता है।

(3) निष्पक्ष, वैज्ञानिक एवं उदार दृष्टिकोण– शैक्षिक नेता का दृष्टिकोण निष्पक्ष, वैज्ञानिक एवं उदार होना चाहिए। आज के वैज्ञानिक युग में प्रमाण एवं तर्क के आधार पर ही किसी तथ्य को स्वीकार किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में यह अपने सहकर्मियों के दृष्टिकोण को व्यापक एवं वैज्ञानिक नहीं बना सकता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ ही उदार दृष्टिकोण होना भी परम आवश्यक है। उदार दृष्टिकोण से ही वह अपने सहयोगियों में प्रेम, सहानुभूति इत्यादि गुणों का विकास कर सकता है।

(4) उत्तरदायित्व निर्वाह एवं कार्य में पहल करने की क्षमता– शैक्षिक नेता कर्त्तव्य–परायण एवं परिश्रमी होना चाहिए। उसका चेहरा सदैव प्रसन्न दिखायी देना चाहिए। प्रत्येक कार्य में पहल करने की क्षमता भी शैक्षिक नेता में होनी चाहिए। शैक्षिक नेता की इन विशेषताओं का प्रभाव उसके सहयोगियों पर पड़ता है।

(5) आत्म–विश्वासी– शैक्षिक नेता में आत्म–विश्वास होने पर ही वह कठिन कार्यों को सरलता से कर लेता है। स्वयं पर विश्वास करने वाला नेता ही सफल होता है।

(6) संस्थागत योजना का महत्व– संस्थागत योजना के अन्तर्गत संस्था के चहुँमुखी विकास हेतु आवश्यक गुण सम्मिलित होते है। इस योजना में भौतिक साधनों की तुलना में मानव साधनों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। संस्थागत योजना में नेता एवं अन्य व्यक्तियों के प्रयास एवं परामर्श को समाविष्ट किया जाता हैं तथा स्थानीय समुदायों का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त किया जाता है। इसलिए संस्थागत योजना को बनाने एवं क्रियान्वित करने में शैक्षिक नेता को दक्ष होना चाहिए।

(7) मानवीय सम्पर्क कला में दक्ष– शैक्षिक नेता के लिए मानवीय सम्पर्क कला में दक्ष होना भी नितान्त आवश्यक है। अन्य व्यक्ति नेता के व्यवहार से प्रसन्न रहने चाहिए। स्नेह एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार सदैव मानवी सम्बन्धों को मधुर बनाता है। अतः नेता को समस्त व्यक्तियों से सहयोग एवं परामर्श लेना चाहिए। प्रधानाचार्य की व्यवहारिक क्षमता में शिक्षकों, शिक्षार्थियों एवं अभिभावकों के सहयोग में निरन्तर वृद्धि होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–**क**– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

ख –इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. नेतृत्व की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

....

....

2. ग्रेग महोदय ने शैक्षिक नेतृत्व के कौन–कौन से कार्य बताये है ?

....

....

9.5 नेतृत्व के मार्ग में बाधाएँ

नेतृत्व के मार्ग में आने वाली बाधाएँ अथवा शैक्षिक नेतृत्व की असफलताओं के प्रमुख कारण निम्न हैं :–

(1) अशिक्षित व्यक्तियों का विद्यालयों पर नियन्त्रण,

(2) अपर्याप्त धन एवं स्रोतों का अभाव,

(3) राजनीतिक प्रभाव,

(4) शिक्षा विभाग के नियमों एवं कानूनों की अधिकता,

(5) संस्थागत ईर्ष्या,

(6) शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों का मात्र अधिकारों के प्रति सचेत होना,

(7) परस्पर गुटबन्दी।

9.6 शिक्षक की कक्षा, विद्यालय तथा समुदाय में भूमिका

आदिकाल से आज तक शिक्षक की भूमिकाएँ बदलती तथा बढ़ती रही हैं, क्योंकि शिक्षा के उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होता रहा है। शिक्षक की तीन भूमिकाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं–

1. एक दार्शनिक (Philosopher) के रूप में शिक्षक की पाठ्यवस्तु का स्वामित्व होना चाहिए तथा उसे अपने विषय का अद्यतन ज्ञान होना भी आवश्यक है।
2. एक मित्र (Friend) के रूप में शिक्षक को छात्रों के प्रति सहानुभूति तथा सहयोग की भावना रखनी चाहिए, जिससे यह छात्रों की समस्याओं का समाधान तथा सहायता कर सके।
3. एक निर्देशक (Guide) के रूप में शिक्षक की छात्रों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन भी प्रदान करना चाहिए।

आधुनिक समय में शिक्षक को अनेक भूमिकाओं का निर्याह करना होता है। यह प्रमुख भूमिकायें इस प्रकार है–

1. प्रस्तुतकर्ता (Presenter) कक्षा में पाठ्यवस्तु का शिक्षक प्रस्तुतीकरण प्रत्येक परिस्थिति में करता है। यह भूमिका सार्वभौमिक होती है।

2. सम्प्रेषक (Communicator) शिक्षक कक्षा में पाठ्यवस्तु का शाब्दिक सम्प्रेषण करता है और मुख्य माध्यम का उपयोग करता है।

3. अन्तः प्रक्रियाकर्ता प्रजातंत्र में शिक्षक द्वारा कक्षा में शाब्दिक तथा आशाब्दिक अन्तः प्रक्रिया की जाती है। यह छात्रों को भी क्रियाशील रखता है।

4. एक प्रबन्धक (Manager) इस भूमिका में शिक्षक को अपने शिक्षण का प्रबन्धन स्वयं करना पड़ता है। शिक्षण का नियोजन, व्यवस्था, अग्रसरण तथा नियन्त्रण करना होता है। छात्र का सुधार तथा विकास शिक्षक को ही करना होता है।

5. एक परीक्षक (Manager) शिक्षण तथा परीक्षण की क्रियाओं का सम्पादन शिक्षक को ही करना होता है। परीक्षण का उत्तरादायित्व शिक्षक का भी होता है। इस भूमिका के अन्तर्गत शिक्षक को निम्नलिखित विशिष्ट क्रियायें करनी होती हैं –

   (अ) शिक्षक प्रश्न–पत्र का निर्माण करता है तथा आवश्यकतानुसार उसमें सुधार भी करता है।

   (ब) प्रश्न–पत्र का प्रशासन भी करता है तथा छात्रों को उन्हें सरल करने के लिए देता है।

   (स) छात्रों के उत्तरों का अंकन करता है और उनका अर्थापन करता है। शिक्षक द्वारा छात्रों का प्राप्तांक के आधार पर स्तरीकरण किया जाता है।

   (द) छात्रों के उत्तरों के आधार पर निदान करता है और छात्रों की त्रुटियों के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करता है, जिसे अनुवर्ग शिक्षण भी कहते है। यह अनुवर्ग शिक्षक का भी कार्य करता है।

6. एक अनुसंधानकर्ता (Researcher) इस भूमिका के अन्तर्गत शिक्षक को छात्रों की समस्याओं का समाधान वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक ढ़ंग से करना होता है जिसे शिक्षक अपनी शिक्षण की प्रक्रिया से सुधार करके उन्नत करता है। इसके लिए शिक्षक को क्रियात्मक अनुसंधान के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। शिक्षक का क्षेत्र उसके शिक्षण विषय तथा कार्यक्षेत्र तक सीमित होता है प्रत्येक छात्र क्रियात्मक अनुसंधान का उपयोग कर सकता है। इसके लिए निम्नांकित सोपानों का अनुकरण किया जाता है–

   (अ) कक्षा शिक्षण में समस्या को पहचानना तथा उसकी परिभाषा करना।

   (ब) समस्या सम्बन्धी कारणों को ज्ञात करना।

   (स) कारणों के आधार पर क्रियात्मक परिकल्पना का प्रतिपादन करना।

   (द) क्रियात्मक परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु प्रारूप विकसित करना।

(य) प्रारूप के क्रियान्वयन से प्रदत्तों का संकलन करना।

(र) प्रदत्तों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालना।

7. मूल्यों को मन में बैठाना (Inculcation of Value) मूल्यों के बिना शिक्षा सार्थक नहीं होती है। मूल्यों का शिक्षण नहीं किया जा सकता तथा इन्हें छात्र सीख भी नहीं सकता है, अपितु मूल्यों को शिक्षक छात्रों के मन में बैठाता है। इस प्रकार शिक्षक मूल्यों को मन में बैठाने (inculcator) का कार्य करता है और छात्र मूल्यों को आत्मसात (imbile) करता है। शिक्षक के लिए यह भूमिका अधिक चुनौतीपूर्ण होती है। इसके लिए शिक्षक को एक आदर्श शिक्षक होना आवश्यक होता है। सभी यह छात्रों के मन में मूल्यों को बैठाने में सफल हो सकता है। छात्र मूल्यों को आत्मसात करते हैं।

8. एक निर्देशन तथा परामदर्शदाता (a guider and councellor) शिक्षक को छात्रों को भावी जीवन हेतु शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन भी देना होता है। छात्र अक्सर शिक्षक से भावी जीवन हेतु परामर्श लेते है और उसी के अनुसार भायी जीवन के लिए निर्णय लेते हैं। शिक्षक छात्रों की व्यक्तिगत समस्याओं में भी परामर्श देता है। जब छात्रों का पढ़ने में मन नहीं लगता है तो अधिक समय तक पढ़ने पर सिर में दर्द होने लगता है। इन समस्याओं के लिए आँखों के परीक्षण का सुझाव देता है। चश्मे के उपयोग से छात्र की कठिनाई दूर हो जाती है। इसी प्रकार सुनने में कठिनाई भी होती है। शिक्षक को परामर्शदाता की भूमिका का भी निर्वाह करना होता है। शिक्षक की यह भूमिका छात्र के लिए अधिक महत्वपूर्ण होती है कि यह गरीब छात्रों को विद्यालय से आर्थिक सहायता दिलाने में सहयोग प्रदान करता है तथा यह छात्रों से अधिक सहानुभूति भी रखता है।

9.7 चर्चा के बिन्दु

विद्यालय परिवेश में कुशल नेतृत्व की महत्ता का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

9.8 अभ्यास के प्रश्न

“आधुनिक शिक्षक को बहुआयामी भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है।” स्पष्ट कीजिए।

9.9 सारांश

अन्य क्षेत्रों के समान शैक्षिक क्षेत्र में शैक्षिक नेतृत्व की परम आवश्यकता होती है। शैक्षिक नेतृत्व आकर्षक, प्रभावी एवं अनेक गुणों से युक्त होता है। शैक्षिक नेतृत्व का आधार व्यक्त्वि सम्बन्धी विभिन्न गुणों एवं अर्जित योग्यताओं को माना जाता है।शैक्षिक क्षेत्र में योग्य नेतृत्व प्राप्त होने पर शिक्षा का स्तर उच्च शिक्षा में विकसित होता चला जाता है। शैक्षिक क्षेत्र में निदेशक, उपनिदेशक, विद्यालय निरीक्षक, प्रधानाध्यापक, विभागाध्यक्ष एवं कुछ वरिष्ठ शिक्षकों को प्रशासन के रूप में अपने–अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। आदिकाल से आज तक शिक्षक की भूमिकाएँ बदलती तथा बढ़ती रही हैं, क्योंकि शिक्षा के उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक समय में शिक्षक को अनेक भूमिकाओं को निभाना होता है। इन भूमिकाओं को निभाने के लिये अध्यापक में उन सभी गुणों का होना आवश्यक है जो शिक्षण कार्य की सफलता और बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायक होते है।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. नेतृत्व की आवश्यकता निम्न कारणों से है –
   (1) सामूहिक कार्यक्रमों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु
   (2) सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल का विकास करने हेतु
   (3) नियोजन, व्यवस्था एवं संलग्नता की सफलता के लिए
   (4) सामाजिकता और सामाजिक कार्य में पहल की प्रवृत्ति विकसित करने हेतु
2. ग्रेग महोदय ने शैक्षिक नेतृत्व के निम्न कार्य बताये है–(1) निर्णय लेना, (2) योजना का निर्माण करना, (3) व्यवस्था करना, (4) विचार–विनिमय करना, (5) प्रभाव डालना, (6) समन्वय स्थापित करना, (7) मूल्यांकन करना।

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Batten, T.R. (1999). Training for Community Development: A Critical Study of Method, London: Oxford University Press.
- Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.
- Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.
- Mishra, D.C. (2008). Essentials of Educational Technology & Management,Sahitya Publication, Agra.
- Mishra, R.M. (2007). Essentials of Educational Technology & Management, Alok Publication, Lko.
- Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
- Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड – 4

आकलन एवं विद्यालय प्रणाली का सिंहावलोकन

इकाई – 10 **169**

विद्यालय मूल्यांकन में संकल्पनाएं

इकाई – 11 **175**

शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

इकाई – 12 **183**

निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. के. एन. सिंह. — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 पी0 के0 पाण्डेय — प्रभारी निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 सुषमा पाण्डेय — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग डी0डी0यू0 विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो0 रजनी रंजन सिंह — आचार्य, विशेष शिक्षा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 जी0 के0 द्विवेदी — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 दिनेश सिंह — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ नीलम बंसल — प्रवक्ता,
विशेष शिक्षा कम्पोजिटिंग रिजनल सेन्टर (CRC), लखनउफ
(इकाई 1,2,3,4,5,6)

डॉ नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता
विशेष शिक्षा, शिक्षा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(इकाई 7,8,9,10,11,12,13,14,15)

सम्पादक

प्रो0. योगेन्द्र पाण्डेय — एसोसियएट प्रोफेसर, (विशेष शिक्षा), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
(इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

परिमापक

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
(इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

समन्वयक

डॉ. नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता, (विशेष शिक्षा), शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज.

सितम्बर, 2019 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खण्ड आपको विद्यालय प्रणाली मे ंप्रचलित विभिन्न आकलन पद्धतियों, उनकी विशेषताओं तथा उनके विभिन्न प्रकारों से अवगत करायेगा। इस खण्ड में तीन इकाई हैं।

इकाई–10 में विद्यालय मूल्यांकन की संकल्पनाओं के विभिन्न पहलूओं को उजागर किया गया है।

इकाई–11 में शैक्षणिक उद्देश्यों की विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

इकाई–12 विद्यालय मूल्यांकन के निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन पर प्रकाश डालती है।

इकाई–10

विद्यालय मूल्यांकन में संकल्पनाएं

संरचना–

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 विद्यालय मूल्यांकन की प्रकृति

10.4 विद्यालय मूल्यांकन के क्षेत्र

10.5 विद्यालय मूल्यांकन के उद्देश्य

10.6 विद्यालय मूल्यांकन हेतु उपकरण

10.7 चर्चा के बिन्दु

10.8 अभ्यास के प्रश्न

10.9 सारांश

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

विद्यालय में मूल्यांकन शिक्षक के सफल और प्रभावी काम की एक शर्त है। शिक्षा प्रक्रिया की जांच में परिणाम (परीक्षा उत्तीर्ण परीक्षण) को मापने और उन्हें मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। मूल्यांकन में ग्रेडिंग प्रणाली भी शामिल है, यानी प्रदर्शन के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण करना। मूल्यांकन में न केवल परिणाम पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए बल्कि संज्ञानात्मक गतिविधियों की प्रक्रिया पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस मूल्यांकन के बिना शैक्षणिक कार्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में विद्यालय मूल्यांकन के इन्हीं पहलुओं को उजागर किया गया है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- विद्यालय मूल्यांकन की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विद्यालय मूल्यांकन के उद्देश्यों को पहचान सकेंगे।
- विद्यालय मूल्यांकन हेतु विभिन्न उपकरणों का अनुप्रयोग कर सकेंगे

10.3 विद्यालय मूल्यांकन की प्रकृति

मूल्यांकन के स्वभाव का तात्पर्य है कि यह मूल्यांकन संस्था, शिक्षक, शिक्षण तथा विद्यार्थी उपलब्धियों के रूप में सम्बन्धित होना चाहिए। इसलिए इसकी प्रकृति के कुछ बिन्दु अग्रलिखित हैं–

(1) अध्यापकों, छात्रों व अभिभावकों के बीच सहभागिता होनी चाहिए।

(2) संस्थागत मूल्यांकन अनुभवी व प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा कराया जाना चाहिए।

(3) संस्था का मूल्यांकन सुधार होना चाहिए न कि आलोचना हेतु।

(4) कार्यक्रम का नियोजन उद्देश्यपरक होना चाहिए।

(5) शिक्षा के उद्देश्य कैसे प्राप्त किये जायें इसके लिए व्यूह रचना का स्पष्टीकरण होना चाहिए।

(6) संस्थागत मूल्यांकन स्वतन्त्र परिधि के अन्दर होना चाहिए न कि प्रशासकों द्वारा थोपकर।

(7) संस्थागत मूल्यांकन पक्षपात रहित होना चाहिए।

(8) विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु संस्थागत मूल्यांकन होना चाहिए।

(9) संस्थागत मूल्यांकन धन, समय इत्यादि के हिसाब से मितव्ययी होना चाहिए।

इस प्रकार संस्थागत, मूल्यांकन के तहत समाज के मूल्यों, संस्था के मूल्यों,विद्यार्थियों के निष्पादन, अध्यापकों की कार्यप्रणाली, अभिभावकों के सहयोग तथा मूल्यांकन पर आने वाला खर्च व समय इत्यादि में सन्तुलन होना चाहिए।

10.4 विद्यालय मूल्यांकन के क्षेत्र

विद्यालय के सम्बन्ध में जब हम मूल्यांकन की चर्चा करते हैं तो इसके दो पक्षों पर विचार करते हैं। पहला तो यह कि मूल्यांकन किसका होना है ? तथा दूसरा, किस प्रकार का होना है ? विद्यालय मूल्यांकन के हम दो क्षेत्रों की चर्चा करेंगे –

(1) छात्रों का मूल्यांकन–इसके लिए विभिन्न परखों तथा सामूहिक आलेख–पत्र आदि के प्रयोग द्वारा यह निश्चित करेंगे कि छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन किस प्रकार आ रहा है और वे लक्ष्य प्राप्ति में कहाँ तक सफल हो रहे हैं।

(2) विद्यालय व्यवस्था का मूल्यांकन–इसके सम्बन्ध में भी सभी क्रियाओं में मूल्यांकन के लिए अलग–अलग विधियाँ होंगी। यह मूल्यांकन व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा विशेषज्ञों द्वारा हो सकता है। यदि किसी विद्यालय की व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित है तो उसके निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट होंगे–

(i) विद्यालय का वातावरण स्वाभाविक, सजीव और अनुशासित होगा। सभी क्रियाएँ उद्देश्पूर्ण होगी। कर्मचारियों के कार्य में सन्तोष होगा। सामूहिकता की भावना होगी। लक्ष्य प्राप्ति की ओर प्रगति की भावना होगी। विद्यालय में छात्र, अध्यापक, प्राचार्य और प्रशासक संगठित रूप से क्रियाशील होंगे।

(ii) विद्यालय के शिक्षकों का नैतिक स्तर ऊँचा होगा। उनमें स्वेच्छा, सहयोग, मित्रता, छात्रों का हित, सुरक्षा, सन्तुष्टि, पेशे के प्रति आस्था तथा आत्म–सम्मान की भावना होगी।

(iii) विद्यालय का शिक्षण–स्तर ऊँचा होगा।

(iv) सभी सहयोगियों में रचनात्मक चिन्तन का विकास होना।

(v) अभ्यार्थी श्रेष्ठ कोटि के होने के कारण समाज तथा देश–हित लाभकारी सिद्ध होंगे।

10.5 विद्यालय मूल्यांकन के उद्देश्य

विद्यालय मूल्यांकन शिक्षा के समग्र उद्देश्य से जुड़े रहते हैं इसलिए इनके उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) संसाधन व सूचनाओं का एकत्रीकरण।

(2) विद्यालय में सेवारत् शिक्षक व शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की कार्यवाही का अंकन।

(3) विद्यालयी व्यवस्था को बनाये रखना।

(4) अनुशासन व्यवस्था को बनाये रखना।

(5) क्रीड़ा व अन्य पाठ्य–सहगामी क्रियाओं को बनाये रखना।

(6) अधिगम व अध्यापन को उन्नत बनाने हेतु सतत प्रोत्साहित करना।

(7) प्रयोगशालीय शिक्षण सहायक सामग्रियों को बनाये रखना।

(8) परीक्षा व्यवस्था को कुशलता व ईमानदारीपूर्वक संचालित करना।

विद्यालय मूल्यांकन योजनाबद्ध किया जाता है जिसके प्रो0 एस0पी0 गुप्ता ने आठ सोपानों का सुझाव दिया है जो निम्नलिखित हैं–

(1) मूल्यांकन कार्यक्रम के उद्देश्य / उद्देश्यों का निर्धारण।

(2) मापन उपकरणों के प्रशासन।

(3) मापन उपकरणों का अंकन।

(4) उपयुक्त मापन उपकरणों के चयन।

(5) पुर्नपरीक्षण से उपचारात्मक कार्यक्रम की सफलता का ज्ञान।

(6) प्राप्तांकों के विश्लेषण व व्याख्या।

(7) प्राप्त परिणामों का अनुप्रयोग।

(8) उपयुक्त अभिलेखों व रिर्पोटों की तैयारी।

इस प्रकार उपरोक्त पदों का अनुसरण करके ही विद्यालय मूल्यांकन कार्यक्रम बनाये जा सकते हैं। जिसके परिणाम पूरी तरह से विश्वसनीय और वैध प्राप्त होंगे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. विद्यालय मूल्यांकन की किन्हीं दो प्राकृतियों का उल्लेख लिखिए।

   ....

   ....

2. विद्यालय मूल्यांकन के तीन उद्देश्य लिखिए।

   ....

   ....

10.6 विद्यालय मूल्यांकन हेतु उपकरण

विद्यालय मूल्यांकन हेतु आवश्यक उपकरणों का चुनाव मूल्यांकन तकनीक के आधार पर किया जाता है इसके लिए प्रो0 एस0पी0 गुप्ता ने प्रमुख उपकरणों की उनकी तकनीक के आधार पर सूचीबद्ध किया है जो निम्नलिखित हैं–

प्रविधि / तकनीकी (Tecnique)	**संयन्त्र / उपकरण** (Tools)
(1) **परीक्षण** (Testing)	**निबन्धात्मक परीक्षण** (Essay Type Test), **वस्तुनिष्ठ परीक्षण** (Objective Type test), **मौखिक परीक्षण** (Oral test), **प्रयोगात्मक परीक्षण** (Experimental Test),
(2) **अवलोकन** (Observation)	**मापनी** (Scale), **चेक लिस्ट** (Check list), **संचयी अभिलेख** (Cumulative Record), **आत्म अभिलेख** (Anecdotal Record), **सहभागिता चार्ट** (Coacted Chart).
(3) **समाजमिति** (Sociometry),	**सोसियोग्राम** (Sociogram), **समाजसमिति गुणांक** (Sociometric Coffiicent),

	समाजमिति तालिका (Sociometric Table),
(4) **स्वसूचना** (Self-report)	**प्रश्नावली** (Questionnaire), **अभिवृत्ति मापनी** (Attitude Scale), **अभिरूचि मापनी** (Apitutde Scale),
(5) **प्रक्षेपण** (Projection)	**मसिलक्ष्य प्रत्यक्षीकरण** (Perception of Inkblots), **चित्र व्याख्या** (Interpretations of Picture), **वाक्य पूर्ति** (Sentence Completion),
(6) **साक्षात्कार** (Interview)	**संरक्षित साक्षात्कार** (Structured Interview), **असंरक्षित साक्षात्कार** (Unstructured Interview),

10.7 चर्चा के बिन्दु

"विद्यालय मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है।" स्पष्ट कीजिए।

10.8 अभ्यास के प्रश्न

विद्यालय मूल्यांकन के विभिन्न उपकरणों में विभेद कीजिए।

10.9 सारांश

अध्यापक के मूल्यांकन की तरह विद्यालय का मूल्यांकन करने का भी विधान बना लिया गया है। इसके लिए विद्यालय के खुलने के पीछे क्या उद्‌देश्य रहा है ? संस्थापक के दृष्टिकोण क्या रहे हैं ? इत्यादि का अध्ययन प्रमुख रूप से कर लेते हैं। विद्यालय अपने उद्‌देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल है? इसके निर्धारण हेतु संस्था के उद्‌देश्य क्या हैं? विद्यालय के संस्थापक के विचार कैसे हों? विद्यालय कहाँ स्थित हैं ? विद्यालय के पास कितनी जमीन है ? वाचनालय व पुस्तकालय व्यवस्था कैसी है ? विद्यालय प्रबन्धन व प्रशासन व्यवस्था के तालमेल कहाँ तक हैं ? विद्यालय के शिक्षक मानक के अनुरूप संख्या व योग्यता में हैं कि नहीं, जैसे कुछ प्रमुख बिन्दुओं की जानकारी रखनी पड़ती है। संस्थाओं के बारे में विचार करते हुए उनकी मान्यता का निर्धारण किया जाता है। सरकार द्वारा सभी संस्थाओं के लिए उनकी कक्षा स्तर के अनुबन्ध मानक निर्धारित होते हैं। जिसके आधार पर उन्हें मान्यता प्रदान की जाती है। यदि सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी द्वारा ईमानदारी बनाये रखी जाये तो संस्थाएँ अपने मानक को बनाये रखेंगी। व्यवहार में देखने को मिलता है कि बच्चों को मुद्रा के स्रोत के रूप में मानते हुए नित्य नयी–नयी संस्थाएँ मान्यता प्राप्त कर ले रही है। इससे शिक्षण संस्था के मात्रात्मक विकास तो हो रहे हैं परन्तु गुणवत्ता में कमी आ रही है। यह कमियाँ प्रत्येक स्तर पर देखने को मिल रही हैं।

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विद्यालय का मूल्यांकन सुधार के लिए होना चाहिए न कि आलोचना हेतु। कार्यक्रम का नियोजन उद्देश्यपरक होना चाहिए।

2. संसाधन व सूचनाओं का एकत्रीकरण। विद्यालय में सेवारत् शिक्षक व शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की कार्यवाही का अंकन।

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Gupta, S. P. (2005). Measurement and Evalution, Bhargav Publication, Meerut.
2. Mishra, D.C. (2008). Essentials of Educational Technology & Management, Sahitya Publication, Agra.
3. Mishra, R.M. (2007). Essentials of Educational Technology & Management, Alok Publication, Lko.
4. Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
5. Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

इकाई—11

शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

संरचना—

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 शैक्षिक उद्देश्यों का अर्थ एवं परिभाषा
11.4 शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण का विकास
11.5 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण
11.6 चर्चा के बिन्दु
11.7 अभ्यास के प्रश्न
11.8 सारांश
11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

बी0एस0 ब्लू (Benjamin Samuel Bloom) ने परीक्षा प्रणाली के सुधार के लिये (1956) में एक प्रकल्प की व्यवस्था की थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य परीक्षण को शिक्षण पर आधारित करना था। इसके लिये उन्होंने शिक्षण और परीक्षण को उद्देश्य—केन्द्रित बनाने का प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप दो नवीन प्रत्ययों का विकास हुआ—प्रथम "मूल्यांकन आयाम" (Evaluation Approach) जिसने शिक्षा प्रणाली में नई क्रान्ति उत्पन्न कर दी और द्वितीय "शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण" (Taxonomy of Educational Objectives) यह दोनों प्रत्यय एक—दूसरे के पूरक है। प्रस्तुत इकाई में शैक्षणिक उद्देश्यों की विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण के विकास का वर्णन कर सकेंगे।
- शैक्षिक उद्देश्यों का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

11.3 शैक्षिक उद्देश्यों का अर्थ एवं परिभाषा

आजकल शिक्षण एवं प्रशिक्षण की प्रकृति बदल गई है और शिक्षण की अपेक्षा अधिगम पर अधिक बल दिया जाने लगा है, क्योंकि शिक्षण का औचित्य तथा प्रभाव अधिकाधिक सन्देहपूर्ण हो गया है। अतः अब यह आवश्यक हो गया है कि अधिक सही एवं व्यवहारात्मक उद्देश्यों का निर्माण किया जाये। स्पष्ट है कि शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक है। इसके निर्धारण के लिये ब्लूम महोदय ने मूल्यांकन आयाम (Evaluation

Appraoch) की प्रविधि प्रस्तुत की है। शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिये और मानव एवं राष्ट्र के लिये अधिक उपयोगी बनाने के हेतु शैक्षिक उद्‌देश्यों को स्पष्ट रूप में परिभाषित करना भी आवश्यक है।शैक्षिक उद्‌देश्यों का तात्पर्य छात्रों में होने वाले उस परिवर्तन से है जो शिक्षण क्रियाओं द्वारा नियोजित रूप में लाया जाता है। शैक्षिक उद्‌देश्य अधिक व्यापक होते हे। ये शिक्षा तथा विद्यालयों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।शैक्षिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति छात्र के शैक्षिक जीवन अर्थात् प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर की व्यवस्था द्वारा की जाती है।

बी0एस0 ब्लूम की निम्नलिखित परिभाषा से शैक्षिक उद्‌देश्यों का अर्थ अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

"शैक्षिक उद्‌देश्यों की सहायता से केवल पाठ्‌यक्रम की रचना और अनुदेशन के लिए निर्देशन ही नहीं दिया जाता, अपितु ये मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते हैं।"

"Educational objectives are not only the goals towards which the curriculum is shaped and towards which instruction is guided but they are also the goals that provide the detailed specification for behaviour the construction and use of evaluative technique".

11.4 शैक्षिक उद्‌देश्यों के वर्गीकरण का विकास

शैक्षिक उद्‌देश्यों के वर्गीकरण के विकास का आविर्भाव अमेरिकन मनोवैज्ञानिक परिषद् की बैठक में (1948) में हुआ था। यह बैठक बोस्टन में बुलाई गई थी। और इसमें कॉलेज परीक्षकों तथा प्रवक्ताओं ने भाग लिया था। बैठक में यह विचार–विमर्श हुआ कि कोई एक ऐसा सैद्धान्तिक ढाँचा होना चाहिए जिसके द्वारा परीक्षकों के मध्य सम्प्रेषण को सरल एवं विश्वसनीय बनाया जा सके। इस विचार से सभी सहमत हुए कि शैक्षिक प्रक्रिया के उद्‌देश्यों की वर्गीकरण प्रणाली के द्वारा सम्प्रेषण को सरल तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। तभी से शिक्षण, परीक्षण तथा पाठ्‌यक्रम को उद्‌देश्य–केन्द्रित बनाया जाने लगा है। इस क्षेत्र में अधिकांश शोध कार्य यहीं से आरम्भ हुए हैं। यह वर्गीकरण, शैक्षिक, तर्कसंगत तथा मनोवैज्ञानिक है। इस वर्गीकरण में विभिन्न प्रकार के शैक्षिक उद्‌देश्यों का विभाजन करके उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

1. शैक्षिक उद्‌देश्यों के वर्गीकरण का आधार क्या है?

   ....

   ....

2. बी0एस0 ब्लूम की शैक्षिक उद्‌देश्य की परिभाषा लिखिए।

   ....

   ....

11.5 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

ब्लूम तथा उनके सहयोगियों ने शिकागो विश्वविद्यालय में ज्ञानात्मक, भावात्मक, तथा क्रियात्मक पक्षों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain) का ब्लूम ने 1956 में, भावात्मक पक्ष (Affective Domain) का सिप्पसन ने 1969 में वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस वर्गीकरण की सहायता से शिक्षक अपने शिक्षण तथा अधिगम के उद्देश्यों का निर्धारण सुगमता से कर सकता है। शिक्षण–उद्देश्यों को लिखने की अनेक विधियाँ प्रयुक्त की जाती है। परन्तु सभी ने ब्लूम के वर्गीकरण की सहायता ली है। ब्लूम ने स्वयं इस वर्गीकरण का उपयोग परीक्षण की रचना में यह जानने के लिए किया है कि विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निर्णय लेने के प्रश्न का स्वरूप क्या होना चाहिए ? उसने परीक्षण को उद्देश्य केन्द्रित बनाने का प्रयास किया है। ब्लूम द्वारा प्रस्तावित शिक्षण उद्देश्यों के वर्गीकरण को निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किया गया है–

(a)ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)	(b)भावात्मक पक्ष (Affective Domain)	(c)क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor Domain)
वर्ग	वर्ग	वर्ग
1. ज्ञान (Knowledge)	1. आग्रहण (Receiving)	1. उत्तेजना (Impulsion)
2. बोध (Comprehension)	2. अनुक्रिया (Responding)	2. प्रकृतिकरण (Naturalization)
3. प्रयोग (Application)	3. अनुमूल्यन (Valuing)	3. कार्यवाही (Manipulation)
4. विश्लेषण (Analysis)	4. विचारण (Conceptualization)	4. समन्वय (Co-ordination)
5. संश्लेषण (Synthesis)	5. संगठन (Organization)	5. नियन्त्रण (Control)
6. मूल्यांकन (Evaluation)	6. चरित्रीकरण (Characterization)	6. आदतों का निर्माण (Habit formation)

(a) ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)

(1) ज्ञान उद्देश्य (Knowledge Objectives)- ज्ञान उद्देश्य में तथ्यों, शब्दों, नियमों तथा सिद्धान्तों के प्रत्यास्मरण तथा अभिज्ञान का विकास किया जाता है। इसमें उन सभी व्यवहारों तथा परीक्षण परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें प्रत्यास्मरण पर अधिक बल दिया जाता है। अधिगम के समय छात्र जिन सूचनाओं, तथ्यों तथा नियमों को धारण करता है और बाद में जिनके प्रत्यास्मरण पर बल दिया जाता है उन सभी व्यवहारो को ज्ञान–उद्देश्य में सम्मिलित किया जाता है। इनमें तीन प्रकार की पाठ्यवस्तु के अभिज्ञान तथा प्रत्यास्मरण का विकास।

(अ) विशिष्ट तथ्यों, शब्दों, सूचनाओं के प्रत्यास्मरण का विकास।

(ब) पद्धतियों, साधनों तथा आयामों के अभिज्ञान का विकास।

(स) नियमों, सिद्धान्तों तथा सामान्यीकरण के प्रत्यास्मरण का विकास।

ज्ञान उद्देश्य के वर्गीकरण में अधिक जटिल एवं विशिष्ट व्यवहारों को एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

(2) बोध उद्देश्य (Comprehension Objectives)- इनमें उन सभी योग्यताओं एवं क्षमताओं को सम्मिलित करते हैं, जिनका सम्बन्ध समझ अथवा बोधगम्यता से होता है। ज्ञान उद्देश्यों में जिस पाठ्यवस्तु के प्रत्यास्मरण के विकास पर बल दिया जाता है। उसी पाठ्यवस्तु को अपने शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। बोध स्तर पर पाठ्यवस्तु से सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता का विकास किया जाता है। बोध उद्देश्य के लिए पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित तीन प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) सूचनाओं, तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों तथा सामान्यीकरण का अनुभव करके अपने शब्दों में सम्प्रेषण करने की क्षमता का विकास।

(ब) उपरोक्त पाठ्यवस्तु की व्याख्या करने की क्षमता का विकास।

(स) इस पाठ्यवस्तु का बाह्य गणना के आधार पर उल्लेख करने की शक्ति का विकास।

(3) प्रयोग उद्देश्य (Application Objectives)- इस वर्गीकरण में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों को क्रम में व्यवस्थित करते है और इनमें प्रत्येक वर्गीकरण उन योग्यताओं एवं क्षमताओं की मांग करता है, जो वर्गीकरण क्रम में पूर्व स्थित है। प्रयोग श्रेणी इस नियम का अनुसरण करती है कि किसी विधि, सिद्धान्त एवं विचार का प्रयोग करने से पूर्व उसको समझना आवश्यक है। शिक्षक अक्सर यह कहते हैं कि यदि विद्यार्थी किसी वस्तु को वास्तविक रूप में समझ लेता है तो वह उसका प्रयोग भी कर सकता है। तथ्य यह है कि जो कुछ हम सीखते हैं, उसका अधिकांश भाग वास्तविक जीवन में समस्या स्थितियों में प्रयोग करते हैं। सामान्य पाठ्यक्रम प्रयोग उद्देश्यों के महत्व की ओर इंगित करता है। विद्यालय के कार्यक्रम का प्रभावी होना इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थी उन बातों को जो उसे शिक्षा के द्वारा बताई गई है, उनकी वह अपने जीवन की परिस्थितियों में कितने अंश तक प्रयोग करता है।प्रयोग उद्देश्य में पाठ्यवस्तु की सहायता से तीन प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) नियमों, साधनों तथा सिद्धान्तों का सामान्यीकरण करना।

(ब) पाठ्यवस्तु सम्बन्धी तथ्यों की कमजोरियों का निदान करना।

(स) पाठ्यवस्तु का विभिन्न परिस्थितयों में प्रयोग करना।

(4) विश्लेषण उद्देश्य (Analysis Objective) बोध और प्रयोग की अपेक्षा विशेलषण उद्देश्य कुछ उच्च स्तर का उद्देश्य है। बोध में सामग्री के अर्थ और आशय की पकड़ पर बल दिया जाता है, प्रयोग में याद करने पर दी गई सामग्री पर उचित सिद्धान्तों का प्रयोग करने पर जोर दिया जाता है। विश्लेषण में सामग्री को विभिन्न अंगों में बाँटने तथा विभिन्न अंगों को एक दूसरे का पता लगाने और उसके संगठित किये जाने के उपायों को विकसित करने पर बल दिया जाता है। इसमें पाठ्य–वस्तु की सहायता से निम्नलिखित क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) नियमों, सिद्धान्तों के तत्वों का विश्लेषण करना।

(ब) उनके तत्वों के सम्बन्धों का विश्लेषण करना।

(स) तत्वों का व्यवस्थित रूप में विश्लेषण करना।

इस उद्देश्य के लिए प्रथम तीनों उद्देश्यों ज्ञान, बोध तथा प्रयोग की पूर्व आवश्यकता होती है।

(5) संश्लेषण उद्देश्य (Synthesis Objectives)- संश्लेषण उद्देश्य का तात्पर्य विभिन्न तत्वों और अंगों को मिलाकर इस प्रकार रखने से है कि सम्पूर्ण का निर्माण हो जाये। सामान्य रूप से हम अपने पहले अनुभवों को नवीन सामग्री के साथ पुनः जोड़ते हैं। यह ज्ञानात्मक क्षेत्र का ऐसी श्रेणी है, जिसमें सीखने वाले का व्यवहार रचनात्मक होता है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यह पूर्ण रूप से स्वतंत्र रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, क्योंकि सामान्यतः विद्यार्थी विशिष्ट समस्याओं, सामग्रियों तथा कुछ सिद्धान्तों एवं विधियों के द्वारा निर्धारित सीमाओं में कार्य करता है। संश्लेषण में विद्यार्थी को विभिन्न स्रोतों से तत्व ग्रहण करने होते हैं और उनको इस प्रकार से मिलाकर रखना होता है कि नया ढाँचा निर्मित हो जायें। उसके प्रयासों के माध्यम से कोई ऐसी चीज निर्मित होनी चाहिए, जिसका अनुभव एक या एक से अधिक इन्द्रियों द्वारा किया जा सके और जो स्पष्ट रूप से उन सामग्रियों से कुछ अधिक हो जिनका प्रयोग किया गया है। इस उद्देश्य से छात्रों में तीन प्रकार की सर्जनात्मक क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) विभिन्न तत्वों के संश्लेषण से नया सम्प्रेषण करना।

(ब) तत्वों के विश्लेषण से नवीन आयाम की व्यवस्था करना।

(स) तत्वों के अमूर्त सम्बन्धों को ज्ञात करना।

(6) मूल्यांकन उद्देश्य (Evaluation Objectives)- मूल्यांकन से हमारा तात्पर्य किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विचारों, कार्यों, विधियों व सामग्रियों इत्यादि के मूल्य निर्धारित करने से है। इसमें मूल्यांकन हेतु मानदण्डों का प्रयोग किया जाता है। मूल्यांकन सम्बन्धी निर्णय भावात्मक अथवा गुणात्मक हो सकते है। ये मानदण्ड विद्यार्थी द्वारा निर्धारित किये जा सकते हैं अथवा अध्यापक द्वारा दिये जा सकते हैं।

ज्ञानात्मक पक्ष का यह अन्तिम उद्देश्य होता है। यह इस पक्ष का उच्चतम उद्देश्य माना जाता है और इसे सत्यम् की भी संज्ञा दी जाती है इसमें पाठ्यवस्तु सम्बन्धी नियमों, तथ्यों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में आलोचना करने की क्षमताओं का विकास किया जाता है। इनकी सत्यता के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए आन्तरिक तथा बाह्म मानदण्डों को प्रयुक्त किया जाता है। वास्तव में यह पाठ्यवस्तु की कसौटी का स्तर होता है। इसमें दो प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता हैं

(अ) आन्तरिक मानदण्डों की सहायता से पाठ्य–वस्तु के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

(ब) बाह्म मानदण्डों के आधार पर नियमों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

(b) भावात्मक पक्ष (Affective Domain)

(1) आग्रहण उद्देश्य (Receiving)- इसमें पहले शिक्षार्थी को एक निश्चित उद्दीपक विद्यमान होने के सम्बन्ध में बताया जाता है। शिक्षार्थी में उसे आग्रहण की संवदेनशीलता होनी चाहिए। जब तक छात्र परिस्थितियों तथा घटनाओं के तत्वों के प्रति संवदेनशील नही होता है तब तक आग्रहण नहीं कर सकता है। शिक्षार्थी को आग्रहण के लिए इच्छुक होना चाहिए। यह भावात्मक पक्ष का सबसे निम्न स्तर का उद्देश्य होता है। इसमें तीन प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता है।

(अ) परिस्थितियों तथा घटनाओं की सजगता का विकास करना।

(ब) इन घटनाओं के आग्रहण की इच्छा का विकास करना।

(स) इनके प्रति सुनिश्चित तथा नियन्त्रित रूप में ध्यान देने की क्षमता का विकास करना।

(2) अनुक्रिया उद्देश्य (Responding Objectives)- इस श्रेणी में उन अनुक्रियाओं से सम्बन्ध होता है, जो केवल एक तत्व पर ध्यान देने से कुछ आगे जाती है। विद्यार्थी पर्याप्त रूप से अभिप्रेरित किया जाता है, जिससे यह तत्व पर ध्यान देने पर इच्छुक हो सके अथवा यह सक्रिय रूप से ध्यान दे सके। इस श्रेणी में तीन प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) अनुक्रिया के लिये इच्छा होना।

(ब) अनुक्रिया से संतुष्टि होना तथा

(स) अनुक्रिया से अर्जित करना।

(3) मूल्यांकन उद्देश्य (Valuing Objectives)- यह भावात्मक पक्ष की एक ऐसी श्रेणी है, जिसका प्रयोग समान रूप से शिक्षकों के उद्देश्यों के वर्णन में किया जाता है और छात्रों को यह अनुभव कराया जाता है कि वस्तु, तत्व अथवा व्यवहार का मूल्य होता है। मूल्य की एक अमूर्त अवधारणा प्रत्येक छात्र प्राप्त करता है। मूल्य की यह अमूर्त अवधारणा आशिंक रूप से एक अमूर्त अवधारणा प्रत्येक छात्र प्राप्त करता है। मूल्य की यह अमूर्त अवधारणा आशिंक रूप से

एक व्यक्ति विशेष के अपने स्वयं के मूल्य का परिणाम होता है, परन्तु इससे कहीं अधिक यह एक सामाजिक घटक है, जो स्वीकार किया जा चुका है और विद्यार्थी उसे अपने स्वयं के मूल्य के रूप में प्रयोग करता है। इसमें निम्नांकित क्षमताओं का विकास किया जाता है–

(अ) मूल्यों को स्वीकार करना।

(ब) मूल्यों के लिये कार्य करना।

(स) मूल्यों के लिये वचनबद्ध होना।

(4) संगठन उद्देश्य (Organization Objectives)- इस उद्देश्य में मूल्यों का संगठन किया जाता है और मौलिक भावनाओं का विकास किया जाता है। शिक्षार्थी जैसे–जैसे मूल्यों का अपने में समावेश करता है, वैसे–वैसे उसें ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें एक मूल्य में अधिक मूल्य सम्बन्धित होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में छात्र को मूल्यों की प्रणाली की रचना करनी होती है। एक प्रणाली में समान प्रकार के मूल्यों का संगठन किया जाता है। भावात्मक पक्ष का यह उद्देश्य उच्च स्तर का माना जाता है और इसमें तीन प्रकार की क्षमताओं का विकास किया जाता है। यह क्षमतायें इस प्रकार है–

(अ) प्रणाली के समान मूल्यों का संगठन करना।

(ब) विभिन्न प्रकार के मूल्यों में अन्तः सम्बन्ध का निर्धारण करना।

(स) प्रमुख तथा व्यापक मूल्यों का प्रतिपादन करना।

(5) चारित्रीकरण उद्देश्य (Characterization Objectives)- यह भी भावात्मक पक्ष का एक उच्च स्तरीय उद्देश्य हैं इसमें शिक्षार्थी एक मूल्य प्रणाली को स्वीकार कर लेता है। और उसका अनुसरण करता है। इसका समस्त व्यवहार उनकी मूल्य प्रणाली से नियन्त्रित होता है और वह विशिष्ट प्रकार के व्यवहार करने का अभ्यस्त हो जाता है। दूसरें शब्दों में एक व्यक्ति सदैव उन मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करता है, जिनका उसने इस स्तर पर अन्तःकरण कर लिया है। यह मूल्य व्यक्ति विशेष की आन्तरिक प्रणाली में संगठित होते हैं। इस उद्देश्य में दो प्रकार की क्षमताओ का विकास होता है–

(अ) व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले मूल्यों का सामान्यीकरण करना।

(ब) व्यक्ति के विश्वासों, विचारों तथा अभिवृत्तियों का एकीकरण करना।

11.6 चर्चा के बिन्दु

"शैक्षणिक उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया के आधार स्तम्भ हैं।" स्पष्ट कीजिए।

11.7 अभ्यास के प्रश्न

शैक्षणिक उद्देश्य के भावात्मक पक्षों की व्याख्या कीजिए।

11.8 सारांश

ब्लूम के शैक्षिक उद्देश्य विशेषज्ञता के स्तर को व्यवस्थित करने के सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले तरीकों में से एक हैं। ब्लूम के वर्गीकरण में प्रत्येक मापने योग्य परिणाम प्राप्त करने के लिए छात्र के आवश्यक विशेषज्ञता के स्तर को व्यक्त करने के लिए एक बहु–स्तरीय पैमाने का उपयोग किया जाता है। इस तरह से मापन योग्य छात्र परिणामों को व्यवस्थित करने से हमें पाठ्यक्रम हेतु उचित कक्षा मूल्यांकन तकनीकों का चयन करने में आसानी होती है। वर्गीकरण के तीन प्रकार हैं जो किसी छात्र के परिणाम के लिए उपयोग करने वाले तीन मूल लक्ष्य पर निर्भर करते हैं। ये ज्ञान आधारित लक्ष्य, कौशल आधारित लक्ष्यों, और क्रियात्मक लक्ष्य हैं। प्रत्येक वर्गीकरण के भीतर, विशेषज्ञता के स्तर को जटिलता के बढ़ने के क्रम में सूचीबद्ध किया गया है। छात्रों के मापन योग्य परिणामों में जिस उच्च स्तर की विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, उनमें अधिक परिष्कृत कक्षा मूल्यांकन तकनीकों की आवश्यकता है।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस वर्गीकरण का आधार शैक्षिक, तर्कसंगत तथा मनोवैज्ञानिक है।
2. "शैक्षिक उद्देश्यों की सहायता से केवल पाठ्यक्रम की रचना और अनुदेशन के लिए निर्देशन ही नहीं दिया जाता अपितु ये मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते हैं।"

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Batten, T.R. (1999). Training for Community Development: A Critical Study of Method, London: Oxford University Press.
2. Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.
3. Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.
4. Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
5. Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

इकाई–12

निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन

संरचना–

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 निर्माणात्मक मूल्यांकन का अर्थ

12.4 निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया

12.5 निर्माणात्मक मूल्यांकन के गुण एवं दोष

12.6 योगात्मक मूल्यांकन का अर्थ

12.7 योगात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया

12.8 योगात्मक मूल्यांकन के गुण एवं दोष

12.9 निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन में विभेद

12.10 चर्चा के बिन्दु

12.11 अभ्यास के प्रश्न

12.12 सारांश

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

शैक्षिक मूल्यांकन के क्षेत्र में आज कल बड़ी ही द्रुति–गति से विकास हो रहा है। नये–नये परीक्षणों का विकास व उपयोग किया जा रहा है। शिक्षा प्रक्रिया की जांच में परिणामों के मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। मूल्यांकन को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है जिसमें निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन प्रमुख हैं। मूल्यांकन में केवल परिणामों पर ही ध्यान केंद्रित न करके संज्ञानात्मक गतिविधियों पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। अतः मूल्यांकन के कालिक एवं समग्र रूप की अपादेयता है। प्रस्तुत इकाई में विद्यालय मूल्यांकन के इन्हीं दो उपागमों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया का अनुप्रयोग कर सकेंगे।
- निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन में विभेद कर सकेंगे।

12.3 निर्माणात्मक मूल्यांकन का अर्थ

S. Packiam ने निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative Evaluation) के अर्थ को समझाते हुए कहा है कि "यह छात्र के किसी पाठ्यक्रम के अध्ययन के समय किया गया मूल्यांकन है, जिसमें वर्तमान उपलब्धि के आधार पर अनुदेशन प्रक्रिया में परिवर्तन किये जा सकते हैं।"

"Formative evaluation refers to evaluation of a student learning during a course, when changes can be made in the transaction of subsequent instruction on the basis of current attainment."

इस प्रकार निर्माणात्मक मूल्यांकन का मुख्य ध्येय परिवर्तन है जिसे पाठ्यवस्तु के विकास के दौरान किया जा सकता है। इसमें मूल्यांकनकर्ता, अनुदेशन क्रमबद्धता के बारे में सूचनाएँ एकत्र करता है और उसके आधार पर उनकी विशेषताओं का मूल्यांकन करता है, जिससे कि क्रमबद्धता को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। इसमें पाठ्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण को इकाइयों में विभाजित करते हैं और प्रत्येक इकाई के अंत में परीक्षण किया जाता है। मूल्यांकन में अगर छात्रों की अपेक्षित प्राप्ति नहीं होती है तो निदान करने पर सुधारात्मक शिक्षण किया जाता है। इस प्रकार का मूल्यांकन प्रत्येक इकाई के मापन के लिए होता है। जिससे कि छात्र को पाठ्यवस्तु के स्वामित्व (Mastery) का अवसर मिले।

12.4 निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया

निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया निम्न चरणों में पूरी होती है–

(1) मूल्यांकन के क्षेत्र की सीमा का निर्धारण करना जिसमें नियोजन काल का निर्धारण करना शामिल है।

(2) कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त करना, सहयोगियों के साथ विचार–विमर्श करना शामिल होता है। इसमें निम्न कार्य संपादित किए जाते हैं–

1. उद्देश्यों के निर्धारण हेतु सम्मेलन बुलाना।
2. कार्यक्रम के औचित्य का विकास करना।
3. कार्यक्रम कथन को लिखना।

(3) कार्यक्रम कार्यान्वयन तथा प्रोग्राम उद्देश्यों की प्राप्ति करना। इसमें नौ कार्य करने होते है –

1. सुनिश्चित करना कि सभी प्रश्न पूछे गये हैं या नहीं।
2. जो तथ्य प्रस्तुत किये गये उनके क्या परिणाम निकले ?
3. कार्यक्रम कार्यान्वयन की संरचना करना।
4. कार्यान्वित कार्यक्रम विकास की संरचना।
5. उपकरणों की संरचना।

6. उपकरणों की व्याख्या हेतु मानकों का निर्धारण।

7. निश्चित करना कि जो योजना कार्यान्वित की गयी वह सही है या नहीं।

8. उपकरणों का सम्पादन करना।

9. कार्यक्रम सुधार का विश्लेषण करना।

(4) नियोजकों व स्टाफ के साथ प्रतिवेदन (Report) पर विचार करना। इसमें तीन पद हैं :–

1. "आप क्या कहना चाहते हैं," का निर्णय करना।

2. प्रस्तुतीकरण की विधि का चयन करना।

3. मूल्यांकन विवरण प्रस्तुत करना।

12.5 निर्माणात्मक मूल्यांकन के गुण एवं दोश

गुण –

1. इस प्रकार का मूल्यांकन छात्रों को व्यक्तिगत सहायता देने में सहायक है।
2. इससे छात्र अपनी उन्नति को जानकर अपनी शैक्षिक उपलब्धि में सुधार कर सकते है।
3. इसमें विषय–वस्तु को छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित किया जाता है, इससे सम्पूर्ण विषय को समझना सरल हो जाता है।
4. इससे छात्र विषय का अध्ययन अधिक गहराई से करते हैं।

दोष–

1. इसमें शिक्षक को अधिक कार्य करना पड़ता है।
2. यह अधिक खर्चीली है।
3. शिक्षक का दक्षतापूर्ण व्यवहार मूल्यांकन को बार–बार प्रभावित करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

1. निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया के द्वितीय चरण के कार्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

2. निर्माणात्मक मूल्यांकन के तीन दोषों को लिखिए।

....

....

12.6 योगात्मक मूल्यांकन का अर्थ

Packiam के शब्दों में–"योगात्मक मूल्यांकन का प्रयोग पाठ्यक्रम या प्रकरण या इकाई के अन्त में छात्र की उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु किया जाता है अर्थात् तब अधिगम प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है।"

"Summative evaluation is used to designate student assessment at the end of a course or topic or limit, that is, when no subsequent changes in treatment for that learning will be made".

इस मूल्यांकन का उद्देश्य शिक्षण की प्रभावशीलता से होता है। जब छात्र शिक्षण के अन्त में सभी इकाइयों को अलग–अलग, देय परिणामों के द्वारा उत्तीर्ण कर लेते है तो अन्त में योगात्मक मूल्यांकन किया जाता है। यह छात्रों के सामान्य स्तर को जानने के लिए होता है। छात्र की सफलता यह बताती है कि शिक्षण व अनुदेशन कितना प्रभावशाली रहा। इसी से आगे के शिक्षण में पुनर्बलन मिलता है और उसी के अनुरूप योजना बनायी जाती है तथा छात्रों की सफलता के अनुसार उद्देश्य प्राप्ति के निर्णय के लिए जाते हैं।

12.7 योगात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया

योगात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया निम्न पदों में पूरी होती है–

(1) मूल्यांकन को केन्द्रित करना अर्थात् यह निश्चित करना कि आवश्यकतायें क्या–क्या होगी तथा आवश्यकताओं के प्रकार क्या होंगे ?

इसमें निम्नलिखित पद होते हैं–किसका मापन करना होगा, तद्नुसार उपकरणों का चयन, उपकरण की संरचना, तथ्य विश्लेषण, मूल्यांकन संरचना का चयन, मूल्यांकन की राशि (Cost) का आकलन आदि।

(2) उपयुक्त मूल्यांकन संरचना का चुनाव करना–

इसमें निम्नलिखित पद होते हैं–

1. उपकरण का चुनाव करना ।
2. मूल्याकंन संरचना का चयन।
3. उपकरण के मूल्य का निर्धारण करना।

(3) तथ्यों का संकलन करना– इस बिन्दु पर कार्यक्रम को अच्छी प्रकार नियोजित कर लिया जाता है। इस चरण का उद्देश्य तथ्यों का संकलन में सहायता करना है। इसमें समय का निर्धारण करना, मूल्यांकन की संरचना निश्चित करना, उपकरण को सम्पादित करना, उपकरण से प्राप्तांक प्राप्त करना तथा उनको लिखना आदि पद होते हैं ।

(4) तथ्यों का विश्लेषण करना– इसमें दो पद होते हैं –

1. तथ्यों का प्राप्त करना,
2. तथ्यों का विश्लेषण करना।

(5) मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करना– इसमें तीन पद होते हैं–रिपोर्ट की योजना बनाना, उसकी प्रस्तुतीकरण प्रविधि का चयन करना एवं रिपोर्ट संकलन करना।

12.8 योगात्मक मूल्यांकन के गुण एवं दोश

लाभ–

1. यह समय, अर्थ तथा प्रशासनिक दृष्टिकोण से कम खर्चीला है।
2. इसमें शिक्षक को अधिक कार्य नहीं करना पड़ता है।
3. इसमें पूरे पाठ्यक्रम को इकाइयों में विभाजित नहीं करना पड़ता है।
4. इसमें एक ही बार में पूरे विषय की परीक्षा से ली जाती है।

दोष–

1. इस प्रकार के मूल्यांकन की वैधता एवं विश्वसनीयता कम होती है, क्योंकि पाठ्यक्रम के कुछ ही अंशों का प्रश्न–पत्र में प्रतिनिधित्व होता है।
2. इसमें छात्र विषय का गहनता से अध्ययन नहीं करता है।
3. इस प्रकार के मूल्यांकन में उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच वस्तुनिष्ठ तरीकों से नहीं हो पाती है।
4. इसमें शिक्षक अपनी प्रभावशीलता को नहीं जान पाता है।

12.9 निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन में विभेद

निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन में निम्नलिखित विभेद हैं–

शीर्षक	निर्माणात्मक मूल्यांकन	योगात्मक मूल्यांकन
1. अर्थ	1. इसका अर्थ शैक्षिक कार्यक्रम, योजना, प्रक्रिया आदि का मूल्यांकन करना है ।	1. इसका अर्थ किसी पूर्व निर्मित, शैक्षिक कार्यक्रम आदि की वांछनीयता को ज्ञात करना है ।
2. उद्देश्य	2. शैक्षिक कार्यक्रम में सुधार लाना/ छात्रों व अध्यापकों को पृष्ठ–पोषण प्रदान करना।	2. उपलब्ध विकल्पों के गुण–दोषों का आकलन करना तथा सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प को ज्ञात करना।
3. प्रक्रिया	3. इसके अन्तर्गत शैक्षिक कार्यक्रम के दौरान समय–समय पर छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन किया	3. इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम की समाप्ति पर छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन होता है।

	जाता है।	
4. निर्णय	4. यह अल्पकालीन निर्णयों के लेने में सहायक है।	4. यह दीर्घकालीन निर्णयों को लेने में सहायक है।

12.10 चर्चा के बिन्दु

निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन की अवधारण को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

12.11 अभ्यास के प्रश्न

"निर्माणात्मक तथा योगात्मक मूल्यांकन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।" स्पष्ट कीजिए।

12.12 सारांश

सेरीवेन ने सन् 1967 में अपने लेख Methodology of Evaluation में निर्माणात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन की शैक्षिक प्रसांगिकता पर विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने मूल्यांकन की भूमिका में संदिग्ध विचारों को दूर करने के लिए एक प्रभावशाली युक्ति दी है। जहाँ एक ओर निर्माणात्मक परीक्षण में छात्रों की अधिगम कठिनाईयों को महत्व किया जाता है वहीं योगात्मक मूल्यांकन में शिक्षण की प्रभावशीलता का मापन होता है।ये दोनों प्रकार के मूल्यांकन शिक्षण–अधिगम की दृष्टि से एक–दूसरे के पूरक हैं।

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. निर्माणात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया के द्वितीय चरण के कार्य निम्न हैं–

1. उद्देश्यों के निर्धारण हेतु सम्मेलन बुलाना।
2. कार्यक्रम के औचित्य का विकास करना।
3. कार्यक्रम कथन को लिखना।

2. निर्माणात्मक मूल्यांकन के तीन दोष निम्न हैं–

1. इसमें शिक्षक को अधिक कार्य करना पड़ता है।
2. यह अधिक खर्चीली है।
3. शिक्षक का दक्षतापूर्ण व्यवहार मूल्यांकन को बार–बार प्रभावित करता है।

12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Batten, T.R. (1999). Training for Community Development: A Critical Study of Method, London: Oxford University Press.

2. Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.

3. Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.

4. Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.

5ʊ Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. SE-06
अधिगम, शिक्षण एवं आंकलन

खण्ड – 5

आकलन : आपव्यूह एवं अभ्यास

इकाई – 13	**195**
आव्यूह एवं विधियाँ	
इकाई – 14	**205**
भिन्न रुपेण अधिगमकर्त्ताओं का आकलन	
इकाई – 15	**211**
विद्यालय परीक्षाएं	

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. के. एन. सिंह. — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 पी0 के0 पाण्डेय — प्रभारी निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो0 सुषमा पाण्डेय — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग डी0डी0यू0 विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो0 रजनी रंजन सिंह — आचार्य, विशेष शिक्षा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुर्नवास विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 जी0 के0 द्विवेदी — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 दिनेश सिंह — सहायक–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ नीलम बंसल — प्रवक्ता, विशेष शिक्षा कम्पोजिटिंग रिजनल सेन्टर (CRC), लखनउफ (इकाई 1,2,3,4,5,6)

डॉ नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता विशेष शिक्षा, शिक्षा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 7,8,9,10,11,12,13,14,15)

सम्पादक

प्रो0. योगेन्द्र पाण्डेय — एसोसियएट प्रोफेसर, (विशेष शिक्षा), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

परिमापक

प्रो0 सीमा सिंह — आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (इकाई 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15)

समन्वयक

डॉ. नीता मिश्रा — शैक्षणिक परामर्शदाता, (विशेष शिक्षा), शिक्षा विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज.

सितम्बर, 2019 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2020

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड परिचय

अधिगम और शिक्षण (Learning and Teaching) नामक पेपर का अन्तिम खण्ड है। इस खण्ड में आकलन के विभिन्न आपव्यूहों एवं उनके अभ्यासों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।इस खण्ड में तीन इकाईयाँ हैं।

इकाई–13 में आकलन के आपव्यूहों एवं विधियों को परिभाषित करने के साथ–साथ इसके अर्थ एवं प्रकृति को भी उजागर किया गया है।

इकाई–14 में भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन के विविध आयामों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया हैं।

इकाई–15 में आप विद्यालय परीक्षाओं के संप्रत्यय से परिचित होंगे तथा विद्यालय परीक्षाओं की विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

इकाई–13

ऑव्यूह एवं विधियाँ

संरचना–

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 आकलन की अवधारणा

13.4 आकलन के आव्यूह

13.5 आकलन की विधियाँ

- 13.5.1 अवलोकन (Observation)
- 13.5.2 साक्षात्कार (Interview)
- 13.5.3 परीक्षण (Testing)
- 13.5.4 चिकित्सकीय पूछ–ताछ (Clinical Investigations)
- 13.5.5 केस स्ट्डी (Case Study)

13.6 चर्चा के बिन्दु

13.7 अभ्यास के प्रश्न

13.8 सारांश

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने विद्यालय मूल्यांकन के संप्रत्यय तथा रूपात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन के बारे में अध्ययन किया। इस इकाई में आप आकलन की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित होंगे तथा बच्चों को आकलित करने के आव्यूह एवं विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। साथ ही हम यह भी जानेंगे कि बच्चों को किस–किस क्षेत्र में आकलन के आव्यूह एवं विधियों की आवश्यकता होती है। आकलन के आव्यूह एवं विधियों को परिभाषित करने के साथ–साथ इसके अर्थ एवं प्रकृति को भी इस इकाई में उजागर किया गया है।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- आकलन के आव्यूह एवं विधियों अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- आकलन के विभिन्न आव्यूह एवं विधियों का अनुप्रयोग कर सकेंगे।
- आकलन के आव्यूह एवं विधियों में विभेद कर सकेंगे।

13.3 ऑकलन की अवधारणा

आकलन की अवधारणा को समझने से पूर्व हम तीन अन्य प्रचलित शब्दों यथा परीक्षण (Testing) मूल्यांकन (Evaluation), एवं मापन (Measurement) की चर्चा करेगें। परीक्षण, आकलन की एक विधि है जिसमें बालक के व्यवहार की सूचनाओं को सावधानीपूर्वक निर्मित उपकरणों (Tools) पर एकत्र किया जाता है। इस प्रकार एकत्रित सूचनाओं को गुणात्मक रुप से (Qualitative) जैसे कि FACP में या मात्रात्मक रुप से (Quantitative) जैसे कि BASIC-MR कर सकते हैं। जब एकत्रित सूचनाओं को संख्यात्मक रुप से वर्णित करते हैं तब इसको मापन की संज्ञा देते है। मूल्यांकन, हमेशा किसी कार्यक्रम के क्रियान्वयन के पश्चात् ही सम्पादित किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी बालक के कौशलों को 1 से 5 तक के स्केल पर जो पराश्रित से स्वतंत्रतापूर्वक (Dependent to independent) कौशलों के निष्पादन पर आधारित है, पर मात्रात्मक रुप में व्यवस्थित करना मापन तथा इन स्कोर को एक निशचित समयावधि के उपरान्त मूल्यांकित करना कि इनमें कोई परिवर्तन हुआ या नहीं हुआ, मूल्यांकन कहलाता है।

International Baccalaureate Organization, USA (2007) ने आकलन को निम्न प्रकार परिभाषित किया है –

"Assessment involves the gathering and analysis of information about student performance and is designed to inform practice. It identifies what students know, understand, can do, and feet at different stages in the learning process. Students and teachers should be actively engaged in assessing the student's progress as part of the development of their wider critical - thinking and self - assessment skills.

13.4 ऑकलन के आव्यूह

उपागम के आधार पर आकलन के आव्यूह को दो वर्गो में बाँटा जा सकता है।

(i) **मानक संदर्भित आकलन (Norm Referenced Assessment)** जब हम एक बालक की तुलना किसी अन्य समूह से करते हैं तब इसको मानक संदर्भित आकलन कहा जाता है। यहाँ पर उस समूह को 'मानक' या 'संदर्भित' समूह कहा जाता है। जिससे कि उस बालक की तुलना की जाती है। उदाहरण के लिए यदि अध्यापक कक्षा चार के एक बालक जिसकी आयु दस वर्ष है कि भाषा दक्षता का आकलन करना चाहता है तब उसे उसी आयु वर्ग के विद्यार्थियों के समूह से तुलना करनी होगी। आयु के अतिरिक्त, लिंग, सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि संस्कृति इत्यादि भी मानकों के निर्माण में महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे कि हम किसी मानसिक मंदित बालक के खेलने–कूदने के कौशलों की तुलना उसी आयु वर्ग की बालिकाओं से नहीं कर सकते हैं। अतः मानक संदर्भित आकलन के द्वारा सदैव एक बालक की तुलना उसी वर्ग के साथी–समूह (Peer group) के साथ की जाती है। वे सभी परीक्षण जो मानक संदर्भित आकलन पर आधारित होते हैं, मानक संदर्भित परीक्षण (NRT) कहलाते हैं। जैसे– बुद्धि–लब्धी (IQ) के टेस्ट। विशेष शिक्षा में अध्यापक बहुधा मानक संदर्भित आकलन का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के

लिए अधिगम अक्षमता की पहचान हेतु यह आवश्यक है कि बालक पठन, पाठन, हस्तलेखन एवं गणितीय कौशलों में अपने अपेक्षित समूह से दो समूह नीचे के बालकों की भाँति प्रदर्शन करता हो। अतः मानक सदर्भित आकलन के उपागम पर निर्मित उपकरण का प्रयोग कर अध्यापक बालक की अधिगम अक्षमता का आकलन कर सकता है।

मानक संदर्भित आकलन नैदानिक उद्देश्यों की पूर्ति तथा प्रतिस्थापित करने हेतु निर्णयों (Placement decision) के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं परन्तु ये व्यक्ति की क्षमताओं का अति सूक्ष्म स्तर (Micro level) पर आकलन करने हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। जैसे कि किसी बौद्विक अक्षम बालक के IQ का आकलन (मानक संदर्भित) करके हम यह तो निर्णय कर सकते हैं कि उसे समावेशित विद्यालय में प्रवेश दिलाना है या विशेष विद्यालय में परन्तु उस बालक के विशिष्ट कौशलों की जानकारी का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते जिसके अभाव में समावेशित या विशेष विद्यालय के शिक्षक उस बालक को क्या पढ़ाना/सिखाना है, कैसे पढ़ाना/सिखाना है, इत्यादि का निर्णय नहीं ले सकते। यहाँ पर कसौटी संदर्भित आकलन की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

(ii) **कसौटी संदर्भित आकलन (Criterian referenced assessment)** कसौटी संदर्भित आकलन बालक के गुणों, आवश्यकताओं इत्यादि की सूक्ष्म स्तर पर व्याख्या करता है वनस्पत कि बालक अपने समूह के अन्य बालकों से कितना कम अथवा ज्यादा पिछड़ा हुआ है। इस आकलन का मुख्य उद्देश्य यह बताना नहीं है कि बालक अपने समूह के अन्य बालकों की भांति विभिन्न कौशलों में प्रदर्शन कर रहा है अथवा नहीं बल्कि यह बताना है कि वह कुछ वांछनीय कौशलों (criterion) को धारण किये हुए है अथवा नहीं। इन वांछनीय कौशलों का अध्यापक बालक की आवश्यकता अनुरुप निर्धारण कर सकता है। अतः इस प्राकर के ऑकलन वैयक्तिक लक्ष्यों (individualized goals) के निर्धारण में सहायक होते है।

वे सभी परीक्षण (test) जो कसौटी संदर्भित आकलन पर आधारित होते है, कसौटी संदर्भित परीक्षण (CRT) कहलाते हैं। CRT बालक के व्यवहार का आकलन पहले से बनायी गयी कसौटी पर करते हैं। जैसे– FACP। एक अन्य उदाहरण के द्वारा इसको और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। माना एक बौद्विक अक्षम बालक को भाषायी दक्षता में कठिनाइयाँ हैं। अब एक अध्यापक न केवल यह जानने की कोशिश करेगा कि अमुक बालक अपने समूह के अन्य बालकों से भाषायी दक्षता में कितना कम एवं ज्यादा है (Norm Reference) बल्कि भाषा के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में यथा–शब्दों को पहचानना, उनका उच्चारण करना, उन का अनुप्रयोग करना इत्यादि में कमी हैं। पुनः अध्यापक उस बालक के आधार रेखित आकलन (Baseline assessment) के द्वारा यह जान लेगा कि वह किन–किन शब्दों को पहचान लेता है व किन–किन शब्दों का उच्चारण कर लेता है। अतः अध्यापक अब एक ऐसी कसौटी (criterion) को तय करेगा जिसको की एक नियत समयावधि में बालक के द्वारा प्राप्त किया जा सकता हो। अतः उपरोक्त उदाहरण में अध्यापक के द्वारा कसौटी का निर्धारण बालक के वर्तमान कार्यात्मक स्तर के आधार पर निश्चित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कसौटी संदर्भित आकलन न केवल बालक के व्यवहार का सूक्ष्म स्तर पर आकलन करता है बल्कि एक निश्चित समयावधि के पश्चात् बालक किन–किन व्यवहारों को प्रदर्शित कर सकेगा, का भी लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है।

हस्तक्षेपण की अवस्थाओं के आधार पर **(on the basis of stages of intervention)** आकलन के आव्यूह को तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है–

(i) **आधार रेखित आकलन (Baseline Assessment)**– इस प्रकार का आकलन उपचारात्मक कार्यक्रम के शुरु करने से पूर्व किया जाता है। जिससे कि बालक के वर्तमान स्तर की जानकारी प्राप्त हो सके तथा साथ ही साथ उसकी आवश्यकताओं का भी पता लगाया जा सके। इसको पूर्व–हस्तक्षेपण आकलन (Pre-intervention assessment) की संज्ञा भी दी जाती है।

(ii) **कालिक अथवा रचनात्मक आकलन (Periodic or Formative or Continuous assessment)**– जब आकलन एक निश्चित समयान्तराल पर किसी कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु किया जाता है, तब इसको अवधिक अथवा रचनात्मक आकलन कहते हैं। जहाँ एक ओर आधार रेखित आकलन किसी कार्यक्रम के निर्माण में सहायता करता है वहीं दूसरी ओर आवधिक आकलन कार्यक्रम की प्रभाविकता को क्रमिक अन्तराल (समयावधि) पर जाँचता है।

(iii) **संकलित अथवा अन्तरिम आकलन (Summative or Final assessment)**

1. यह आकलन कार्यक्रम की समाप्ति पर किया जाता है। इसे सामान्यता मूल्यांकन की संज्ञा भी देते हैं क्योंकि इसके द्वारा किसी कार्यक्रम में दिये गये प्रशिक्षण की गुणवत्ता एवं प्रभाविकता का पता चलता है। इसके द्वारा किसी अन्य नये कार्यक्रम के निर्माण की भी दिशा प्राप्त होती है।।

13.5 ऑकलन की विधियाँ

बच्चों के आकलन हेतु विभिन्न विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन विधियों में सूचनाएं प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त की जाती हैं। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत सहपाठियों एवं शिक्षकों द्वारा किये जाने वाले अवलोकन तथा द्वितीय स्रोत के अन्तर्गत माता–पिता, परिवार के सदस्यों, बच्चे के रिकार्ड, उसकी विभिन्न जाँच कार्ड इत्यादि सम्मिलित होते हैं। प्राथमिक स्रोत की प्रमाणिकता, द्वितीय स्रोत की तुलना में ज्यादा प्रमाणिक होती है लेकिन द्वितीयक स्रोत की महत्ता भी आवश्यक है। अतः दोनों स्रोत एक दूसरे के पूरक है। आकलन की विभिन्न विधियों का वर्णन निम्न हैः

13.5.1 अवलोकन (Observation)

किसी बच्चे का अवलोकन करके उसके व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने की विधि अवलोकनात्मक विधि कहलाती है। इस विधि में बच्चे के व्यवहार, उसके आचारण, क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को ध्यानपूर्वक दंख कर उसके व्यवहार की जानकारी प्राप्त की जाती है। अवलोकनात्मक विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए शिक्षा–शब्दकोश में लिखा है, "अवलोकनात्मक विधि निरीक्षणों को अधिक पूर्ण एवं शुद्ध बनाने के लिए प्रेक्षक के सहायतार्थ विभिन्न प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं में से कोई एक है।"

अवलोकन के प्रकार (Types of observation)–

अवलोकन विधि के अन्तर्गत दो प्रकार के अवलोकन आते हैं–

1. नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observation)
2. अनियंत्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)

1. **नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observation)**– किसी बच्चे के व्यवहार के अवलोकन के लिए प्रेक्षक उसके लिए परिस्थितियाँ तैयार करता है। फिर तद्नुरुप उस बच्चे के व्यवहार का प्रेक्षण करता है। यह प्रेक्षण अधिक वैध एवं विश्सनीय नहीं होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति का व्यवहार कभी भी अस्वाभाविक हो जाने की सम्भावना सदैव बनी रहती है।

2. **अनियंत्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)**– इस अवलोकन में जिस किसी बच्चे के व्यवहार का अवलोकन किया जाना होता है, उसे किसी प्रकार की पूर्व जानकारी नहीं दी जाती है। इससे उसका व्यवहार स्वाभाविक रहता है। इस प्रकार स्वाभाविक व्यवहार का अवलोकन अधिक वैध एवं विश्वसनीय होता है।

अवलोकन विधि के गुण (Merits of Observation Method)

इस विधि के गुण निम्नलिखित हैं–

1. यह विधि मानव–व्यवहार के अध्ययन की सबसे सरल एवं स्वाभाविक विधि है।
2. यह विधि छोटे बच्चों एवं अशिक्षित व्यक्तियों के व्यवहार प्रेक्षण की विशेष उपयोगी विधि है।
3. इस विधि द्वारा बौद्विक अक्षम बालक के व्यवहार से सम्बन्धित यथार्थ तथ्य एवं विवरण प्राप्त हो जाता है।
4. इस विधि में अति सूक्ष्मता से कृत प्रेक्षणों से प्राप्त परिणाम वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

अवलोकन विधि की सीमाएं (Limitations of Observation Method)

इस विधि की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. यह विधि मितव्ययी नहीं हैं क्योंकि इस विधि के प्रयोग में समय एवं श्रम अधिक लगता है।
2. इस विधि में प्रेषण सूक्ष्मता से न करने पर प्राप्त परिणाम अधिक वैध एवं विश्वसनीय नहीं होते हैं।
3. इस विधि के प्रयोग हेतु प्रशिक्षित प्रेक्षकों की आवश्यकता होती है।
4. इस विधि से व्यक्ति के आन्तरिक व्यवहारों का अध्ययन सम्भव नहीं है।

13.5.2 साक्षात्कार (Interview)

इस विधि में मनोवैज्ञानिक बच्चों की रुचियों, अभिरुचियों और योग्यताओं से सम्बन्धित समस्याओं का प्रत्यक्ष रुप से (आमने–सामने) प्रश्न पूछकर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करता है, आकलन करता है और वांछित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। शिक्षा–शब्दकोश में साक्षात्कार विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "साक्षात्कार निश्चित प्रकार की मुलाकात है।" इस प्रकार साक्षात्कार एक प्रकार की मौलिक प्रश्नावली है। इससे साक्षात्कारकर्ता को उत्तर के रुप में जो जानकारियाँ/सूचनाएं अथवा तथ्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर उस व्यक्ति की समस्याओं को समझने का प्रयास करता है।

साक्षात्कार विधि की सफलता साक्षात्कारकर्ता द्वारा व्यक्ति के साथ स्थापित आत्मीयता (Rapport) पर निर्भर करती है।

साक्षात्कार के प्रकार (Types of interview)

समस्याओं के अध्ययन में दो प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है–

1. अमानकीकृत साक्षात्कार (Non-standardized Interview)
2. मानकीकृत साक्षात्कार (Standardized Interview)

1. **अमानकीकृत साक्षात्कार** (Non-standardized Interview)– अमानकीकृत साक्षात्कार पूर्णतः साक्षात्कारकर्ता आधारित साक्षात्कार है क्योंकि इसमें कृत/पूछे गए प्रश्नों की विषयवस्तु, भाषा का स्तर और उनका क्रम साक्षात्कारकर्ता के विवेक पर निर्भर रहता है।
2. **मानकीकृत साक्षात्कार (**Standardized Interview)– इसमें साक्षात्कारकर्ता द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की विषयवस्तु, भाषा का स्तर और उनका क्रम आदि पूर्व निर्धारित होता है।

13.5.3 परीक्षण (Testing)

1. परीक्षण से अभिप्राय जांच किये जाने व्यवहार का वस्तुनिष्ठ (Objective) मापन से है। इसके लिए विभिन्न उपकरणों जैसे बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता, परीक्षण, निष्पत्ति परीक्षण, व्यक्तित्व मापनी इत्यादि सम्मिलित हैं। परीक्षण व्यवहारिक विज्ञान में प्रचलित विधि है। उपरोक्त वर्णित दो अन्य विधियों की तुलना में परीक्षण का क्षेत्र व्यैक्तिक आकलन एवं समूह आकलन दोनों तक प्रसारित है। एक शिक्षक को परीक्षण करने से पूर्व उसके उद्देश्य, विशेषताएं, समूह की विशेषताएं, इत्यादि का ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही साथ परीक्षण की अन्य विशेषताओं जैसे विश्वसनीयता, वैधता, प्रासंगिकता, वस्तुनिष्ठ इत्यादि की जानकारी भी आवश्यक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

1. आकलन को परिभाषित कीजिए।

....

....

2. अवलोकन विधि के अन्तर्गत कितने प्रकार के अवलोकन आते हैं।

....

....

13.5.4 चिकित्सकीय पूछताछ (Clinical Investigations)

चिकित्सकीय पूछताछ वास्तव में किसी चिकित्सक द्वारा किये जाने वाली जाँचों से है। अतः विशेष शिक्षा में इसकी प्रसंगगिता कम है परन्तु एक शिक्षक को IEP बनाने हेतु बालक के स्वास्थ्य की जानकारी का होना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए अगर एक बालक को दमा (Asthama) है और इसकी जानकारी अगर शिक्षक को प्रारम्भ से ही है तब वह बालक की IEP में उन सब क्रियाविधियों का समावेशन नहीं करेगा जिसमें श्वसन तंत्र पर अधिक दबाव पड़े। चिकित्सकीय पूछताछ में CTSCAN, EEG, MRI, Thyroid Profile, Chromosomal analysis, Hearing & Vision Tesing इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

13.5.5 केस स्ट्डी (Case Study)

मनोवैज्ञानिक बौद्विक अक्षम बालक के व्यवहार के वास्ततिक कारण को जानने के लिए उसके जीवन–इतिहास का अध्ययन करते हैं। वे उस बालक के माता–पिता, भाई–बहन, पड़ोसियों, सम्बन्धियों, मित्रों, शिक्षकों आदि से उस व्यक्ति के द्वारा पूर्वकृत क्रियाकलापों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी एकत्रित करते हैं। बालक के वंशानुक्रम, संवेगात्मक विकास तथा उसकी रुचियों एवं अनुभवों से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करके मनोवैज्ञानिक उन कारणों की खोज करता है, जिसके फलस्वरुप बालक के व्यवहार में समस्या उत्पन्न हुई हैं। अतः केस स्ट्डी विधि का उद्देश्य उन कारणों का निदान करना है, जो बालक को किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं। शिक्षा–शब्दकोश में केस स्ट्डी विधि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "केस स्ट्डी विधि निदानात्मक एवं उपचारात्मक प्रणाली है, जो उसके इतिहास, उसकी गृह–दशाओं और अन्य समस्त प्रभावों के ज्ञान आधारित है, जो उसके कुसमायोजन अथवा व्यवहार कठिनाइयों का कारण हो सकते हैं।"

तथ्य संकलन के क्षेत्र (Areas of facts collection)

केस स्ट्डी विधि द्वारा तथ्य संकलन के क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. बालक का नाम एवं पता
2. बालक की वर्तमान समस्याएं
3. स्वास्थ्य सम्बन्धी विवरण
4. विकासात्मक विवरण
5. शैक्षिक विकास सम्बन्धी विवरण
6. पारिवारिक विवरण
7. व्यावसायिक विवरण
9. शीलगुणों का विवरण

केस स्ट्डी विधि के गुण (Merits of case study method)– इस विधि के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. यह विधि निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण की उपयोगी विधि है।

2. इस विधि के आधार पर बौद्विक अक्षम बालकों के उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

3. इस विधि में विभिन्न स्रोतों से तथ्यों/सूचनाओं के संकलन से प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय होते हैं।

4. मनोविश्लेषण एवं अन्य विधियों के साथ प्रयोग किए जाने पर इस विधि से प्राप्त परिणाम सार्थक होते हैं।

5. यह विधि निर्देशन एवं परामर्श की दृष्टि से श्रेष्ठतम विधि है।

केस स्ट्डी विधि के दोष (Demerits of case study method)

इस विधि के निम्नलिखित दोष हैं–

1. यह विधि मितव्ययी नहीं है क्योंकि इस विधि में धन, समय एवं शक्ति अधिक व्यय होती है।

2. इस विधि का प्रयोग केवल इस विधि के विशेषज्ञ ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

3. इस विधि से तथ्यों के संकलन में कभी बालक/व्यक्ति के इष्टमित्र उससे सम्बन्धित विशिष्ट तथ्यों एवं सूचनाओं को छिपा लेते हैं, जिसके कारण इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष भ्रमपूर्ण अथवा संदिग्ध हो जाते हैं।

4. इस विधि में प्राप्त निष्कर्षो पर निर्णय लेने के लिए चिकित्सा विशेषज्ञों की आवश्यकता होती हैं। इनके उपलब्ध न होने पर उनका महत्व नगण्य हो जाता है।

13.6 चर्चा के बिन्दु

आकलन के आव्यूह की अवधारण को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

13.7 अभ्यास के प्रश्न

आकलन के आव्यूह एवं विधियों मे विभेद कीजिए।

13.8 सारांश

उपागम के आधार पर आकलन के आव्यूह को मानक संदर्भित एवं कसौटी संदर्भित श्रेणी में बाँट सकते हैं। इसी प्रकार एक अध्यापक द्वारा आकलन की विधियों के रूप में अवलोकन, साक्षात्कार, जॉच सूची एवं केस अध्ययन इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है। इनमें अवलोकन विधि सबसे कम खर्चीली विधि है। परीक्षण एवं चिकित्सकीय पूछताछ यद्यपि कम खर्चीली विधि है। परीक्षण एवं चिकित्सकीय पूछताछ यद्यपि थोड़ी खर्चीली विधियाँ हैं परन्तु इनसे वस्तुनिष्ठ (Objective) सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आकलन की प्रत्येक विधि अपने आप में अनूठी एवं विशेष है।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. Dorald d. Hammill (1987) ने आकलन को इस प्रकार परिभाषित किया है– Assessment is the act of acquiring and analyzing information about students for same stated purpose, usually for diagnosing specific problems and for

planning instructinal programmes. This information includes knowledge about an individual's personal attributes, cognitive abilities, environmental status, academic achiement, heath or social competence and is acquired by a variety of which testing, observation, interviews, record reviews and analytic teaching are the most frequently used.

2. अवलोकन विधि के अन्तर्गत दो प्रकार के अवलोकन आते हैं।

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Accardo,P.J., Magnusen,C., and Capute,A.J (2000). Mental retardation: Clinical and Research Issues. York Press, Baltimore.
2. American Psychiatric Association (2014). Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (5^{th} Edition). Washington DC.
3. Disability Status of India (2012). Rehabilitation Council of India, New Delhi
4. Improving instruction (1996)). Boston : Allyn & Bacon
5. Myreddi, V., & Narayan, J. (1998). Functional Academics for students with mental retardation - A guide for teachers. Secunderabad: NIMH.
6. Narayan, & Kutty, A,T.T. (1989) .Handbook for Trainers of the Mentally Retarded persons Pre-primary level. NIMH, Secunderabad.
7. Peshwaria, R., & Venkatesan. (1992) .Behavioural approach for teaching mentally retarded children :A manual for teachers, NIMH, Secunderabad.

इकाई—14

भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं का आकलन

संरचना—

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन

14.4 समावेशी आकलन के उपागम

14.5 चर्चा के बिन्दु

14.6 अभ्यास के प्रश्न

14.7 सारांश

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

एक शिक्षक के रूप में आपको अक्सर इस परेशानी का सामना करना पड़ता है कि छात्र वास्तव में आपके प्रयासों के परिणामस्वरूप सीख रहे हैं या नहीं। छात्रों के चेहरे या सहभागिता को देखते हुए, कुछ विचार प्राप्त करना संभव है, लेकिन जब आप छात्र का आकलन करेंगे, तो यह पता लग सकता है कि उनकी शिक्षा अपर्याप्त या दोषपूर्ण है या केवल कुछ छात्र ही आपके इच्छित मार्ग में प्रगति कर रहे हैं। यदि आपको अपने शिक्षण कार्य के वांछित परिणाम नहीं दिखाई देते हैं, तो आप उदास और निराशा महसूस कर सकते हैं। इस प्रकार, आकलन एक उपयोगी, वांछनीय और सक्षम करने की प्रक्रिया है। शिक्षा का अधिकार कानून (2009) के बाद, हमारे कक्षाओं की संरचना बदल रही है। विविध बुद्धिजीवियों, प्रतिभाओं, कौशल, रुचियों और पृष्ठभूमि के साथ अधिक से अधिक छात्र हमारे स्कूलों में प्रवेश कर रहे हैं। आज की कक्षाओं में पहले से कहीं अधिक विविधा हैं। जहाँ एक ओर कक्षाओं में मौजूद छात्रों की क्षमताओं में इस तरह की विविधताओं के होने के कारण आकलन की कोई एक शैली कार्य नहीं करेगी, वहीं आकलन में अनुकूलन के बिना, कुछ छात्रों को उचित रूप मे आकलित भी नहीं किया जा सकता है। अतः एक समावेशी कक्षा में आकलन किए जाने के दौरान कार्यात्मक स्मृति (अल्पावधि मेमोरी), अधिगम शैलियाँ, पठन, लेखन, श्रवण एवं वाचन की कौशलात्मक समस्याएं, आत्मविश्वास और प्रेरणा एवं चिंता तथा तनाव जैसे मुद्दों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन के इन्हीं आयामों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समावेशी आकलन की आवश्यकताओं को अपनी कक्षा में पहचान सकेंगे।
- समावेशी आकलन की विभिन्न विधियों का अनुप्रयोग कर सकेंगे।
- समावेशी आकलन के नवीन मुद्दों की चर्चा कर सकेंगे।

14.3 भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन

भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं हेतु समावेशी आकलन की चर्चा करने से पहले आइये एक तस्वीर पर गौर करते हैं–

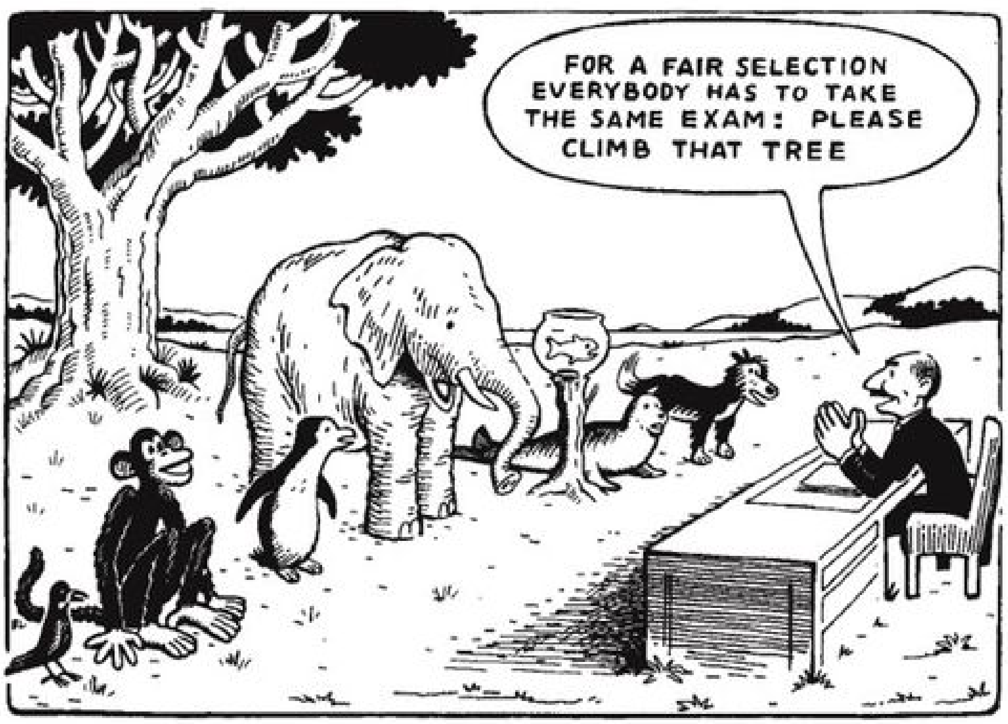

स्त्रोत:https://www.google.co.in/search?q=cartoon+images+for+inclusive+assessment&safe=active&tbm=isch&tbo=u&source=univ&sa=X&ved=0ahUKEwiGoIq6-JzaAhVEJpQKHaTkB0YQ7AkINQ&biw=1366&bih=613#imgrc=umNz8wWKOg33FM:

उक्त तस्वीर देखकर आपके मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार प्रकट हो रहे होंगे जिनमें यह विचार प्रमुख रूप से होगा कि क्या यह संभव है कि विविध क्षमताओं वाले जीवों का आकलन एक ही विधि से किया जाए?

वास्तव में, हमारी कक्षाओं में अध्यापकगण भी समावेशी आकलन की विधियों से परिचित न होने के कारण बहुधा ऐसी ही वस्तु स्थिति का सामना करते हैं। एक अध्यापक के लिए छात्रों की विविधता को ध्यान में रखते हुए, समावेशी आकलन का डिजाइन करना काफी चुनौतीपूर्ण होता है। इसकी शुरुआत कहाँ से करे? इसके बारे में कैसे जानें? आपको इसके बारे में पहल क्यों करनी चाहिए?, ये नाना प्रकार के प्रश्न अध्यापकों के मन में अक्सर उठते हैं। आखिरी प्रश्न का उत्तर आसानी से दिया जा सकता है कि हम सभी शिक्षकगण जितना संभव हो सके, आकलन को उतना समावेशी बनाना चाहते हैं। इसलिए, आपको एक अध्यापक के रूप में अपने विद्यालय में यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी छात्रों को आकलन के उचित अवसर मिले।

समावेशी आकलन का अर्थ– समावेशी आकलन उचित और प्रभावी मूल्यांकन विधियों और अभ्यासों के डिजाइन और उपयोग से संबंधित है, जो सभी छात्रों को उनकी पूरी क्षमता को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है जिसको वे जानते हैं, समझते हैं और कर सकते हैं।

समावेशी आकलन के उद्‌देश्य

समावेशी आकलन के निम्न उद्‌देश्य हैं–

- समावेशी और सुलभ आकलन की प्रकृति की पहचान करना।
- भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं की विशेषताओं और आकलन में सामान्य बाधाओं की पहचान करना।
- आकलन को सुलभ बनाने के विभिन्न तरीकों की समीक्षा करना।

समावेशी आकलन की आवश्यकता– समावेशी आकलन की आवश्यकता को समझने के लिए आइये एक उदाहरण को लेते हैं–

किरन कक्षा 8 की एक छात्रा है। वह मूक–बधिर है और अधिकतर होंठ पठन पर निर्भर करती है। किरन को समूह–आधारित आकलन में मुश्किल होती है, विशेषकर जब उसे अपने लिखित कार्य में समूह चर्चा के परिणामों को शामिल करना पड़ता है। वह चर्चाओं की गति को बनाए रखने के लिए कड़ी मेहनत करती है लेकिन जब चर्चा में एक से अधिक विद्यार्थी बात करते हैं, तब वह हमेशा उन के होंठ को नहीं पढ़ सकती है। इसलिए उसके आकलन में ऑनलाइन चर्चा में भाग लेने का विकल्प एक उचित सुधार होगा। ऑनलाइन समूह चर्चा के विकल्प की पेशकश करके, आप आकलन के इस हिस्से को किरन के लिए सुलभ कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, सभी विद्यार्थियों के ऑनलाइन विकल्प की पेशकश करके, आप आकलन को समावेशी बना रहे हैं। हालांकि, सभी को 'एक चश्में से देखना' समाधान नहीं है। उदाहरण के लिए, एक ऑनलाइन समूह चर्चा एक दृष्टि बाधित या आंशिक रूप से देख नहीं पाने वाले विधार्थी के लिए सुलभ नहीं हो सकता है। इसके लिए ऐसे विद्यार्थी द्वारा स्क्रीन रीडर जैसे ऑडियो सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल किया जा सकता है। व्यक्तिगत छात्रों की जरूरतों की जटिलता को पहचानना और संभावित अवरोधों के बारे में पहले से ही जागरूक होना समावेशन की दिशा में एक बड़ा कदम है। सीखने के परिणामों (जैसे कि आपकी आकलन पद्धतियों में विविधता) का परीक्षण करके एवं उसमें लचीलापन लाकर अधिक से अधिक छात्रों की आवश्यकताओं की एक विस्तृत श्रृंखला को पूरा करने का अधिक से अधिक मौका दिया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी – नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये

1. समावेशी आकलन को परिभाषित कीजिए।

....

....

2. समावेशी आकलन के दो उद्देश्य बताइये।

....

....

14.4 समावेशी आकलन के उपागम

वर्तमान में, समावेशी आकलन के पांच मुख्य उपागम हैं–

समावेशी डिजाइन– आकलन के लिए समावेशी डिजाइन का मतलब है कि शुरू से ही छात्रों की जरूरतों पर विचार करना। आकलन को डिजाइन करते समय आप एक अंतर्निहित तंत्र के रूप में सभी विद्यार्थियों की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की आकलन की विधियों का निर्माण करते हैं। आप अपने आकलन में समावेशी डिजाइन को लागू करने के लिए निम्न सरल तरीको को शामिल कर सकते हैं:

- जहां तक संभव हो, स्पष्ट प्रिंट में आकलन के लिए दस्तावेजों का निर्माण करना चाहिए।
- लेखन शैली स्पष्ट एवं पठनीयता होनी चाहिए।
- सरल और स्पष्ट निर्देशों और प्रक्रियाओं का उपयोग करना चाहिए। उदाहरण–प्रश्न छोटे वाक्यों और एक समय में एक ही प्रश्न करना चाहिए।
- अप्रासंगिक शब्दों को छोडकर सरल और स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रमुख शब्दों या वाक्यांशों को रेखांकित करना चाहिए।

सार्वभौमिक रचना– सार्वभौमिक डिजाइन का सिद्धांत व्यापक रूप से उपयोगकर्ताओं की एक विस्तृत श्रृंखला को व्यवस्थित करने के लिए वास्तुकला और उत्पाद के विकास पर आधारित है। समावेशी आकलन के लिए यूनिवर्सल डिजाइन का अर्थ है कि आकलन का क्रियाविधि का लचीला होना। तकनीकी के द्वारा आप अपने अधिगम के परिणामों को एक से अधिक बार परीक्षण कर सकते हैं। यह आपको आकलन की वैधता के लिए कई विकल्प प्रदान करती है।

समायोजन और अनुकूलन– समावेशी आकलन में समायोजन और अनुकूलन हेतु निम्न तरीकों को शामिल किया जा सकता है–

- विशिष्ट शिक्षण कठिनाइयों वाले छात्रों के लिए अतिरिक्त समय प्रदान करना व्यापक रूप से सभी संस्थानों में उपयोग किया जाता है और सहायता की जा सकती है। हालांकि, कुछ डिस्लेक्सिक छात्रों को अतिरिक्त समय से लाभ नहीं मिल सकता है और अन्य समायोजन पर विचार किया जाना चाहिए।

- अलग–अलग अंकन रणनीतियों को अपनाना। उदाहरण के लिए डिस्लेक्सिक छात्रों के लिए शब्दों या वर्तनियों की त्रुटियों में लचीलापन या मूक–बधिर छात्रों को भाषा विषय को छोड़ने का विकल्प उपलब्ध करवाना।

अतिरिक्त व्यवस्था–अतिरिक्त व्यवस्था में भौतिक वातावरण में परिवर्तन करना या अतिरिक्त उपकरण प्रदान करना शामिल होता है। जैसे–गामक विकारों वाले विद्यार्थियों को एक कमरे दूसरे कमरे तक पहुंचने की अनुमति देना, लिखित कार्यों के लिए एक पीसी प्रदान करना, दृश्य कठिनाइयों या डिस्लेक्सिया वाले छात्रों के लिए मुद्रित सामग्री के लिए रंगीन पेपर पर प्रश्नों को मुद्रित करनाए, स्क्रीन रीडर या आवाज पहचानने जैसी सहायक तकनीकों को प्रदान करना, अतिरिक्त मानव सहायता प्रदान करना (उदाहरण–लेखक या वाचक)।

वैकल्पिक आकलन–कुछ मामलों में, दिव्यांग छात्रों के लिए एक विशेष आकलन विधि सुलभ बनाना संभव नहीं होता है। ऐसे मामलों में आकलन का एक वैकल्पिक रूप प्रदान किया जाना चाहिए। लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आप एक ही प्रकार के अधिगम के परिणामों का आकलन कर रहे हों। आपको अपने आप से पूछना चाहिए कि ''मैं क्या आकलन कर रहा हूं?'' और ''मैं कैसे जानूं कि छात्र ने इसे हासिल किया है?'' यदि आप सीखने के परिणामों (क्या) और आकलन मानदंड (कैसे) के इन दो सवालों का जवाब दे सकते हैं तो आप वैकल्पिक आकलन की सही योजना बनाने में सफलता पा सकते हैं।

14.5 चर्चा के बिन्दु

समावेशी आकलन की अवधारण को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

14.6 अभ्यास के प्रश्न

समावेशी आकलन को आप अपनी कक्षा में कैसे लागू करेंगे।

14.7 सारांश

समावेशी आकलन करते समय हमें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है कि हमारे सभी छात्रों को दिव्यांगता की परवाह किए बिना, अपनी क्षमता का सबसे अच्छा प्रदर्शन करने का एक समान अवसर प्राप्त हो। आम तौर पर, हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि हम क्या और कैसे आकलन करना चाहते हैं। आकलन के सुलभ प्रारूप को तैयार करते समय हमें समावेशित रूप से यह सोचना चाहिए कि हम कैसे आकलन के प्रारूप, प्रस्तुति और भाषा में छोटे परिवर्तन करके सभी छात्रों को लाभान्वित कर सकते हैं।

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समावेशी आकलन उचित और प्रभावी मूल्यांकन विधियों और अभ्यासों के डिजाइन और उपयोग से संबंधित है, जो सभी छात्रों को उनकी पूरी क्षमता को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है जिसको वे जानते हैं, समझते हैं और कर सकते हैं।

2. समावेशी और सुलभ आकलन की प्रकृति की पहचान करना।

भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं की विशेषताओं और आकलन में सामान्य बाधाओं की पहचान करना।

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Jena, S. P. K. (2018). Learning disability: theory to practice (Sharma Arvind, Trans.), SAGE Publications India Pvt Ltd. (Original work published 2013).
2. Sharma, Arvind. (2018). Inclusion in Higher Education: A Way Towards Perception to Reality, Scholars' Press, Mauritius
3. Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.
4. Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

इकाई—15

विद्यालय परीक्षाएं

संरचना—

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 विद्यालय परीक्षाओं का संप्रत्यय

15.4 विद्यालय की आन्तरिक परीक्षाएं

15.5 परीक्षा की प्रविधियाँ

15.5.1 लिखित परीक्षा (Written Examination)

15.5.2 मौखिक परीक्षा (Oral Examination)

15.5.3 प्रयोगिक परीक्षा (Practical Examination)

15.6 परीक्षा में सुधार

15.7 चर्चा के बिन्दु

15.8 अभ्यास के प्रश्न

15.9 सारांश

15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने विद्यालय मूल्यांकन के संप्रत्यय तथा रूपात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन, आकलित करने की आव्यूह एवं विधियों और भिन्न रूपेण अधिगमकर्त्ताओं के आकलन करन की विधियों का अध्ययन किया। इस इकाई में आप विद्यालय परीक्षाओं के संप्रत्यय से परिचित होंगे तथा विद्यालय परीक्षाओं की विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। साथ ही हम यह भी जानेंगे कि इन परीक्षाओं की क्या—क्या सीमाएं होती है। विद्यालय परीक्षाओं के गुण—दोषों के साथ—साथ इनमें सुधार करने के सुझावों को भी इस इकाई में सम्मिलित किया गया है।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त अधिगमकर्ता

- विद्यालय परीक्षाओं का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- विद्यालय परीक्षाओं की विभिन्न प्रविधियों का अनुप्रयोग कर सकेंगे।
- विद्यालय परीक्षाओं में सुधार के विभिन्न उपायों को बता सकेंगे।

15.3 विद्यालय परीक्षाओं का संप्रत्यय

छात्र विद्यालय में सत्र पर्यन्त अध्ययन करके ज्ञानार्जन करते हैं परन्तु सभी छात्रों की ज्ञानार्जन की क्षमता समान नहीं होती है। छात्रों में वैयक्तिक विभिन्नताएं मिलती हैं। परिणामस्वरुप छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान में भी भिन्नता पाई जाती है। छात्रों ने कक्षा में पठित विषय वस्तु से जो ज्ञान अर्जित किया है, उसकी जाँच करन हेतु समय–समय पर विद्यालय में विभिन्न परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इनसे छात्रों में अर्जित ज्ञान, योग्यता एवं कार्यकुशलता की जाँच होती है। इसीलिए इन्हें शैक्षिक परीक्षण, निष्पत्ति परीक्षण एवं ज्ञानार्जन परीक्षण आदि भी कहा जाता है। गैरिसन एवं अन्य के अनुसार–"परीक्षण बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा का मापन करता है।" परीक्षण के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए शिक्षा–शब्दकोश में लिखा है–"परीक्षण विद्यालय में प्रदत्त क्षेत्र में अध्यापित व्यक्ति की योग्यताओं, कौशलों को समझ आदि के मापन के लिए बनाया गया परीक्षण है।"

विद्यालय परीक्षाओं के उद्देश्य–

1. विद्यालय में विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में छात्र द्वारा प्राप्त ज्ञान या योग्यता की जाँच करना।
2. इनके द्वारा छात्रों के बौद्धिक स्तर की जाँच करना और उनका वर्गीकरण एवं कक्षोन्नति करना।
3. इन परीक्षाओं के परिणामों के आधार पर छात्रों के लिए विशेष अध्ययन की व्यवस्था करना।
4. इन परीक्षाओं से शिक्षको के शिक्षण की सफलता का अनुमान लगाना।
5. इन परीक्षाओं के आधार पर शिक्षण विधियों की उपयोगिता एवं कमियों की जाँच करना तथा सुधार एवं प्रगति हेतु योजना बनाना।
6. छात्र के भविष्य हेतु प्रभावपूर्ण परामर्श देने के लिए आधार तैयार करना।

15.4 विद्यालय की आन्तरिक परीक्षाएं

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान बढ़ाना नहीं है, बल्कि छात्रों में वांछनीय रूचि, गुणात्मक बोध, आदतों, भावनाओं और व्यक्तिगत गुणों का विकास करना है। लिखित परीक्षाओं द्वारा इन गुणों की जाँच नहीं की जा सकती है। इसलिए अध्यापकों के विचार और ऐसे ही दूसरे साधारण तरीके काम में लाने की आवश्यकता है। इन तरीकों का प्रयोग केवल आन्तरिक परीक्षाओं में ही किया जाता है। आन्तरिक परीक्षाओं की निम्न विशेषताएं हैं–

(1) आन्तरिक परीक्षाओं द्वारा बाह्म परीक्षा के कई दोष को दूर किया जा सकता है। बाह्म परीक्षा के परिणाम एक ही समय की एक जाँच पर आधारित होते हैं, परन्तु आन्तरिक परीक्षाओं में ऐसा नहीं होता है, क्योंकि यह एक निरन्तर प्रक्रिया है।

(2) आन्तरिक परीक्षाओं से हमें छात्रों के अध्ययन की कठिनाईयों का पता चलता है। इसमें अधिक विशेष क्षमताओं की जानकारी प्राप्त होती है और छात्रों के लक्ष्य, आवश्यकता, रूचि, भावना जानने के भी अवसर मिलते हैं और उन्हें प्राप्त करने के तरीकों का भी पता चलता है। इसमें प्रोत्साहन मिलता है, जो उसे अपने साधनों की पूर्ण रूप से प्रयोग करने के लिए भी प्रेरणा देता है।

(3) आन्तरिक परीक्षा एक निरन्तर क्रिया होने के कारण छात्रों में नियमित रूप से कार्य करने की आदत डालती है।

(4) आन्तरिक परीक्षाओं द्वारा अध्यापकों को उत्तरदायित्व मिलता है जो उन्हें प्रेरणा देता है।

(5) छात्रों की स्पष्ट तथा अस्पष्ट उपलब्धियों की जाँच से बाह्म परीक्षा की कमियों को पूर्ति होती है।

आन्तरिक परीक्षाओं से सम्बन्धित समस्याएँ–

(1) अध्यापकों, छात्रों तथा प्रबन्धकों से आन्तरिक परीक्षाओं की स्वीकृति किस प्रकार प्राप्त की जाये।

(2) आन्तरिक परीक्षा कार्य को प्रभावपूर्ण ढंग से कराने की क्षमता अध्यापकों में किस प्रकार पैदा की जाये।

(3) आन्तरिक परीक्षा को प्रभावपूर्ण ढंग से करने के लिए क्या न्यूनतम सुविधाएँ दी जायें।

(4) विभिन्न स्कूलों के स्तर में समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जाये।

(5) आन्तरिक परीक्षा करने और इसके स्तर को सुधारने के लिए क्या प्रणाली अपनायी जाये।

(6) बाह्म परीक्षा और आन्तरिक परीक्षा के अंकों में किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाये।

15.5 परीक्षा की प्रविधियाँ

इसके अन्तर्गत लिखित परीक्षाएं, मौखिक परीक्षाएं एवं प्रयोगिक परीक्षाएं आती हैं, जिनके माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में छात्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता है–

15.5.1 लिखित परीक्षा (Written Examination)

विद्यालय में छात्रों की उपलब्धियों के मूल्यांकन में लिखित परीक्षाओं का प्रयोग विशेष रुप से किया जाता है। इनके अन्तर्गत दत्त कार्य, प्रतिवेदन लिखना तथा कागज परीक्षाएं आदि आते हैं, इनके द्वारा छात्रों की ज्ञान–उपलब्धि, किसी समस्या की आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या एवं विषयवस्तु को संगठित करने की योग्यता की जांच की जा सकती है। वर्तमान परीक्षाओं में दीर्घ उत्तरीय/निबन्धात्मक, लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ/अति लघु उत्तरीय प्रकार के परीक्षणों का उपयोग हो रहा है। ये परीक्षाएं शिक्षक द्वारा निर्मित या प्रमापीकृत दोनों प्रकार की होती है।

शिक्षक–निर्मित परीक्षण (Teacher-made tests)- ये परीक्षण शिक्षक द्वारा अपनी कक्षा के लिए तैयार किए जाते हैं। एक ही विषय पर दो शिक्षकों द्वारा निर्मित परीक्षणों के स्तर में अन्तर आ जाता है, जिनका उपयोग करके छात्रों के ज्ञान समुचित मूल्यांकन सम्भव नहीं है। अतः शिक्षक–निर्मित परीक्षण में बहुधा विश्वसनीयता कम मिलती है। ये परीक्षण भी दो प्रकार के होते हैं–

(अ) आत्मनिष्ठ परीक्षण (Subjective Tests)-

(ब) वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Tests)-

(अ) आत्मनिष्ठ परीक्षण (Subjective Tests)- विद्यालय में शिक्षकों द्वारा निर्मित आत्मनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग अतीत काल से होता आ रहा है। इसमें शिक्षक स्वयं अपनी कक्षा के लिए परीक्षण तैयार करता है और अपनी इच्छा के अनुसार ही अंकन करता है। **शिक्षा–शब्दकोश** में आत्मनिष्ठ परीक्षण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है–**"आत्मनिष्ठ परीक्षण निबन्ध परीक्षण के प्रकार का परीक्षण है, जो प्रत्येक उत्तर के मूल्य का अंकन करने वाले के व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर अंकन करता है।"**

वर्तमान समय में आत्मनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च तीनों ही स्तरों पर सफलतापूर्वक हो रहा है। आत्मनिष्ठ परीक्षण छात्रों की ज्ञान–उपलब्धि, किसी समस्या की आलोचनात्मक व्याख्या, विषयवस्तु को संगठित करने की योग्यता तथा भाव–प्रकाशन की क्ष्मता की जाँच करते हैं। इनमें मुख्य रुप में निबन्धात्मक परीक्षण प्रयुक्त होते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षण (Eassy Type Tests)- विद्यालय परीक्षा में सदियों से निबन्धात्मक परीक्षणों का उपयोग होता आ रहा है। कतिपय दोष होते हुए भी निबन्धात्मक परीक्षण अपने गुणों की प्रचुरता के कारण वर्तमान परीक्षा–प्रणाली में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इन परीक्षणों से छात्रों के ज्ञान के सगंठन, प्रस्तुतीकरण, तार्किक चिन्तन, निर्णयन, सृजन आदि क्षमताओं का मूल्यांकन होता है। निबन्धात्मक परीक्षण के दो रुपों में मिलते हैं–

1. दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण (Long Answer Type Test)
2. लघु उत्तरात्मक परीक्षण (Short Answer Type Test)

1. **दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण (Long Answer Type Test)-** दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर विस्तृत होते हैं। बहुधा प्रश्नों के उत्तर कई–कई पृष्ठो के होते हैं। इसमें परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए स्वतन्त्र होता है। इस परीक्षण में प्रश्नों की संख्या मुख्यतः 9 या 10 होती है अथवा इससे भी अधिक प्रश्न हो सकते हैं। इनमें से 5 या 6 प्रश्नों के उत्तर छात्रों के निर्धारित समय में लिखने पड़ते हैं।

गुण– इसके निम्नलिखित गुण हैं–

1. यह परीक्षण मितव्ययी हैं क्योंकि इनकी रचना में समय एवं धन की बचत होती है।
2. इन परीक्षणों में छात्रों को उत्तर देने एवं भाव–प्रकाशन की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।

3. इनके द्वारा बालकों के तथ्यात्मक ज्ञान की परीक्षा होती है।

4. इसमें छात्रों की लेखन–शक्ति की क्षमता बढ़ती है तथा भाषा एवं शैली का परिमार्जन होता है।

5. छात्रों में स्वतन्त्र–लेखन की क्षमता शक्ति विकसित होती है।

6. ये परीक्षण छात्र एवं शिक्षक दोनों के लिए उपयोगी हैं।

7. इनमें छात्रों की स्मरण शक्ति विकसित होती है।

दोष– इस परीक्षण के निम्नलिखित दोष हैं–

1. ये परीक्षण रटने पर अधिक बल देते है।

2. ये पाठ्यवस्तु का सीमित प्रतिनिधित्व करते हैं।

3. इनमें वैधता का अभाव है।

4. ये विश्वसनीय नहीं होते है।

5. इनके अंकन में विविधता रहती है तथा समय भी अधिक लगता है।

6. इनमें आत्मनिष्ठता की प्रधानता रहती है।

सुधार हेतु सुझाव– दीर्घ उत्तरात्मक परीक्षणों में सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. इन परीक्षणों को केवल उन्हीं उद्देश्यों की जाँच करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए, जिनकी जाँच अन्य परीक्षणों से सम्भव न हो।

2. परीक्षण में प्रश्नों के अंक, उनका अंकन एवं उत्तर देने के ढंग को बताने के लिए स्पष्ट निर्देश होने चाहिए।

3. प्रश्नों की रचना में सरल, स्पष्ट एवं दैनिक बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिससे छात्रों को प्रश्न समझने में कठिनाई न हो और वे वांछित उत्तर दे सकें।

4. प्रश्न–पत्र में सरल प्रश्न पहले, फिर सामान्य और अन्त में कठिन प्रश्न रखने चाहिए।

5. प्रश्नों के उत्तर देने के लिए परीक्षार्थी को विकल्प नहीं दिये जाने चाहिए। सभी प्रश्न अनिवार्य हों। केवल आन्तरिक विकल्प हो सकते हैं।

6. प्रत्येक प्रश्न किसी विशेष मानसिक स्तर या ज्ञान की जाँच के लिए होना चाहिए।

7. प्रश्नों की रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसके सम्भावित उत्तर का क्षेत्र स्पष्ट रहे।

8. इन परीक्षणों के निर्माण में परीक्षार्थी की आयु, वर्ग एवं स्तर का भी ध्यान रखना चाहिए।

9. साधारण प्रश्न निम्न कक्षाओं के परीक्षण में रखने चाहिए और वर्णनात्मक, विवरणात्मक एवं समीक्षात्मक प्रश्न उच्च स्तर के परीक्षण में रखने चाहिए।

10. इस बात की भी जाँच कर लेनी चाहिए कि प्रश्न के अनेक उत्तर न हों और फलस्वरुप अंकन में भिन्नता न हो।

11. प्रश्नों की रचना में मौलिकता तथा रचनात्मक प्रवृत्ति की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

12. परीक्षण के प्रश्नों में अनुभाग हों और अंक भी उन्हीं के अनुसार विभाजित करके रखे जाँय। इससे परीक्षार्थी को अवगत रहेगा कि प्रश्न के किस अंश पर कितना बल देना है। इससे अंकन में भी सुविधा रहेगी।

2. **लघु उत्तरात्मक परीक्षण (Short Answer Type Test)**–ये परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षण के संशोधित एवं लघु रुप है। इस परीक्षण में ऐसे प्रश्नों की रचना की जाती है, जिनके उत्तर बहुत छोटे होते हैं। इसीलिए इन्हें लघु–उत्तर परीक्षण कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर एक निर्धारित सीमा के अन्दर ही लिखने पड़ते हैं। अतः ये नियन्त्रित उत्तर परीक्षण (Controlled Resoponse Test) भी कहलाते हैं।

गुण – इस परीक्षण में निम्नलिखित गुण हैं–

1. इस परीक्षण में दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्नों (निबन्धात्मक परीक्षण) की अपेक्षा अधिक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

2. ये पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग को अधिगृहित करते हैं।

3. इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर भी सुनिश्चित होते हैं। इससे ये अधिक विश्वसनीय होते हैं।

4. ये परीक्षण व्यक्तिगत मूल्यांकन के दोषों से भी मुक्त हैं।

5. इनका अंकन अधिक वस्तुनिष्ठता से किया जा सकता है।

6. ये छात्रों की उपलब्धि की अधिक व्यापकता से जाँच करने में सक्षम हैं।

7. इसकी रचना सरल एवं स्वाभाविक है। अतः शिक्षक अल्प अभ्यास से ही इनके निर्माण में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

8. ये परीक्षण बोझिल नहीं होते हैं क्योंकि इनके उत्तर लिखने में छात्रों को अधिक नहीं लिखना पड़ता है।

दोष– इस परीक्षण में कतिपय दोष भी हैं–

1. इनसे भाषा–शैली परिमार्जित नहीं हो पाती है और न ही उसका मूल्याकंन सम्भव है।

2. इनसे छात्रों की मानसिक, तर्क एवं विचार–शक्ति का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।

3. समस्यात्मक विषयों की जाँच हेतु यह परीक्षण उपयोगी नहीं है।

4. यह परीक्षण भी पूर्णरुपेण वैध नहीं है।

5. यह परीक्षण छात्रों को रटने के लिए बाध्य करते हैं।

सुधार हेतु सुझाव– लघु उत्तर परीक्षण में सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. लघु उत्तर प्रश्नों की रचना सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से की जानी चाहिए।

2. प्रश्नों की रचना सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए।

3. परीक्षण में ऐसे ही प्रश्न रखे जाने चाहिये, जिनके उत्तर सुनिश्चित एवं संक्षिप्त हों। उत्तर लगभग 15 पंक्तियों अथवा 100 शब्दों से अधिक न हों।

4. प्रश्नों को हल करने के विषय में स्पष्ट निर्देश होने चाहिए, जिससे छात्रों को भ्रम न हो।

5. इसमें विकल्प नहीं होने चाहिए।

(ब) वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Tests)- वर्तमान समय में वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का प्रयोग प्रत्येक विषय की नवीन परीक्षा–प्रणाली के रुप में प्रचलित है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह परीक्षण है, जिनमें विभिन्न परीक्षक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने के उपरान्त अंको के सम्बन्ध में एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं अर्थात् समान कार्य के लिये समान अंक प्रदान करते हैं। शिक्षा–शब्दकोश में वस्तुनिष्ठ परीक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, **"वस्तुनिष्ठ परीक्षण इस तरह का निर्मित एक परीक्षण है, जिसमें विभिन्न अंक देने वाले (गणक) स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करके एक समान आवश्यक रुप से प्रदत्त कार्य के लिए समान अंक पर पहुँचेगें, साधारणतया सत्य–असत्य उत्तर, बहुसंख्यक चुनाव, मिलान या पूरक प्रकार के प्रश्नों पर आधारित होता है, जिनका सही उत्तरों की तालिका से अंकन किया जाता है। यदि कोई उत्तर तालिका के विपरीत होता है तो उसे माना जाता है।"** इन्हें अति लघु उत्तरीय परीक्षण भी कहा जाता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के प्रकार –वस्तुनिष्ठ परीक्षण मुख्यतया दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं–

1. शिक्षक–निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Teacher made objective test)

2. प्रमापीकृत वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Standarized objective test)

1. शिक्षक–निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Teacher made objective test)– ये परीक्षण शिक्षक द्वारा निर्मित होते हैं, जिनमें सापेक्षिक रुप में आत्मनिष्ठ तत्वों से प्रभावित हुए बिना अंकन किया जाता है। शिक्षक–निर्मित वस्तुनिष्ठ परीक्षण मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं–

1. प्रत्यास्मरण परीक्षण 2. अभिज्ञान परीक्षण।

1. **प्रत्यास्मरण परीक्षण** (Recall Test)– इसके अन्तर्गत छात्रों को कुछ प्रश्न दिये जाते हैं, जिनके उत्तर छात्र स्मरण (याद) करके देते हैं। इनके छात्रों की स्मरण शक्ति की जाँच होती है। इनसे न केवल की बुद्धि, तर्कशक्ति एवं विचारशक्ति की कपितु तथ्यात्मक ज्ञान की भी परीक्षा होती है। इसके दो उपभेद हैं– 1. सरल प्रत्यास्मरण परीक्षण 2. रिक्त स्थान परीक्षण।

2. **अभिज्ञान परीक्षण (Recognition Test)**– इसमें छात्रों को कुछ प्रश्न दिए जाते हैं, जिनके कई उत्तर दिए होते हैं जिनमें से सभी उत्तर की पहचान करके उत्तर देना होता है। इस प्रकार अभिज्ञान परीक्षण एक परीक्षण है, जिसमें छात्र से प्रदत्त उत्तरों की संख्या, जो एक सही है, के मध्य से प्रत्येक प्रश्न के लिए सही उत्तर चुनने की अपेक्षा की जाती है। इसमें छात्र प्रश्न के प्रदत्त उत्तरों में से एक सही उत्तर की पहचान करके सही उत्तर देने का प्रयास करता है। इससे छात्र के तथ्यात्मक ज्ञान की जाँच के साथ–साथ विभेदीकरण की क्षमता का भी मूल्यांकन हो जाता है। इसके प्रमुख भेद निम्नांकित हैं–

    i. एकान्तर प्रत्युत्तर परीक्षण (Alternative Response Test or True-False Test)

    ii. बहुसंख्यक चुनाव परीक्षण (Multiple Choice Test)

    iii. समरुप या मिलान परीक्षण (Matching Test)

वस्तुनिष्ठ परीक्षण की विशेषताएं – इनकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. इन परीक्षणों में वैधता पाई जाती है।
2. ये परीक्षण विश्वसनीय होते हैं।
3. इन परीक्षणों में विभेदीकरण की क्षमता होती है।
4. ये परीक्षण मितव्ययी हैं क्योंकि इनमें धन एवं समय की बचत होती है।
5. ये परीक्षण पाठ्यवस्तु का समुचित प्रतिनिधित्व करते हैं।
6. एक प्रश्न का एक ही उत्तर होना इनकी प्रमुख विशेषता है। अधिगम के लिए सामग्री के रुप में निर्माणात्मक मूल्यांकन उपकरणों का विकास करना
7. इस परीखण मे अंकन में सरलता एवं अंकों में समानता रहती है।
8. इन परीक्षणों से रटने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण की सीमाएं – इनकी निम्नलिखित प्रमुख सीमाएं हैं–

1. ये परीक्षण छात्रों को अनुमान लगाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। छात्र अनुमान के आधार पर सत्य या असत्य पर चिह्न लगा देते हैं और शब्दों को रेखांकित कर दिया करते हैं।

2. ये परीखण केवल तथ्यात्मक ज्ञान की जाँच करते हैं।

3. इन परीक्षणों से मानसिक शक्तियों की जाँच नही हो पाती हैं

4. ये परीक्षण छात्रों की भाव–प्रकाशन की क्षमता का परीक्षण करने में असमर्थ है।

5. इनके अधिक प्रयोग से छात्रों की भाषा शैली परिमार्जित नहीं हो पाती है।

6. इनके द्वारा विवादग्रस्त तथ्यों एवं समस्याओं का मूल्यांकन नहीं हो जाता है।

7. ये परीक्षण शिक्षकों पर अधिक कार्यभार डालते हैं।

8. इन परीक्षणों की रचना में धन, श्रम एवं समय अधिक लगता है। अतः ये परीक्षण मितव्ययी नहीं हैं।

सुधार हेतु सुझाव– वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. परीक्षण में प्रश्नों के अंक, उनका अंकन एवं उत्तर देने के ढंग को व्यक्त करने के लिए स्पष्ट निर्देश होने चाहिए।
2. प्रश्नों की रचना में सरल, स्पष्ट एवं दैनिक बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
3. प्रश्न–पत्र में सरल प्रश्न पहले फिर सामान्य और अन्त में कठिन प्रश्न रखने चाहिए।
4. परीक्षण में बहुविकल्पीय प्रश्न उसी स्थिति में रखने चाहिए, जहाँ केवल स्मृत्यात्मक प्रश्न ही उपयुक्त हों और तथ्यों को याद करके लिखना हो।
5. प्रश्न के उत्तर के लिए तीन या चार विकल्प ही देने चाहिए किन्तु पाँच से अधिक नहीं। यह अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए कि विकल्पों में से सही उत्तर केवल एक ही हो। भ्रमात्मक विकल्प नहीं होने चाहिए।
6. प्रत्येक बिन्दु पर एक केन्द्रीय समस्या होनी चाहिए। निम्नलिखित में से कौन सही है? इस शीर्षक के अन्तर्गत एक दूसरे से असम्बद्ध तीन या चार कथन होने चाहिए।
7. समस्या का मुख्य भाग यथासम्भव प्रारम्भ में ही रखना चाहिए।
8. नकारात्मक कथन परीक्षण में नहीं रखना चाहिए।
9. सम्पूर्ण कथन और उत्तर यथासम्भव अपने आप में पूर्ण एवं तर्क संगत होने चाहिए।
10. विकल्पों को तकसंगत अथवा वर्णमाला क्रम में रखना चाहिए।
11. यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षार्थी प्रदत्त सभी विकल्पों में से सही विकल्प चुनने के सुयोग्य हैं। सही और गलत दानों विकल्पन परस्पर आकार–प्रकार एवं प्रयोग में समान दिखाई पड़ने चाहिए, जिससे छात्र की इस योग्यता की जाँच की जा सके कि वह अनेक विकल्पों में से सही विकल्प चुन सकता है।
12. इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि सही उत्तर एक निश्चित क्रम में न रखे जाए। सही उत्तर कभी पहले, कभी मध्य में और कभी अन्त में रखना चाहिए।

13. उत्तर–पुस्तिकाओं का मूल्यांकन पूर्व निर्मित उत्तरकुंजी (Answer Key) के अनुसार ही होना चाहिए।

15.5.2 मौखिक परीक्षा (Oral Examination)

प्राचीन काल में शिक्षण पद्धति प्रायः मौखिक थी। परीक्षण भी मौखिक हुआ करते थे परन्तु सभ्यता के विकास के साथ ही लिखित परीक्षाओं का प्रचलन प्रारम्भ हुआ, जिनकी सफलता ने मौखिक परीक्षाओं का महत्व ही कम कर दिया। इस परीक्षण में मौखिक प्रश्नों के माध्यम में छात्रो के ज्ञान, पढ़ने की योग्यता एवं शुद्धता, मौखिक आत्म–प्रकाशन की क्षमता आदि की जाँच करते हैं। इनका उपयोग प्रारम्भिक स्तर पर अधिक, माध्यमिक स्तर पर कम और उच्च स्तर पर नाममात्र को ही होता है।

मौखिक परीक्षा के गुण –

1. ये परीक्षण शुद्धता एवं तत्परता हेतु उपयोगी है।
2. मौखिक आत्म–प्रकाशन की क्षमता प्रदान करने में सक्षम हैं।
3. दूसरे के विचारों को सुनकर समझने की योग्यता प्रदान करते हैं।
4. छात्रों के आत्मविश्वास में अभिवृद्धि करते हैं।

मौखिक परीक्षा के दोष –

1. ये परीक्षण रटने पर बल देते हैं।
2. ये परीक्षण छात्रों को अच्छे अंक प्रदान नहीं कराते हैं। राइटस्टोन के अनुसार, "मौखिक परीक्षण कितने ही अच्छे क्यों न हों, पर छात्रों को अंक प्रदान कराने में ये एक निम्न आधार हैं। इसका निदानात्मक साधन के रुप में महत्व है और उन परिस्थितियों में, जिनमें लिखित परीक्षणों का उपयोग नहीं किया जा सकता है।"

15.5.3 प्रयोगिक परीक्षा (Practical Examination)

इस प्रविधि का प्रयोग प्रायोगिक विषयों के मूल्यांकन में किया जाता है। इससे छात्रों के सुजनात्मक एवं व्यावहारिक अभ्यास का सरलता एवं व्यापकता से मूल्यांकन किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

1. लघु उत्तरात्मक परीक्षण के दो गुण लिखिए।

....

....

2. वस्तुनिष्ठ परीक्षण में सुधार हेतु किन्हीं तीन सुझावों का उल्लेख कीजिए ।

....

....

15.6 परीक्षा में सुधार

परीक्षा में दोषों के होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि परीक्षा–प्रणाली को समाप्त कर देना चाहिए। निःसन्देह इसमें दोष है और हमें इन दोषों को दूर करना चाहिए। परीक्षा का स्थान अचल है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली में निम्नलिखित सुधारों की आवश्यकता है –

(1) परीक्षा छोटे–छोटे परीक्षणों के रूप में होनी चाहिए जो वर्ष में कई बार हो, पर समय थोड़ा लगे। ऐसा करने से छात्र वर्ष भर कार्य में लगे रहेंगे और परीक्षा एकभूत बनने के स्थान पर दोहराई के लिए आवश्यक सहायता दे सकेगी।

(2) मौखिक परीक्षा के महत्व को स्वीकार करके परीक्षा प्रणाली में इसको उचित स्थान दिया जाये। मौखिक परीक्षा द्वारा भिन्न रूपेण छात्रों की रूचि तथा अन्य गुणों के ज्ञान की जाँच आसानी से की जा सकती है।

(3) निबन्धात्मक प्रश्नों के साथ–साथ कुछ नवीन प्रकार के प्रश्न (New Type Tests) भी दिये जायें।

(4) छात्र को क्या आता है और कितना आता है, इस पर परीक्षा लेते समय ध्यान दिया चाहिए, न कि इस पर कि उसे क्या नहीं आता ? प्रायः परीक्षकों का प्रश्न–पत्र बनाते समय यह दृष्टिकोण होता है कि छात्र को क्या नहीं आता ? अतः परीक्षकों की मनोवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

(5) बाह्य परीक्षाएँ अधिक न ली जायें। ऐसी परीक्षाएँ छात्र तथा अध्यापक के काम में रूकावट डालती हैं। छात्रों एवं उसके भावों तथा विचारों को विकसित होने का पूरा अवसर नहीं देती। ये छात्रों की रचनात्मक शक्ति और योग्यता की जाँच करने में भी असमर्थ होती हैं।

(6) छात्र की सवाँग उन्नति तभी हो सकती है जबकि उसकी रूचियाँ और प्रवृत्तियों का लेखा–जोखा भी रखा जाये और उनके विकास के अवसर प्रदान किये जायें। छात्र को कक्षोन्नति देते समय उसके स्वास्थ्य, सहपाठीय कार्य, सामाजिक कुशलता आदि की ओर ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने के लिए छात्र के विषय में उसका व्यवहार संचित लेखे के रूप में देखने की आवश्यकता है।

(7) परीक्षकों के अंक देने में जो विभिन्नता पायी जाती है उसमें यथासम्भव समानता लानी चाहिए। छात्रों को भी इस बात का ज्ञान यथासम्भव हो सके कि नम्बर देते समय परीक्षक किन–किन बातों पर ध्यान देते हैं।

(8) अध्यापक की राय का मूल्य आवश्यक है क्योंकि वे छात्रों को भली प्रकार से जानते हैं। उन्हें भी विश्वासपात्र बनना चाहिए।

(9) प्रश्न–पत्रों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। प्रश्न–पत्र जटिलता तथा अशुद्धि रहित होने चाहिए।

15.7 चर्चा के बिन्दु

विद्यालय परीक्षा के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

15.8 अभ्यास के प्रश्न

आधुनिक परीक्षा प्रणाली में आप क्या–क्या सुधार करना चाहेंगे? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

15.9 सारांश

विद्यालय परीक्षा प्रणाली को कई श्रेणियों में बाँट सकते हैं। एक अध्यापक इसके लिए कई प्रविधियों का प्रयोग कर सकता है। इनमें लिखित परीक्षा प्रणाली सबसे ज्यादा प्रचलित है। लिखित परीक्षा प्रणाली से बच्चे के समग्र विकास का आकलन नहीं किया जा सकता है। अतः इसके साथ–साथ मौखिक एवं प्रयोगाात्मक परीक्षाओं को भी विद्यालय में सम्पादित किया जाना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय परीक्षा प्रणाली की प्रत्येक प्रविधि अपने आप में अनूठी एवं विशेष है।

15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. यह पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग को अधिगृहित करता है।

2. इस परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर भी सुनिश्चित होते हैं। इससे ये अधिक विश्वसनीय होते हैं।

3 .प्रश्नों की रचना में सरल, स्पष्ट एवं दैनिक बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

4. प्रश्न–पत्र में सरल प्रश्न पहले फिर सामान्य और अन्त में कठिन प्रश्न रखने चाहिए।

5. परीक्षण में बहुविकल्पीय प्रश्न उसी स्थिति में रखने चाहिए, जहाँ केवल स्मृत्यात्मक प्रश्न ही उपयुक्त हों और तथ्यों को याद करके लिखना हो।

15.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1- Bloom, B.S. (1995). Taxonomy of Educational Objectives, New York: Longmans, Green.

2- Gage, N.L. (1996). The Psychology of Teaching Methods, Chicago: University of Chicago Press.

3- Gupta, S.P. (2003). Measurement and Evaluation, Bhargava Publication, Agra.

4- Smith, R, M. (2012). Clinical Teaching: Methods of Instruction for Retarded, London: McGraw Hill.

5- Wittrock, M. (2014). Handbook of Research on Teaching, New York: Macmillan Publishing Coorporation.

टिप्पणी

टिप्पणी